इकाई–1 व्यावहारिक मनोविज्ञान का अर्थ, परिभाषा एवं मनोविज्ञान के क्षेत्र

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 व्यावहारिक मनोविज्ञान अर्थ
1.4 व्यावहारिक मनोविज्ञान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं विकास
1.5 व्यावहारिक मनोविज्ञान की परिभाषाएं
1.6 व्यावहारिक मनोविज्ञान के क्षेत्र
1.7 सारांश
1.8 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर
1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

व्यावहारिक मनोविज्ञान मनोविज्ञान का एक पक्ष है जिसके अन्तर्गत मानव की विभिन्न समस्याओं के सुलझाने में मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का प्रयोग किया जाता है। व्यावहारिक मनोविज्ञान के विकास पर सर्व प्रथम पैटर्सन ने व्याख्या की। उन्होने व्यावहारिक मनोविज्ञान के विकास के चार चरण बताए – प्रथम चरण गर्भावस्था, द्वितीय चरण जन्मकाल, तीसरा चरण बाल्यावस्था और चौथा चरण युवास्था, जिनका अध्ययन आप आगे करेगें। अनेक मनोवैज्ञानिकों ने व्यावहारिक मनोविज्ञान की विभिन्न प्रकार की परिभाषाएं दी है उनमें से एच. डब्ल्यू. हैपनर, पॉफेन बर्जर तथा आर. डब्ल्यू. हजबैण्ड की परिभाषाएं प्रमुख है जिनको आप आगे पढेगें। व्यावहारिक मनोविज्ञान का क्षेत्र बड़ा विस्तृत एवं व्यापक है परन्तु हम यहॉ इसके मुख्य मुख्य क्षेत्रो का अध्ययन करेगें।

1.2 उद्देश्य :

इस इकाई को पढने के बाद आप–

- व्यावहारिक मनोविज्ञान के अर्थ को समझ पाऐगें
- व्यवहारिक मनोविज्ञान की विभिन्न परिभाषाओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगें
- मनोविज्ञान की उपयोगिताओं का मानव जीबन के विभिन्न क्षेत्रो में अध्ययन कर पाऐगें

1.3 व्यावहारिक मनोविज्ञान अर्थ

विभिन्न मानवीय समस्याओं के सुलझाने में मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का प्रयोग करना व्यावहारिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में आता है। अर्थात् मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में मनोविज्ञान का व्यावहारिक उपयोग उसकी समस्यों का समाधान करने एवं उसके कल्याण के लिए किया जाता है। व्यावहारिक मनोविज्ञान का लक्ष्य मानव क्रियाओं का वर्णन, भविष्य कथन और उसकी क्रियाओं पर नियंत्रण है जिससे कि व्यक्ति अपने जीवन को बुद्धिमता पूर्वक समझ सकें, निर्देशित कर सकें तथा दूसरे के जीवन को प्रभावित कर सकें।

व्यावहारिक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान का ही एक पक्ष है। जिस प्रकार विज्ञान के सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक दो पहलू होते है उसी प्रकार मनोविज्ञान में सैद्धांतिक के साथ–साथ व्यावहारिक पहलू भी है। इसमें भी मनोवैज्ञानिक या वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशाला में प्रयोग के आधार पर सामान्य सिद्धांतों की खोज करता है और इनके लाभों को जनसाधारण तक पहुंचाता है।

1.4 व्यावहारिक मनोविज्ञान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं विकास–

सर्व प्रथम पैटर्सन (1940) ने व्यावहारिक मनोविज्ञान के इतिहास के विकास पर प्रकाश डाला। उन्होनें अपने लेख Applied Psychology Comes of Age में व्यावहारिक मनोविज्ञान के विकास को चार चरणों में बताया है। ये चरण है गर्भावस्था, जन्मकाल, बाल्यावस्था तथा युवावस्था।

1. प्रथम चरण – गर्भावस्था पैटर्सन के अनुसार 1882 से लेकर 1917 तक मनोविज्ञान का विकास व्यावहारिक मनोविज्ञान के गर्भावस्था का काल था। इस काल में गाल्टन, केटेल और बिने जैसे मनोवैज्ञानिकों का योगदान महत्वपूर्ण था। इस काल में अमेरिका सहित कई देश विश्व युद्ध में लगे हुए थे।

2. द्वितीय चरण – जन्मकाल पैटर्सन ने 1917 से 1918 तक के समय को व्यावहारिक मनोविज्ञान का जन्मकाल माना है और इसी काल में कई मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का निर्माण हुआ। इस काल में ही अमेरिका जैसे देशों ने सेना में भर्ती के लिए मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का उपयोग किया और सैनिकों के चुनाव के लिए आर्मी–अल्फा और आर्मी–बीटा परीक्षणों का निर्माण हुआ। अल्फा परीक्षण अधिकारी वर्ग में चयन के लिए तथा बीटा परीक्षण जवानों व अनपढ़ लोगों के लिए उपयोग में लिये गए।

3. तीसरा चरण – बाल्यावस्था पैटर्सन के अनुसार सन् 1918 से 1937 तक मनोविज्ञान के विकास के काल को व्यावहारिक मनोविज्ञान की बाल्यावस्था मानी जानी चाहिए। इसी समय 1937 में अमेरिका में व्यावहारिक मनोविज्ञान की एक राष्ट्रीय संस्थान की स्थापना हुई जिसका उद्देश्य राष्ट्रीय सुधार में मनोविज्ञान के व्यवहार को बढ़ावा देना था।

4. चौथा चरण – युवास्था सन् 1937 के बाद व्यावहारिक मनोविज्ञान ने अपनी युवावस्था में प्रवेश किया। तब से आज तक इसका क्षेत्र बढ़ता ही जा रहा है। वर्तमान काल में मानव के जीवन के कई कार्य क्षेत्रों में इसका उपयोग हो रहा है।

1.5 व्यावहारिक मनोविज्ञान की परिभाषाएं

मनोवैज्ञानिकों ने व्यावहारिक मनोविज्ञान की विभिन्न परिभाषाएं दी है जिनमें कुछ प्रमुख परिभाषाओं को आगे प्रस्तुत किया जा रहा है। सामान्य परिभाषा के रूप में ''व्यावहारिक मनोविज्ञान सामान्य मनोविज्ञान, औद्योगिक मनोविज्ञान, नैदानिक मनोविज्ञान एवं सामाजिक मनोविज्ञान का व्यावहारिक अध्ययन है।''

एच. डब्ल्यू. हैपनर के अनुसार ''व्यावहारिक मनोविज्ञान का लक्ष्य मानव क्रियाओं का वर्णन, भविष्य कथन एवं नियंत्रण है ताकि हम स्वयं अपने जीवन को बुद्धिमतापूर्ण सही ढंग से समझ सकें तथा अन्य व्यक्तियों को प्रभावित कर सकें।''

आर. डब्ल्यू. हजबैण्ड के अनुसार ''व्यावहारिक मनोविज्ञान सामान्य प्रौढ़ व्यक्तियों के व्यावहारिक पक्षों का अध्ययन करता है।''

पॉफेन बर्जर के अनुसार ''व्यावहारिक मनोविज्ञान के उद्देश्य विभिन्न प्रकार की योग्यताओं एवं क्षमताओं से युक्त व्यक्तियों को प्रशिक्षित करने तथा उनके पर्यावरण का चयन एवं नियंत्रण करने के बाद उनको उनके कार्यों से इस प्रकार समायोजित करना है कि वे अधिक से अधिक सामाजिक एवं व्यक्तिगत सुख तथा संतोष पा सकें।''

अन्य मनोवैज्ञानिकों के अनुसार अपने या दूसरों के व्यवहार या आचरण एवं व्यावहारिक समस्याओं का अध्ययन एवं आवश्यकता अनुसार वांछित परिवर्तन लाने वाले मनोविज्ञान को व्यावहारिक मनोविज्ञान कहते है।

1.6 व्यावहारिक मनोविज्ञान के क्षेत्र

वर्तमान में व्यावहारिक मनोविज्ञान का क्षेत्र बराबर बढ़ता जा रहा है। उस हर क्षेत्र में जहां मानव जीवन में मनोवैज्ञानिक सिद्वांतों का प्रयोग किया जा सकता है वहां व्यावहारिक मनोविज्ञान का भी क्षेत्र है। अतः व्यावहारिक मनोविज्ञान का क्षेत्र बड़ा व्यापक एवं विस्तृत है परन्तु इसके क्षेत्र को निम्नलिखित मुख्य भागों में बांटा जा सकता है–

1. मानसिक स्वास्थ्य एवं चिकित्सा (Mental Hygiene and Cure)
2. सामाजिक समस्याएं (Social Problems)
3. शिक्षा (Education)
4. परामर्श तथा निर्देशन (Counselling and Guidance)
5. उद्योग एवं व्यापार (Industry and Trade)
6. सेवाओं या नौकरियों में चुनाव (Selection in Services or Jobs)
7. अपराध निरोध (Prevention of Crime)
8. सैनिक क्षेत्र (Army Field)
9. राजनैतिक क्षेत्र (Political Field)

10. विश्व शांति (World Peace)

11. यौन शिक्षा (Sex-education)

12. क्रीड़ा या खेल क्षेत्र (Sport field)

13. अन्तरिक्ष मनो विज्ञान (Space psychology)

1. मानसिक स्वास्थ्य एवं चिकित्सा (Mental Hygiene and Cure)

मानसिक स्वास्थ्य एवं चिकित्सा व्यावहारिक मनोविज्ञान का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। इस क्षेत्र में नैदानिक मनोविज्ञान से व्यक्तियों के असामान्य व्यवहार से सम्बन्धित समस्याओं को समझने, उनके कारणों का पता लगाने तथा उनका निराकरण करके व्यक्ति के वातावरण को अनुकूल बनाने में सहायता मिलती है। मानसिक स्वास्थ्य को किस तरह उत्तम बनाये रखा जा सकता है इसके लिए विभिन्न उपायों तथा तकनीकों की खोज की जाती है एवं इनकी जानकारी व्यक्तियों को दी जाती है।

मनोवैज्ञानिकों के हस्तक्षेप के पूर्व मानसिक विक्षिप्तों पर झाड़–फूंख करने वाल व्यक्तियों द्वारा अमानुषिक व्यवहार एवं अत्याचार किये जाते थे। मानसिक विक्षिप्तों को बेड़ियों में जकड़ कर बन्द स्थानों पर रखा जाता था। मनोवैज्ञानिकों ने ऐसे मानसिक विक्षिप्तों की बेड़ियां कटवा कर मनोरोगों के कारणों का विश्लेषण करके उनकी चिकित्सा प्रारम्भ की। आज प्रत्येक व्यवस्थित एवं विकसित मानसिक चिकित्सालय में ऐसे लोगों चिकित्सा होती है। कुछ मानसिक रोग जैसे हिस्टीरिया, मनोविक्षिप्तता, मनोग्रंथियां एवं मनोविदलता के बारे में लोगों में बड़ी भ्रान्तियां फैली हुई थीं। लोग इन रोगियों पर भूत–प्रेत का प्रभाव मानते थे। कई मनोरोगियों को डायन या चूड़ैल समझा जाता था और उन पर अनेक प्रकार के अत्याचार किये जाते थे। मनोवैज्ञानिकों ने इन मानसिक रोगों के कारणों का विश्लेषण करके कारणों का पता लगाकर मानसिक रोगों की सफलता पूर्वक चिकित्सा की। फ्रायड, युंग, एडलर आदि मनोविश्लेषणवादियों ने इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण अन्वेषण किये। मनोवैज्ञानिकों ने इस बात का पता लगाया कि मन और शरीर का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः रोगियों में शारीरिक रोगों के साथ–साथ मानसिक व्याधियां भी लगी होती है। कई शारीरिक रोगों को दूर करने के लिए आधुनिक चिकित्सक मनोवैज्ञानिकों एवं मनोचिकित्सकों की सहायता लेते हैं। अनेक विद्वानों का मत है कि यदि मानव प्रवृत्तियों एवं मानसिक प्रक्रियाओं को ठीक–ठीक और सही ढंग से समझ लिया जाए तो 95 % रोगी केवल सुझावों (Suggestions) के द्वारा ठीक किये जा सकते हैं।

मानसिक स्वास्थ्य वर्धन में योग – योग (ध्यान–योग की विशेष पद्धतियां जैसे–भावातीत ध्यान, प्रेक्षाध्यान तथा विपश्यना एवं अष्टागं योग) द्वारा मानसिक स्वास्थ्य एवं शारीरिक स्वास्थ्य को उत्तम बनाये रखा जा सकता है। ध्यान–योग द्वारा मानसिक रोगों की चिकित्सा भी की जा सकती है। इस क्षेत्र में मनोवैज्ञानिकों द्वारा कई शोध कार्य किये जा चुके है और निरन्तर चल रहे है। व्यावहारिक मनोविज्ञान के मानसिक स्वास्थ्य एवं चिकित्सा क्षेत्र में योग मनोविज्ञान का भी महत्वपूर्ण योगदान है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि ध्यान की विशेष पद्धतियों और योगासनों से मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य बनाये रखा जा सकता है। योग मनोविज्ञान द्वारा भी सम्पूर्ण योग की शिक्षा देकर स्वास्थ्य को सुधारा जा सकता है और बनाये रखा जा सकता है।

2. सामाजिक समस्याएं (Social Problems)

व्यावहारिक मनोविज्ञान का सामाजिक समस्याओं को सुलझाने तथा सही और स्वस्थ समाज का निर्माण करने में भी महत्वपूर्ण योगदान है। समाज को समृद्ध बनाने और उसकी प्रगति बनाये रखने में भी व्यावहारिक मनोविज्ञान उपयोगी सिद्ध हुआ है। समाज के व्यक्तियों के समुचित अनुकूलन के लिए भी इसका उपयोग किया जाता है। जाति–भेद समस्या, रूढ़िवादी मानसिकता, दहेज प्रथा, कुपोषण और बाल विवाह जैसी ज्वलन्त समस्याओं पर व्यावहारिक मनोविज्ञान का उपयोग किया जाता है। सामाजिक सेवाओं, सामाजिक शिक्षा और समाज कल्याण में भी व्यावहारिक मनोविज्ञान का उपयोग किया जाता है। मनोवैज्ञानिक सर्वेक्षणों के आधार पर जनता की अभिरुचि का पता लगाकर एवं उसको समझकर उसके अनुकूल सुझाव देने व सुधार करने का प्रयत्न किया जाता है। पश्चिमी देशों में रंग भेद की समस्याएं एवं समाज में जातिवाद, जातिभेद की समस्याएं भी मनोवैज्ञानिक है। इन सभी को व्यावहारिक मनोविज्ञान द्वारा हल किया जाता है।

समाज सामाजिक सम्बन्धों की एक व्यवस्था है और इन सामाजिक सम्बन्धों के ठीक रहने से ही समाज ठीक रहता है। इनमें गड़बड़ी से ही सामाजिक समस्याएं उत्पन्न होती है। सामाजिक सम्बन्ध मनुष्यों की प्रवृत्तियों, भावनाओं आदि के परस्पर समायोजन पर निर्भर करते है। वास्तव में सामाजिक समस्याएं इसी समायोजन की समस्याएं है। इनको सुलझाने के लिए भी मनोवैज्ञानिक तरीकों को काम में लिया जाता है।

3. शिक्षा (Education)

वर्तमान काल में शिक्षा के क्षेत्र में मनोविज्ञान का व्यवहार बढ़ता ही जा रहा है। शिक्षा के क्षेत्र में मनोविज्ञान ने क्रांति कर दी है। शिक्षा मनोविज्ञान एक स्वतंत्र विषय बन गया है। शिक्षा के क्षेत्र की समस्याओं एवं प्रत्यक्षीकरण, स्मृति, चिन्तन, तर्क आदि अनेक मानसिक प्रक्रियाओं पर शोध एवं मनोवैज्ञानिक नियमों की खोज की जा रही है। पाठ्यक्रमों को बालकों की रुचि के अनुसार बनाने की चेष्टा की जा रही है। बालकों की रुचि योग्यता और सर्वांगीण व्यक्तित्व के विकास के लिए विभिन्न शोध कार्य किये जाते रहे हैं। शिक्षा मनोविज्ञान द्वारा शिक्षा देने के उत्तम उपाय खोजे जा रहे हैं। शिक्षकों को उचित प्रशिक्षण देने एवं व्यवहार कुशल बनाने के लिए भी शिक्षा मनोविज्ञान की अहम् भूमिका है। बालकों में अनुशासन किस तरह उत्पन्न किया जाए, स्वस्थ आदतें कैसी बनाई जाएं, बुरी आदतें कैसे छुड़ाई जाएं तथा उनकी विभिन्न योग्यताओं का सर्वोत्तम विकास किस तरह किया जाए, यह भी शिक्षा मनोविज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है। इस क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक विद्यार्थियों की अभिरुचि तथा मानसिक परीक्षा करके उनके अध्ययन के विषयों को सुनिश्चित करने में सहायता देते हैं। बालक का सर्वांगीण विकास किस तरह किया जा सकता है, बालक को क्या पढ़ायें, कब पढ़ायें व कैसे पढ़ायें, इन सम्भावनाओं का भी पता लगाया जाता है। मनोवैज्ञानिक सुझावों के आधार पर पाठ्यक्रमों में सुधार तथा विद्यार्थियों में विभिन्न कार्यक्रमों का प्रबन्धन, शिक्षक–विद्यार्थी सम्बन्ध, शिक्षा–प्रणाली आदि का भी अध्ययन कर इनमें वांछित सुधार किये जाते है।

उच्च शिक्षा के लिए विषयों के चयन के लिए और शिक्षा समाप्ति के पश्चात् व्यवसायों के चयन के लिए मनोवैज्ञानिकों के द्वारा परामर्श व निर्देशन दिये जाते है जिससे छात्रों में भटकाव की सम्भावना कम रहती है। छात्रों की योग्यताएं, अभिवृत्ति, बुद्धि एवं कार्य

करने की क्षमता के आधार पर उनको उचित रोजगार की सलाह दी जाती है। चूंकि विद्यार्थी ही आगे जाकर समाज का परिपक्व नागरिक बनता है, अतः उसे सामाजिक कुरीतियों एवं बुराईयों से दूर रहने की प्रेरणा व शिक्षा दी जाती है।

मादक द्रव्यों के सेवन से होने वाली हानियों के प्रति भी विद्यार्थियों को जागृत किया जाता है जिससे कि वह आगे चलकर व्यसन मुक्त आदर्श व्यक्ति बन सकें। वर्तमान समय में संचार माध्यमों द्वारा, पाश्चात्य संस्कृति द्वारा हमारे देश के बालकों पर हमला हो रहा है, जिससे बालकों में असामान्य व्यवहार जैसे– विद्यालय से भाग जाना (भगोड़ा व्यवहार), मादक पदार्थों का सेवन करना तथा चोरी करने जैसे अन्य असामाजिक व्यवहार पैदा हो रहे हैं। इन सबका उपचार व समाधान व्यावहारिक मनोविज्ञान के अन्तर्गत मनोवैज्ञानिक करते हैं।

4. परामर्श तथा निर्देशन (Counselling and Guidance)

वर्तमान काल में व्यक्ति का जीवन संघर्षमय हो गया है। व्यक्तियों को भारी प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है। पढ़े लिखे लोगों में भी बेरोजगारी फैली हुई है। गलत व्यवसाय के चयन की समस्या हर कहीं बनी हुई है। बेरोजगारों की अपेक्षा नौकरियां बहुत कम है जिससे बेरोजगारों में संघर्ष व तनाव व्याप्त है। पढ़े–लिखे लोग भी व्यवसायों में जाना नहीं चाहते और नौकरियों के पीछे भागते है। इनमें से अधिकतर लोग यह भी समझ नहीं पाते कि वे कौन सा कार्य कर सकते है व उनमें कौन से कार्य करने की क्षमता है। ऐसे लोग ऐसे व्यवसाय चुन लेते है जो उनके लिए उपयुक्त नहीं होते और कालान्तर में वे असफल हो जाते है। अतः विकासशील देशों में मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की सहायता से परामर्शदाता एवं मनोवैज्ञानिक लोगों को उनका व्यवसाय निश्चित करने के लिए सलाह देते है। इस प्रकार की मनोवैज्ञानिक सेवाएं विद्यालयों में, महाविद्यालयों में, विश्वविद्यालयों में और रोजगार कार्यालयों में भी मनोवैज्ञानिकों की सहायता से दी जाती है।

सही लोगों के लिए सही काम का चयन (व्यवसायी चयन) और उपयुक्त काम के लिए सही व्यक्ति का चयन (कर्मचारी चयन) भी मनोविज्ञान की सहायता से किया जाता है। व्यवसाय में आने वाली रुकावटों और समस्याओं का समाधान भी मनोवैज्ञानिक तरीकों से किया जाता है। व्यावसायिक निर्देशन के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक व्यक्तिगत व घरेलू समस्याओं को सुलझाने में भी परामर्श देता है। इस तरह के परामर्श की लोगों को आवश्यकता पड़ती रहती है और परामर्श से उनकी समस्याओं का समाधान हो जाता है। व्यक्ति की स्वयं की खराब आदतें और अपने पुत्र–पुत्री या परिवार के किसी सदस्य की असमायोजन की समस्या के लिए भी मनोवैज्ञानिक परामर्श लिया जाता है। मनोवैज्ञानिक परामर्श से व्यक्ति अपने या अपने परिवार के सदस्य के व्यवहार में वांछित सुधार लाकर अपनी और अपने परिवार के सदस्यों की प्रगति कर सकता है।

5. उद्योग एवं व्यापार क्षेत्र (Industry and Trade)

उद्योग एवं व्यापार को वैज्ञानिक स्तर पर लाने एवं इनको आधुनिक बनाने में भी मनोविज्ञान की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। औद्योगिक क्षेत्रों में उद्योगों की सही ढंग से स्थापना करना, उनको आधुनिक रूप देना, कर्मचारियों का चयन, मशीनों का चयन एवं प्रबंधन को दुरूस्त करने में मनोविज्ञान ने बहुत सहायता की है। इसके अध्ययन के लिए

मनोविज्ञान की शाखाएं जैसे–औद्योगिक मनोविज्ञान (Industrial Psychology) एवं संगठन मनोविज्ञान (Organisational Psychology) की स्थापना हुई है।

औद्योगिक मनोविज्ञान उद्योग के उत्पादन की समस्या, मशीनों की समस्या, कर्मचारियों की समस्या आदि का अध्ययन करता है जबकि संगठन मनोविज्ञान उद्योग के प्रबन्धन का विशेष रूप से अध्ययन करता है। आधुनिक युग में जहां विश्वभर में उद्योग एवं आर्थिक उदारीकरण को प्राथमिकता दी जा रही है, वहीं व्यापार क्षेत्र में भी भारी बदलाव आ रहा है। ऐसी स्थिति में औद्योगिक मनोविज्ञान एवं संगठन मनोविज्ञान का महत्व और भी बढ़ जाता है।

औद्योगिक मनोविज्ञान इस बात का अध्ययन करता है कि कम से कम लागत में अधिक से अधिक अच्छी किस्म का उत्पादन किस प्रकार किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त कर्मचारियों की व्यक्तिगत समस्याएं, कर्मचारियों की औद्योगिक समस्याएं, कर्मचारियों की चयन समस्याएं, कर्मचारियों की कार्य दशाएं, कर्मचारियों का मनोबल, कर्मचारियों का प्रशिक्षण, कारखानों में मशीनों की दशाएं आदि समस्याओं का अध्ययन भी करता है। इन सभी समस्याओं के अध्ययन के बाद मनोवैज्ञानिक उद्योग एवं कर्मचारी कल्याण के लिए समाधान सुझाता है। इसके अतिरिक्त कारखानों और उद्योगशालाओं की बहुत सी समस्याओं जैसे यंत्रों में सुधार कार्य करने की विधि, कार्य करने के घण्टे तथा विश्राम के समय का वितरण, थकावट और उकताहट दूर करने के उपाय, वेतन तथा मजदूरी का निर्धारण, काम करने की स्वास्थ्यप्रद परिस्थितियां आदि पैदा करने में भी मनोवैज्ञानिकों से बहुत सहायता मिलती है। कारखानों में दुर्घटनाओं की रोकथाम सम्बंधी मनोवैज्ञानिक सुझाव भी दिये जाते है। मजदूरों या कर्मचारियों और प्रबन्धकों के बीच मतभेदों को दूर करने में, ताले बन्दी की समस्याएं सुलझाने में भी मनोविज्ञान ने बड़ी सहायता दी है। कर्मचारियों के चौकन्नेपन की, रुचियों की, अभिवृत्ति की, बुद्धि एवं विशेष योग्यताओं की विभिन्न परीक्षाओं तथा परीक्षणों आदि से जांच की जाती है।

उद्योग के उत्पादन, वितरण, विनिमय आदि कार्यों के सभी क्षेत्रों में मनोविज्ञान का प्रयोग किया जाता है। उत्पादन के उपभोक्ता, विक्रय तथा विज्ञापन आदि का मनोवैज्ञानिक ढंग से अध्ययन किया जाता है। उपभोक्ता किस तरह की वस्तुओं को पसन्द करता है और उन वस्तुओं को किस तरह बेचा जाता है, उत्पादन की गुणवत्ता किस तरह बढ़ाई जा सकती है, विज्ञापन के कौन से तरीके सफल हो सकते है आदि इन सभी प्रश्नों के मनोवैज्ञानिक समाधान सुझाये जाते है। व्यापारिक क्षेत्र एवं शेयर बाजार में भी मनोवैज्ञानिक प्रभाव देखे जाते है।

6. सेवाओं या नौकरियों में चुनाव (Selection in Services or Jobs)

वर्तमान में लगभग सभी देशों में सभी प्रकार की सरकारी और गैर सरकारी नौकरियों या सेवाओं में चुनाव के लिए मनोवैज्ञानिकों और मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की सहायता ली जाती है। मनोवैज्ञानिकों के द्वारा बनाये गए मनोपरीक्षण एवं परीक्षाओं के आधार पर सार्वजनिक सेवा आयोग, लोक सेवा आयोग तथा अन्य नियुक्ति संस्थाएं, सरकारी हों या गैर सरकारी, कर्मचारियों का चुनाव करती है। सेना में भी थल, वायु और जल सेवाओं के लिए योग्यता परीक्षाओं द्वारा योग्य व्यक्ति का चुनाव किया जाता है। ये योग्यता परीक्षाएं वास्तव में मनोवैज्ञानिक परीक्षाएं ही है। द्वितीय विश्वयुद्ध में सेना में भर्ती के लिए आर्मी

एल्फा तथा आर्मी बीटा मनोवैज्ञानिक परीक्षण बनाए गए थे। अधिकारियों के चुनाव के लिए आर्मी एल्फा परीक्षण तथा सामान्य सैनिकों के चुनाव के लिए आर्मी बीटा परीक्षण काम में लिए गए। कारखानों में मशीनों को चलाने के लिए उपयुक्त कर्मचारी के चुनाव के लिए भी मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का उपयोग किया जाता है। गैर सरकारी संस्थाएं भी अपने कर्मचारियों का चुनाव मनोवैज्ञानिक ढंग से करती है। आधुनिक युग में जहां नयी–नयी तकनीकों का उपयोग बढ़ रहा है वहीं उनके संचालन के लिए चयनित कर्मचारियों की नियुक्ति होती है। इन कर्मचारियों का चुनाव मनोवैज्ञानिक विधि से होता है। इस तरह हम देखते है कि नौकरियों में चुनाव के लिए व्यावहारिक मनोविज्ञान का बहुत महत्व है।

7. अपराध निरोध (Prevention of Crime)

अपराधों एवं अपराधियों की रोकथाम में मनोविज्ञान ने बहुत सहायता की है। बढ़ती जनसंख्या एवं बेरोजगारी ने समाज में अपराधियों एवं अपराधों की संख्या भी बढ़ा दी है। मनोविज्ञान के अनुसार अपराधी को दण्ड देने की अपेक्षा उसके दोषों को समझकर उनमें सुधार लाने का प्रयास किया जाता है। अपराधियों की मानसिकता बदलने का प्रयास किया जाता है ताकि वह अपराध कर ही न सके। अपराधियों को सुधारने की दिशा में नित्य नये प्रयोग किये जाते है। खुले जेल–खाने, सुधार गृह, प्रोबेशन (बालसुधार गृह), जूवेनिल रिफार्म हाऊस आदि इसी के परिणाम है। इस प्रकार मनोविज्ञान के प्रभाव से अपराधियों के प्रति दुर्व्यवहार बन्द हो गया है और उनमें सुधार होता जा रहा है।

बाल एवं किशोर अपराधियों को सुधारने के लिए भी कई मनोवैज्ञानिक उपायों को अपनाया जाता है। किशोर अपराधियों के रहने के वातावरण एवं उनकी परिस्थितियों में भी परिवर्तन लाने का मनोवैज्ञानिक प्रयास किया जाता है। मनोविज्ञान ने अपने शोध कार्यों में यह सिद्ध कर दिया है कि अपराधी अकेले ही अपराधों के लिये उत्तरदायी नहीं है बल्कि उनकी परिस्थितियां, उनका वातावरण और समाज भी अपराध के लिए जिम्मेदार है। अतः मनोविज्ञान इन सभी का उपचार करने का प्रयत्न करता है। छोटे बच्चों द्वारा मादक द्रव्यों की तस्करी करना और उनका सेवन करना बच्चों का अपराध नहीं है बल्कि उनका समाज, उनका वातावरण एवं परिस्थितियां यह कृत्य करने के लिए उन्हें बाध्य करती है। ऐसी परिस्थिति में मनोवैज्ञानिक छोटे बच्चों की परिस्थितियों, मानसिक अवस्थाओं में सुधार लाने का प्रयत्न करते है। छोटे बच्चों के वातावरण, परिस्थितियां एवं उनकी दिनचर्या को भी बदलने का प्रयास किया जाता है।

अपराध निरोध के अतिरिक्त न्याय करने में भी मनोविज्ञान से बड़ी सहायता मिलती है। न्यायधीश की मनोवैज्ञानिक अर्न्तदृष्टि सही न्याय देने में सक्षम होती है। अनेक यंत्रों द्वारा भी अपराधी की आन्तरिक स्थिति का पता लगाया जा सकता है और सही न्याय किया जा सकता है।

8. सैनिक क्षेत्र (Army Field)

सेना में भर्ती हेतु उपयुक्त व्यक्तियों के चुनाव में मनोविज्ञान की सहायता ली जाती है। जल, थल तथा वायु सेनाओं में भर्ती के लिए अभ्यासार्थियों का चयन मनोवैज्ञानिक परीक्षण द्वारा किया जाता है। युद्ध काल के दौरान शत्रु को भयभीत करने तथा सैनिकों का मनोबल बढ़ाने के लिए मनोविज्ञान की सहायता ली जाती है। देशों के बीच शीतयुद्ध मनोवैज्ञानिक प्रचारों पर ही निर्भर होते है। सैनिकों में स्थिरता और दृढ़ता बनाये रखने के

लिए मनोवैज्ञानिक सुझाव दिये जाते है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि अल्फा और बीटा परीक्षण भी सेना में सैनिकों के चयन के लिए काम आते है। ये परीक्षण मनोवैज्ञानिक स्तर पर बनाये जाते है। युद्ध के दौरान कई सैनिक मानसिक रोगों के शिकार हो जाते है। युद्ध की स्थितियों से मनोबल एवं मनोस्थितियों में बदलाव आ जाता है और सैनिक युद्ध से भाग सकता है। अतः सैनिकों का मनोबल बनाये रखने व मानसिक द्वन्द्वों की तुरंत चिकित्सा करने के लिए मनोवैज्ञानिकों एवं मनोचिकित्सकों की सहायता ली जाती है।

9. राजनीतिक क्षेत्र (Political Field)

राजनीतिक क्षेत्र में, चाहे राज्य या देश तानाशाही हो, सामन्तशाही हो या जनतंत्रात्मक हो, मनोविज्ञान का व्यापक रूप से प्रयोग होता है। शासक को सफल होने के लिए शासकों के मनोविज्ञान को अच्छी तरह से जानना जरूरी है। अच्छा शासक अपनी प्रजा का मनोविज्ञान जानकर उसके अनुसार क्रिया करता है। कानून बनाने के बाद शासन की समस्या हल नहीं हो जाती क्योंकि जनता में कानून को मानने और तोड़ने दोनों तरह की प्रवृत्तियां पायी जाती है। कानून का पालन कराने के लिए शासक को जनता से मनोवैज्ञानिक ढंग से व्यवहार करने की आवश्यकता होती है। इसी तरह कानून बनाने में भी इस बात के मनोवैज्ञानिक अध्ययन की आवश्यकता है कि उस कानून से प्रभावित होने वाले लोगों पर क्या प्रभाव पड़ेगा तथा उनकी क्या प्रतिक्रिया होगी? राजनीति का एक महत्वपूर्ण पहलू चुनाव भी है और चुनाव में प्रचार का बड़ा महत्व है। मनोवैज्ञानिक ढंग से किया गया चुनाव प्रचार व्यक्ति को अपने उद्देश्य में सफलता दे सकता है। चतुर लोग मनोवैज्ञानिक प्रचारों से मतदाताओं का रुख ऐन वक्त पर पलट देते है और हारी हुई बाजी को जीत लेते है। कुछ लोग चुनाव के समय लोगों की भावनाएं जानकर, उनकी भावनाओं को मनोवैज्ञानिक ढंग से भुनाकर चुनाव जीत जाते है। चुनाव के समय विशेष क्षेत्र के मतदाता क्या चाहते है? उनकी मानसिक दशाएं कैसी है? इस ज्ञान के आधार पर ही चुनाव प्रचार किया जाता है।

राजनैतिक प्रशासन में भी मनोविज्ञान का बहुत महत्व है। राजनैतिक पार्टियों का मनोबल गिराने या बढ़ाने में भी मनोविज्ञान की अहम भूमिका रहती है। उपद्रवों या दंगा करने वाली भीड़ को शान्त करना हर अधिकारी के लिए सम्भव नहीं है। ऐसा तो वहीं कर सकता है जो भीड़ मनोविज्ञान को अच्छी तरह जानता हो। राजनेता अपनी राजनीति में तभी सफल हो सकता है जब उसे अपने दल के कार्यकर्त्ताओं के मनोविज्ञान का ज्ञान हो, साथ ही साथ दूसरे दलों के मनोविज्ञान का भी।

10. विश्व शान्ति (World Peace)

विश्व शान्ति को बनाये रखने के लिए मनोविज्ञान की भूमिका अहम् है। व्यक्तिगत विभिन्नताओं के कारण समझ लेने पर विभिन्न राष्ट्रों के लोगों में आपसी मतभेद कम हो जाते है। लोगों के व्यक्तित्व के विधेयात्मक गुणों को बढ़ाकर तथा हिंसात्मक एवं आक्रामक प्रवृत्तियों को ज्ञान से अहानिकारक तरीकों जैसे खेलों की प्रतियोगिताओं आदि के द्वारा निकालकर विश्व में हिंसा और संघर्ष कम किये जा सकते है। अशान्ति और संघर्ष के मनोवैज्ञानिक कारणों पर दृष्टि रखकर उनके प्रकट होने से पहले ही उन्हें खत्म किया जा सकता है। विभिन्न जातियों एवं प्रजातियों तथा सम्प्रदायों की प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति पर नजर रखी जा सकती है और उनको आपसी संघर्ष से बचाया जा सकता है। विश्व शान्ति

की समस्याएं मानव सम्बन्धों से जुड़ी हुई है। अतः मानव मनोविज्ञान के ज्ञान से विश्व में शान्ति बनाई रखी जा सकती है।

11. यौन शिक्षा (Sex-education)

यौन–क्रिया सभी प्राणियों में एक आवश्यक शारीरिक या जैविक प्रेरणा है। सभी प्राणी प्रजनन से अपना वंश बढ़ाते है। परन्तु जब मनुष्य में यौन–क्रिया समय से पूर्व शुरू हो जाए और अनैतिक आचरण के लक्षणों के रूप में प्रकट होने लगे तो यह एक व्यक्तिगत ही नहीं बल्कि सामाजिक समस्या भी बन जाती है। जब व्यक्ति असामान्य यौन व्यवहार करने लगता है तथा असामान्य साधनों से अपनी काम पूर्ति करता है तो यह अनैतिक आचरण या चरित्र विकृति कहलाती है।

वर्तमान समय में पाश्चात्य यौन स्वच्छन्दता का पूरे विश्व के लोगों पर दुष्प्रभाव पड़ता जा रहा है। अवयस्क व्यक्ति भी इस समस्या की चपेट में आते है और समय से पूर्व वयस्क बन जाते है। टी.वी. मीडिया एवं अन्य कुछ मीडिया इस समस्या के प्रचारक है। यौन स्वच्छन्दता के कारण व्यक्तियों में चरित्र विकृतियां उत्पन्न होती जा रही है। बलात्कार एवं अन्य यौन विकृतियां भी इसके कारण है। दूसरी ओर इन विकृतियों के बढ़ने से व्यक्तियों में आपराधिक भावना भी पैदा होती है और वे मनोलैंगिक (Psycho-sexual) समस्याओं के शिकार हो जाते है। सम्भोग का सही अर्थ न समझना, मनोनपुंसकता का भय पैदा हो जाना आदि अनेक यौन समस्याओं के समाधान के लिए व्यावहारिक मनोविज्ञान एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

व्यावहारिक मनोविज्ञान की यौन–शिक्षा शाखा उपरोक्त प्रकार के चरित्र विकृतियों में सुधार लाने एवं उन्हें ठीक करने के लिए उपाय सुझाती है। मनो–लोगिक विकृतियों की भी मनोविश्लेषण एवं अन्य मनो–चिकित्सा द्वारा चिकित्सा की जाती है। अवयस्क व्यक्तियों को यौन शिक्षा देकर यौन का सही अर्थ समझाया जाता है और उनकी यौन समस्याओं का समाधान किया जाता है। यौनाचारण के लिए उन्हें सही समय और व्यवहार की जानकारी दी जाती है।

12. क्रीड़ा या खेल क्षेत्र (Sport Field)

खेल या क्रीड़ा जगत् में भी मनोविज्ञान का पर्याप्त उपयोग होता है। खिलाड़ियों के चयन के लिए ही मनोविज्ञान के परीक्षणों का उपयोग होता है। खेलकूद प्रतियोगिताओं में खिलाड़ियों का मनोबल और उत्साह बढ़ाने के लिए भी मनोविज्ञान का बहुत उपयोग होता है। यदि खिलाड़ी किसी कारणवश हतोत्साहित हो जाए तो ऐसी स्थिति में मनोविज्ञान उसकी पूरी सहायता करता है। खिलाड़ियों के मानसिक स्तर को सही बनाए रखने के लिए मनोविज्ञान का पर्याप्त उपयोग किया जाता है। खेल या प्रतियोगिता के समय खिलाड़ियों में चिन्ताएं, नैराश्यता एवं कुंठाएं उत्पन्न हो सकती है तथा उनमें प्रतियोगिता का एक दबाव बना रहता है। ऐसी स्थितियों में मनोवैज्ञानिक उनकी समस्याओं का निदान कर उचित उपाय या परामर्श सुझाते है जिससे कि खिलाड़ियों का मनोबल ऊंचा बना रहे। उनकी चिंताएं, कुंठाएं तथा नैराश्यता में कमी लायी जा सके। जिससे उनके खेल का प्रदर्शन बेहतर प्रतियोगिताओं में मनोवैज्ञानिक खिलाड़ियों के लिए बाहरी वातावरण को उनके पक्ष में बनाने के लिए भी प्रयत्न करते है। दर्शकों में कुछ ऐसे दर्शक बिठा दिए जाते है जो निरन्तर खेलने वाले खिलाड़ियों का मनोबल बढ़ाने के लिए दीर्घा से सकारात्मक टिप्पणी

करके प्रोत्साहित करते रहते है। इसी तरह विरोधी टीम का मनोबल कम करने के लिए दीर्घा में दर्शक बिठा दिए जाते है। ये सब मनोवैज्ञानिक स्तर पर होते है। खिलाड़ियों का मानसिक स्वास्थ्य बनाए रखने के लिए भी मनोविज्ञान पूरी तरह से उपयोगी होता है। नये खिलाड़ियों को विभिन्न क्रिड़ाओं के लिए मनोवैज्ञानिक ढ़गं से प्रशिक्षण दिया जाता है। क्रिड़ाओं की बारीकियों को भी मनोवैज्ञानिक ढ़गं से समझाया जाता है।

13. अन्तरिक्ष मनोविज्ञान (Space psychology)

अन्तरिक्ष में जाने वाले व्यक्तियों का सभी प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षण किये जातें हैं। प्रगोगशालाओं में कृतिम अन्तरिक्ष का निर्माण कर उनके व्यवहार पर पड.नें वाले अन्तरिक्षीय उड.ानों के प्रभावों का भी मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न

I वस्तुनिष्ठ प्रश्नः–

1. व्यावहारिक मनोविज्ञान का विकास कितने चरणों में हुआ–

(अ) तीन चरणों में (व) चार चरणों में (स) पांच चरणों में (द) छ: चरणों में

2. व्यावहारिक मनोविज्ञान के इतिहास पर किसने प्रकाश डाला–

(अ) फ्रायड (व) ऐडलर (स) शेल्डन (द) पैटर्सन

II लघूत्तरीय प्रश्नः–

1. व्यावहारिक मनोविज्ञान के कितने क्षेत्र है?
2. व्यावहारिक मनोविज्ञान के मानसिक स्वास्थ्य एवं चिकित्सा क्षेत्र को समझाइये।
3. सेवाओं या नौकरियों के चुनाव में व्यावहारिक मनोविज्ञान की भूमिका को समझाइये।
4. शिक्षा के क्षेत्र व्यावहारिक मनोविज्ञान की भूमिका को समझाइये।
5. सामाजिक क्षेत्र में व्यावहारिक मनोविज्ञान की उपयोगिता बताइये।
6. सैनिक क्षेत्र में व्यावहारिक मनोविज्ञान की उपयोगिता बताइये।

1.7 सारांश

उपरोक्त पाठ के अध्ययन के बाद आप यह समझ पाये हैं कि व्यावहारिक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान का ही एक पहलू है। मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में मनोविज्ञान का व्यावहारिक उपयोग उसकी समस्या का समाधान करने एवं उसके कल्याण के लिए किया जाता है। आप यह भी समझ पाये हैं कि व्यावहारिक मनोविज्ञान के उद्देश्य मानव व्यवहार का अध्यन करना उसकी क्रियाओं का वर्णन करना तथा भविष्य कथन करना और मानव

क्रियाओं पर नियंत्रण रखना है जिससे कि वह अपने जीवन को बुद्धिमता पूर्वक समझ सकें और निर्देशित कर सकें तथा दूसरे के जीवन को प्रभावित कर सकें।

पैटर्सन (1940) ने व्यवहारिक मनोविज्ञान के विकास पर विशेष प्रकाश डाला। उनके अनुसार व्यावहारिक मनोविज्ञान का विकास चार चरणों में हुआ है। ये चरण हैं—गर्भावस्था, जन्म, बचपन तथा युवावस्था।

आप यह भी जान पाये हैं कि मनोवैज्ञानिकों ने व्यावहारिक मनोविज्ञान की विभिन्न परिभाषाएं दी है जिनमें हैपनर, हजबैण्ड एव ंपॉफेन बर्जर जैसे मनोवैज्ञानिकों की परिभाषाएं प्रमुख है।

व्यावहारिक मनोविज्ञान के क्षेत्र बड़े व्यापक एवं विस्तृत है, परन्तु इसके क्षेत्रों को 13 मुख्य भागों में बांटा गया है यथा —

1. मानसिक स्वास्थ्य एवं चिकित्सा 2. सामाजिक समस्याएं 3. शिक्षा 4. परामर्श तथा निर्देशन 5. उद्योग एवं व्यापार6. सेवाओं या नौकरियों में चुनाव 7. अपराध निरोध8. सैनिक क्षेत्र 9. राजनैतिक क्षेत्र 10. विश्व शांति 11. यौन शिक्षा 12. क्रीड़ा या खेल क्षेत्र 13. अन्तरिक्ष मनोविज्ञान।

1.8 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

1—ब 2—द

1.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गौड़ . बी.पी.; व्यावहारिक मनोविज्ञान एवं जीवन विज्ञान (2004-2005), *जैन विश्व भरती विश्वविद्यालय,* लाडनूं।

2. शर्मा, रामनाथ : व्यावहारिक मनोविज्ञान की रूपरेखा, (1973) *केदारनाथ रामनाथ,* मेरठ।

राय, रामकुमार, व्यावहारिक मनोविज्ञान; (1974) *चौखम्बा विद्याभवन,* वाराणसी।

1.10 निबंधात्मक प्रश्नः—

1. व्यावहारिक मनोविज्ञान की विभिन्न परिभाषाएं देते हुए इसके विकास की व्याख्या कीजिये।

2. व्यावहारिक मनोविज्ञान के कौन—कौन से मुख्य क्षेत्र हैं? किन्हीं दो मुख्य क्षेत्रों का वर्णन कीजिए।

इकाई–2 व्यक्तित्व का अर्थ, परिभाषाएं एवं निर्धारक

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य :
2.3 व्यक्तित्व का अर्थ
2.4 परिभाषाएं
2.5 व्यक्तित्व के निर्धारक
2.6 सारांश
2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.9 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

व्यक्तित्व मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की एक प्रमुख शाखा है। यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण एवं रोचक विषय भी है। इसके अन्तर्गत व्यक्तित्व की संरचना, स्वरूप, गतिकी, व्यक्तित्व चिकास का अध्ययन एवं मापन भी किया जाता है। व्यक्ति के व्यवहार का पूर्व कथन, वर्तमान एवं भविष्य कथन भी व्यक्तित्व के अध्ययन के आधार पर किया जा सकता है। इस अध्याय में व्यक्तित्व क्या है, उसकी परिभाषाएं एवं व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कारकों का हम अध्ययन करेंगे।

2.2 उद्देश्य :

इस इकाई को पढ़नें के बाद आप –

(1) व्यक्तित्व के अर्थ को समझ पायेंगें।

(2) व्यक्तित्व की विभिन्न परिभाषओं को गहनता से समझ पायेंगें।

(3) व्यक्तित्व को प्रभावित करनें वाले विभिन्न कारकों के बारे में भी जान पायेंगें।

2.3 व्यक्तित्व का अर्थ–

प्रत्येक व्यक्ति में कुछ विशेष गुण या विशेषताएं होती है जो दूसरे व्यक्ति में नहीं होतीं। इन्हीं गुणों एवं विशेषताओं के कारण ही प्रत्येक व्यक्ति दूसरे से भिन्न होता है। व्यक्ति के इन गुणों का संगठन ही व्यक्ति का व्यक्तित्व कहलाता है।

व्यक्तित्व का अंग्रेजी रूपान्तरण पर्सनलिटी (Personality) है जो लेटिन भाषा के पर्सोना (Persona) शब्द से विकसित हुआ। पर्सोना का अर्थ बाह्य आवरण या मुखौटा (Mask) होता है जिसको पहनकर या धारणकर कलाकार रूप बदलकर नाटक प्रस्तुत करते है। रोमन में विशेष गुणयुक्त पात्र को ही पर्सोना कहा जाता था। इस दूसरे अर्थ को ही आधुनिक मनोविज्ञान के पर्सोनलिटी में लिया गया है।

जनसाधारण में व्यक्तित्व का अर्थ व्यक्ति के बाह्य रूप एवं पहनावे से लिया जाता है, परन्तु मनोविज्ञान में व्यक्तित्व का अर्थ व्यक्ति के रूप गुणों की समष्ठी से है, अर्थात् व्यक्ति के बाह्य आवरण के गुण और आन्तरिक तत्व, दोनों को माना जाता है। दर्शन में व्यक्तित्व को आन्तरिक तत्व 'जीव' माना जाता है। व्यक्तित्व एक स्थिर अवस्था न होकर एक गत्यात्मक समष्ठी है जिस पर परिवेश का प्रभाव पड़ता है और इसी कारण से उसमें बदलाव आ सकता है। व्यक्तित्व विशेष लक्षणों का योग न होकर व्यक्ति के व्यवहार का समग्र गुण (Total quality) है। व्यक्ति के आचार–विचार, व्यवहार, क्रियाएं और गतिविधियों में व्यक्ति का व्यक्तित्व झलकता है। व्यक्ति का समस्त व्यवहार उसके वातावरण या परिवेश में समायोजन करने के लिए होता है।

2.4 परिभाषाएं–

मनोवैज्ञानिकों, दार्शनिकों एवं समाज शास्त्रियों ने व्यक्ति के विभिन्न पहलुओं को ध्यान में रखते हुए विभिन्न परिभाषाएं दी हैं। इस तरह व्यक्तित्व की सैकड़ों परिभाषाएं दी जा चुकी हैं। गिलफोर्ड (Guilford,1959) ने इन परिभाषाओं को चार वर्गों में बांटा है जो निम्नलिखित है–

1. संग्राही (Ominbus) परिभाषाएं
2. समाकलनात्मक (Integrative) परिभाषाएं
3. सोपानित परिभाषाएं (Hierarchical Definitions)
4. समायोजन (Adjustment) आधारित परिभाषाएं।

उपरोक्त वर्गों में आने वाली व्यक्तित्व की विभिन्न परिभाषाएं विस्तार से आगे दी जारही हैः–

1. संग्राही (Ominibus) परिभाषाएं–इस वर्ग में वे परिभाषाएं आती है जो व्यक्ति की समस्त अनुक्रियाओं, प्रतिक्रियाओं तथा जैविक गुणों के समुच्चय पर ध्यान देती है। इसमें कैम्फ तथा मार्टन प्रिंस की परिभाषाएं महत्वपूर्ण है।

कैम्फ ((Kempf,1919) के अनुसार (डा.जायसवाल 1974) ''व्यक्तित्व उन प्राभ्यास संस्थाओं का या उन अभ्यास के रूपों का समन्वय है जो वातावरण में व्यक्ति के विशेष सन्तुलन को प्रस्तुत करता है।'' "Personality is the habitual mode of

adjustment which the organism effects between its own egocentric drives and the exigencies of the environment." Kempf, 1919.

मार्टन प्रिंस (Morton Prience,1924) की परिभाषा को डा.जायसवाल ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है ''व्यक्तित्व, व्यक्ति की समस्त जैविक, जन्मजात विन्यास, उद्वेग, रुझान, क्षुधाएं, मूल प्रवृत्तियां तथा अर्जित विन्यासों एवं प्रवृत्तियों का समूह है।''

"Personality is the sum total of all the biological innate dispositions, impulses, tendencies, appetites and instincts of the individual and the acquired dispositions and tendencies-acquired by experience." Morton Prince 1924.

2. समाकलनात्मक (**Integrative**) परिभाषाएं–इस वर्ग की परिभाषाओं में व्यक्तित्व के विभिन्न रूपों, गुणों एवं तत्वों के योग पर बल दिया जाता है। इन गुणों के समाकलन से व्यक्ति में एक विशेषता उत्पन्न हो जाती है। इस वर्ग की परिभाषाओं में वारेन तथा कारमाइकल (1930) तथा मेकर्डी की परिभाषाएं उल्लेखनीय है।

वारेन तथा कारमाइकल (Warren and Carmichacl) के अनुसार ''व्यक्ति के विकास की किसी अवस्था पर उसके सम्पूर्ण संगठन को व्यक्तित्व कहते है।''(डा.जायसवाल 1974).

"Personality is the entire organisation of a human being at any stage of his development." Warren and Carmichacl, 1930

मेकर्डी की परिभाषा को डा.जायसवाल (1974) इस प्रकार प्रस्तुत किया है ''व्यक्तित्व रूचियों का वह समाकलन है जो जीवन के व्यवहार में एक विशेष प्रकार की प्रवृत्ति उत्पन्न करता है।''

मेकर्डी (J.T. MacCurdy) के शब्दों में "Personality is an integration patterns (interests) which gives a peculiar individual trend to the behaviour of the organism."

3. सोपानित परिभाषाएं (Hierarchical Definitions)–विलियन जैम्स तथा मैस्लो जैसे कुछ मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व के कई सोपान बताए है। इन मनोवैज्ञानिकों ने मुख्य रूप से व्यक्तित्व के चार सोपान माने है।

1. भौतिक व्यक्तित्व (Material self)
2. सामाजिक व्यक्तित्व (Social self)
3. आध्यात्मिक व्यक्तित्व (Spiritual self)
4. शुद्ध अहम् (Pure Ego)

प्रथम सोपान के अन्तर्गत व्यक्ति के शरीर की बनावट में आनुवांशिकता से प्राप्त विशेष गुण सम्मिलित है जबकि द्वितीय सोपान में सामाजिक सम्बन्धों और सामाजिक विकास का उल्लेख होता है। व्यक्तित्व का तीसरा सोपान जैम्स ने आध्यात्मिक व्यक्तित्व माना है। उनके अनुसार इस सोपान वाले व्यक्ति की रूचि आध्यात्मिक विषयों में होती है और सामाजिक सम्बन्धों से इसे अधिक महत्व देता है। अब उसके आध्यात्मिक व्यक्तित्व का विकास होने लगता है। चौथे सोपान में व्यक्ति अपने आत्म स्वरूप का पूर्ण ज्ञान कर लेता है और सभी वस्तुओं में आत्म दर्शन करता है और तब वह अपने व्यक्तित्व के अंतिम सोपान पर पहुंचता है। श्री अरविन्द ने भी व्यक्ति विकास के क्रम में करीब–करीब इसी प्रकार के विचार प्रकट किये है। उन्होंने भौतिक (Physical), भावात्मक या प्राणिक (Vital), बौद्धिक (Mental) चैत्य (Psyche), आध्यात्मिक (Spiritual) तथा अति मानसिक (Supramental) आदि पदों का उल्लेख किया है।

4. समायोजन (Adjustment)–इस वर्ग की परिभाषाओं में मनोवैज्ञानिक व्यक्ति के समायोजन को महत्वपूर्ण मानते हैं और इसी के आधार पर व्यक्तित्व का अध्ययन तथा व्याख्या की जाती है। इस वर्ग में वे परिभाषाएं आती है जिनमें समायोजन पर विशेष बल दिया जाता है। व्यक्ति में ऐसे गुण जो उसको समायोजित करने में उसकी सहायता करते है, चाहे वे शारीरिक हों या मानसिक इन सभी का गठन इस प्रकार का होता है कि वे निरन्तर गतिशील रहते हैं। व्यक्ति में इन गुणों की गत्यात्मकता के कारण ही एक विशेष प्रकार की अनन्यता या अपूर्वता (uniqueneSS) पैदा हो जाती है।

बोरिंग के अनुसार ''व्यक्तित्व व्यक्ति का उसके वातावरण के साथ अपूर्व व स्थायी समायोजन है। "Personality is an individual's consistant adjustment to his environment."

व्यक्ति के व्यक्तित्व को सम्पूर्ण रूप से परिभाषित करने में उपरोक्त परिभाषाएं आंशिक है। किसी व्यक्ति का चाहे कितने ही मानसिक या शारीरिक गुणों का योग हो, कितना ही चिन्तनशील या ज्ञानी हो, परन्तु उसके व्यवहार में गतिशीलता न होने पर उसका व्यवहार और समायोजन अधूरा रह जाता है। आलपोर्ट ने इस बात को ध्यान में रखकर अपने विचारों को व्यक्त करके व्यक्तित्व की परिभाषा को सर्वमान्य बनाने का पूर्ण एवं सफल प्रयास किया। उसकी परिभाषाएं अधिकांश मनोवैज्ञानिकों द्वारा पूर्ण परिभाषा के रूप में स्वीकार की गई है। अतः इस वर्ग की परिभाषाओं में आलपोर्ट की परिभाषा महत्वपूर्ण है।

जायसवाल (1987) के अनुसार आलपोर्ट (1939) ने व्यक्तित्व को इस प्रकार परिभाषित किया है ''व्यक्तित्व व्यक्ति की उन मनोशारीरिक पद्धतियों का वह आन्तरिक गत्यात्मक संगठन है जो कि पर्यावरण में उसके अनन्य समायोजनों को निर्धारित करता है।''

"Peresonality is the dynamic organisation within the individual of those psycho-physical systems that determine his unique adjustment to his environment" G. W. Allort.

2.5 व्यक्तित्व के निर्धारक (Determinants of personality)–

व्यक्तित्व को प्रभावित करने में कुछ विशेष तत्वों का हाथ रहता है उन्हें हम व्यक्तित्व के निर्धारक कहते है। इन्हीं तत्वों के प्रभाव से इन्हीं तत्वों के अनुरूप व्यक्तित्व का विकास होता है। कुछ विद्वानों ने व्यक्तित्व के निर्धारण में जैविक (Biological) आधार को प्रमुख माना है तो कुछ ने पर्यावरण संबंधी आधार को प्रधानता दी है, परन्तु व्यक्तित्व के विकास में इन दोनों निर्धारकों का प्रभाव रहता है। अतः इन दोनों निर्धारकों – 1. जैविक 2. पर्यावरण का अध्ययन आवश्यक है।

1. जैविक निर्धारक (Biological Determinants)

मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व प्रभावित करने वालें निम्न चार जैविक निर्धारकों को प्रमुख माना है –

1. आनुवांशिकता (Heredity)
2. अन्तःस्रावी ग्रंथियां (Endocrine Glands)
3. शारीरिक गठन व स्वास्थ्य (Physique and Health)
4. शारीरिक रसायन (Body Chemistry)

1. आनुवांशिकता (Heredity)– व्यक्तित्व में कुछ गुण पैतृक या आनुवांशिक होते है। शरीर का रंग, रूप, शरीर की बनावट गुणों से युक्त हो सकते है। इसका कारण बालक को प्राप्त हुए अपने माता–पिता के पितृय सूत्र क्रोमोसोम्स है। बालक की आनुवांशिकता में केवल उसके माता–पिता की देन ही नहीं होती। बालक की आनुवांशिकता का आधा भाग माता–पिता से, एक चौथाई भाग दादा–दादी से, नाना–नानी से व आठवां भाग परदादा–दादी और अन्य पुरखों से प्राप्त होता है। अतः बालक के व्यक्तित्व पर पैतृक गुणों का प्रभाव पड़ता है। उसका रंग–रूप या शारीरिक गठन के गुण उसके माता या पिता से या उसके दादा या दादी के गुणों के अनुरूप हो सकते है। इसी तरह उसमें बुद्धि एवं मानसिक क्षमताओं के गुण अपने पूर्वजों के अनुरूप हो सकते है। कई अध्ययनों में यह देखा गया है कि पूर्वजों की मानसिक व्याधियों के गुण उनकी पीढ़ी के किसी भी व्यक्ति में प्रकट हो सकते है। इस तरह हम देखते है कि पैतृक गुणों का व्यक्ति के व्यक्तित्व गठन पर कम या ज्यादा प्रभाव पड़ता है।

2. शारीरिक गठन और स्वास्थ्य (Physique and Health)–शारीरिक गठन के अन्तर्गत व्यक्ति की लम्बाई, बनावट, वर्ण, बाल, आंखें व नाक नक्शा आदि अंगों की गणना होती है। ये शारीरिक विशेषताएं इतनी स्पष्ट होती है कि बहुत से लोग इन्हीं से व्यक्ति का बोध करते है। हालांकि यह दृष्टिकोण ठीक नहीं है फिर भी ये विशेषताएं व्यक्तित्व की द्योतक अवश्य है। शरीर से हृष्ट–पुष्ट और सुन्दर व्यक्ति को देखकर लोग प्रभावित होते है। वे उसके शरीर के गठन की प्रशंसा करते है। इससे उस व्यक्ति के मानसिक पहलू पर प्रशंसा

का प्रभाव ऐसा पड़ता है कि दूसरों की अपेक्षा वह अपने को श्रेष्ठ समझने लगता है और उसमें आत्मविश्वास और स्वावलम्बन के भाव पैदा हो जाते है।

शारीरिक गठन ठीक न होने और शारीरिक अंगहीनता रहने पर व्यक्ति में हीन भावना पैदा हो जाती है। वह अपने आपको गया बीता व हीन समझता है और उसमें आत्मविश्वास की कमी हो सकती है, वह अपने कार्य की सफलता में सदा आशंकित रहता है और अभाव की पूर्ति के लिए वह असामाजिक व्यवहार को अपना सकता है।

व्यक्तित्व विकास पर स्वास्थ्य का भी असर पड़ता है। जो व्यक्ति शारीरिक रूप से स्वस्थ रहता है वह अच्छा सामाजिक जीवन व्यतीत करता है और उसमें सामाजिकता विकसित होती है। स्वस्थ्य व्यक्ति अपने कार्य को सफलता से समय पर पूरा करके अपने उद्देश्य की प्राप्ति कर लेता है। इसके ठीक विपरीत अस्वस्थ्य व्यक्ति का व्यक्तित्व अधूरा रह जाता है। अस्वस्थता के कारण अपने कार्यों को समय पर पूरा नहीं कर पाता जिससे वह अपने लक्ष्य की प्राप्ति समय पर नहीं कर पाता। उसमें कार्य करने की रुचि भी कम रहती है। अस्वस्थ व्यक्ति दूसरों को प्रभावित भी नहीं कर सकता। इस तरह, व्यक्तित्व पर शारीरिक गठन और स्वास्थ्य का काफी प्रभाव पड़ता है।

3. अंतःस्रावी ग्रंथियां एवं व्यक्तित्व (Endocrine Glands and Personality)– व्यक्तितव के विकास में अन्तःस्रावी ग्रंथियों का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। ये प्रत्येक मनुष्य के शरीर में पायी जाती है। इन ग्रंथियों को नलिका विहीन ग्रंथियां भी कहते है। ये बिना नलिकाओं के शरीर में स्राव भेजती हैं। इनके स्राव न्यासर या हार्मोन्स (Harmons) कहलाते है। विभिन्न ग्रंथियां एक या एक से अधिक हार्मोन्स का स्राव करती है। मुख्य रूप से ये ग्रंथियां 8 होती है। ये है–

1. पियूष ग्रंथि (Pituitary Gland)
2. पीनियल ग्रंथि (Pineal Gland)
3. गल ग्रंथि (Thyroid Gland)
4. उपगल ग्रंथि (Parathyroid Gland)
5. थाइमस ग्रंथि (Thymus Gland)
6. अधिवृक्क ग्रंथि (Adrenal Gland)
7. अग्न्याशय ग्रंथि (Pancreas Gland)
8. जनन ग्रंथि (Gonad Gland)

इन ग्रंथियों के स्राव का व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास पर किस प्रकार प्रभाव पड़ता है, इसका संक्षेप में वर्णन आगे किया जा रहा है।

1. पियूष ग्रंथि (Pituitary Gland)– इस ग्रंथि को मास्टर ग्लेण्ड भी कहते है। इससे पिट्यूटिराइन नामक हार्मोन्स उत्पन्न होते है। ये हार्मोन्स शरीर के अन्य ग्रंथियों के हार्मोन्स पर नियंत्रण करते है। इन हार्मोन्स के मुख्य हार्मोन सोमेटोट्रोपिक है। शारीरिक

विकास पर इस हार्मोन का बहुत प्रभाव पड़ता है। विकास काल में इस ग्रंथि की क्रिया तीव्र होने पर व्यक्ति की अस्थियां, मांसपेशियां और लम्बाई तेजी से बढ़ती है। सामान्य से अधिक मात्रा में इस हार्मोन का स्राव हो तो व्यक्ति की लम्बाई असामान्य या दानवाकार हो जाती है। उसकी लम्बाई 7 से 9 फीट तक बढ़ जाती है। व्यक्ति के विकास काल में स्राव सामान्य से कम मात्रा में होने से व्यक्ति बौना रह जाता है यद्यपि उसकी बुद्धि सामान्य स्तर की रहती है, परन्तु शारीरिक गठन आकर्षक नहीं होता है। पियूष ग्रंथि के दो भाग होते है–अग्र एवं पश्च भाग। पश्च भाग रक्त चाप, वृक्क–कार्य एवं वसा चयापचय को नियंत्रित करता है। जबकि अग्र भाग उपरोक्त शारीरिक विकास को नियंत्रित करता है।

2. पीनियल ग्रंथि (Pineal Gland)– यह ग्रंथि मस्तिष्क में स्थित होती है। यह रहस्यमयी ग्रंथि है। पूर्व में इसको आत्मा व शरीर का सेतु माना जाता था। इसके कार्य व स्राव अभी भी रहस्यमयी है फिर भी यह अनुमान लगाया जाता है कि ये शारीरिक वृद्धि और युवावस्था को बनाये रखने में सहायक है।

3. गल ग्रंथि (Thyroid Gland)– यह ग्रंथि कण्ठ में स्थित होती है। इस ग्रंथि से थायरोक्सिन नामक हार्मोन स्रावित होता है जो शरीर में आयोडीन की मात्रा को नियंत्रित करता है। यदि बाल्यावस्था में आयोडीन की मात्रा की कमी हो तो शरीर व मस्तिष्क का उचित विकास नहीं होता है फलस्वरूप व्यक्ति मन्द बुद्धि और छोटे कद का होता है। उसके शरीर में दुर्बलता होती है। जब यह ग्रंथि अधिक सक्रिय हो जाती है तब व्यक्ति को भूख ज्यादा लगती है। हृदय की धड़कन बढ़ जाती है। थायरोक्सिन का प्रभाव व्यक्ति के भावों व संवेगों पर भी पड़ता है। इसमें स्रावित होने वाली आयोडीन की कमी से गलगण्ड नामक रोग हो जाता है।

4. उपगल ग्रंथि (Parathyroid Gland) –ये ग्रंथियां गल ग्रंथि के पास ही स्थित होती है। ग्रंथियों के स्राव शरीर को शक्तिमान बनाये रखती है। यदि उपगल ग्रंथियों को अलग कर दिया जाए या ग्रंथियों कि अस्वस्थता हो तो इनके स्राव के अभाव के कारण सम्पूर्ण शरीर का अनुपात नष्ट हो जाता है और शरीर में ऐंठन तथा मरोड़ पैदा हो जाती है जिससे मनुष्य की मृत्यु तक हो जाती है।

5. थाइमस ग्रंथि (Thymus Gland)– यह ग्रंथि सीने के अग्र भाग की गुहा में स्थित होती है। इसके कार्य तथा स्रावों के बारे में निश्चित जानकारी नहीं है फिर भी ऐसा माना जाता है कि युवावस्था में यह यौन ग्रंथियों पर नियंत्रण रखती है तत्पश्चात यह ग्रंथि सिकुड़कर छोटी हो जाती है और अपना कार्य बन्द कर देती है।

6. अधिवृक्क ग्रंथि (Adrenal Gland) –इस ग्रंथि से अधिवृक्कीय नामक हार्मोन स्रावित होता है। जिसका व्यक्तित्व पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। सामान्य मात्रा में यह पुरुषों और स्त्रियों में उनके सामान्य गुणों को बनाये रखता है। अधिक मात्रा में स्रावित होने पर स्त्रियों में पुरुषोचित गुणों को बढ़ा देता है। स्त्रियों में अधिवृक्की हार्मोन की मात्रा बढ़ जाने से स्त्रियों के अंगों की गोलाई खत्म हो जाती है और आवाज भारी हो जाती है। यह आपत्ति के समय जीव की शक्तियों का संगठन करता है। इसकी अधिकता से दिल की धड़कनें तेज हो जाती है। रक्तचाप बढ़ जाता है, पसीना आता है तथा आंखों की पुतलियां फैल जाती है। अधिवृक्क के अभाव में एडिसन नामक बिमारी हो जाती है जिससे शरीर में

निर्बलता और शिथिलता बढ़ जाती है, चयापचय (Metabolism) की क्रिया मंद पड़ जाती है, सर्दी–गर्मी सहन करने की क्षमता भी कम हो जाती है और चिड़चिड़ापन बढ जाता है।

7. अग्न्याशय ग्रंथि (Pancreas Gland) –यह ग्रंथि अग्न्याशय रस स्रावित करती है जिसमें इन्सुलीन नामक हार्मोन होता है। यह हार्मोन रक्त में शर्करा को पचाता है जिससे शरीर को ऊर्जा प्राप्त होती है। इसकी कमी या अभाव में शर्करा का पाचन नहीं हो पाता जिससे मधुमेह नामक रोग हो जाता है। इससे व्यक्ति को चक्कर आते है, कार्य करने की क्षमता कम हो जाती है। स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है और भय की भावना बढ़ जाती है।

8. जनन ग्रंथि (Gonad Gland)– जनन ग्रंथियों के स्राव का भी व्यक्ति पर विशेषः प्रभाव पड़ता है। यौन सम्बन्धित रुचि के विकास में यह ग्रंथि सहायक होती है। किशोर अवस्था में ये ग्रंथियां विशेष रूप से सक्रिय होती है अतः इस आयु में स्त्रियों और पुरुषों में यौन चिन्ह प्रकट होने लगते है। पुरुषों में पुरुषोचित यौन लक्षण दाड़ी, मूंछ, भारी आवाज आदि का विकास होता है। ये परिवर्तन **टेस्टोस्टेरोन** हार्मोन स्रावित होने के कारण होते है। इसी तरह स्त्रियों में स्त्री सुलभ लक्षण जैसे दुग्ध ग्रंथियों आदि का विकास **एस्ट्रोजन** हार्मोन के स्राव के कारण होता है।

(4) शारीरिक रसायन (Body Chemistry)–अन्तःस्रावी ग्रंथियों एवं शरीर रचना के अतिरिक्त व्यक्तित्व के जैविक कारकों में शारीरिक रसायन का उल्लेख भी आवश्यक है। प्राचीन काल से मनुष्य के स्वभाव का कारण उसके शरीर के रसायन के तत्वों को भी माना गया है। ईसा से लगभग 400 वर्ष पूर्व यूनान के प्रसिद्ध चिकित्सक व विचारक हिपोक्रेटीज ने शरीर में पाये जाने वाले रसायनों के आधार पर व्यक्ति के स्वभाव का निरूपण किया है। लगभग इस प्रकार का वर्णन आयुर्वेद में भी किया है। ये शारीरिक रसायन चार प्रकार के होते है। 1. रक्त, 2. पित्त, 3. कफ और 4. तिल्लीद्रव्य। रक्त की अधिकता से व्यक्ति आदतन आशावादी और उत्साही ;मिदहनपदम) होता है। पित्त की अधिकता वाले व्यक्ति चिड़चिड़े या कोपशील (Choleric) प्रकृति के होते है। जिस व्यक्ति में कफ अथवा श्लेष्मा की प्रधानता होती है वे शान्त व आलसी होते है। ऐसे व्यक्ति को श्लेष्मिक (Phelgmatic) प्रकृति का कहते है। जिस व्यक्ति में तिल्ली द्रव्य या श्याम पित्त की प्रधानता होती है। ऐसे व्यक्ति उदास (Melancholi) रहने वाले होते है इन्हीं के आधार पर हिप्पोक्रेटीज ने व्यक्तित्व के प्रकारों का वर्णन किया है।

उपरोक्त जैविक कारकों के अतिरिक्त कुछ अन्य जैविक कारक भी है जो व्यक्तित्व को प्रभावित करते है, ये कारक है–बुद्धि (Intelligence), रंगरूप (Colour), लिंग (Sex)।

2. पर्यावरण सम्बन्धी निर्धारक (Environmental Determinants)

इसमें निम्न तीन निर्धारक आते हैं–

1. प्राकृतिक निर्धारक (Natural Determinants)
2. सामाजिक निर्धारक (Social Determinants)

3. सांस्कृतिक निर्धारक (Cultural Determinants)

1. प्राकृतिक निर्धारक (Natural Determinants)–मनुष्य प्राकृतिक पर्यावरण में रहता है अतः उसके जीवन तथा व्यक्तित्व पर भौगोलिक परिस्थितियों एवं जलवायु का प्रभाव पड़ता है। भौगोलिक परिस्थितियों और जलवायु का उसके स्वास्थ्य, शरीर की बनावट तथा मानसिक स्थितियों पर प्रभाव पड़ता है। जैसे ठण्डी जलवायु में रहने वाले व्यक्तियों का रंग गोरा होता है जबकि गर्म जलवायु में रहने वाले व्यक्ति सांवले रंग के होते है। भौगोलिक परिस्थितियों का भी शारीरिक गठन पर प्रभाव पड़ता है जैसे पहाड़ी लोगों का शारीरिक गठन। जिन जगहों पर भूकम्प या प्राकृतिक आपदाएं ज्यादा होती है वहां के लोगों में सुरक्षा की भावना कम होती है। यदि व्यक्ति की भौगोलिक परिस्थितियों या जलवायु बदल दी जाये तब उनके व्यक्तित्व में भी परिवर्तन आ जाता है। जैसे ऊष्ण प्रदेश में रहने वाले लोगों को शीत प्रदेश में रखा जाए तो उनके कार्य करने की क्षमताएं घट सकती है और स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ सकता है। इसी तरह ठण्डे प्रदेश में रहने वाले व्यक्तियों को यदि ऊष्ण प्रदेश में रखा जाए तो ऐसा ही प्रभाव उन लोगों पर पड़ता है।

2. सामाजिक निर्धारक (Social Determinants)–व्यक्ति सामाजिक प्राणी है और समाज की इकाई भी। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त वह समाज में रहता है। अतः समाज का, समाज की संरचना का और समाज के लोगों का उस पर बहुत प्रभाव पड़ता है। परिवार के लोगों से लेकर समाज के लोगों तक का व्यक्ति के व्यक्तित्व पर किस प्रकार प्रभाव पड़ता है इसकी व्याख्या हम आगे कर रहे है।

(अ) परिवार या घर का प्रभाव (Effect of Family or Home)

(1) माता–पिता का प्रभाव (Effect of Parents)

सभी मनोवैज्ञानिकों का यह मानना है कि व्यक्तित्व के विकास में घर के परिवेश का बड़ा प्रभाव पड़ता है। परिवार के सदस्यों का भी बालक के व्यक्तित्व के विकास पर प्रभाव पड़ता है। जन्मकाल से ही मनुष्य का व्यक्तित्व का विकास प्रारम्भ हो जाता है। जन्म के समय उसकी माता तक ही उसका परिवार सीमित रहता है। उसे अपने सभी प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपनी माता पर निर्भर रहना पड़ता है। अतः माता के विवेकशील और व्यवहार कुशल रहने पर तथा बालक को सही ढंग से देखभाल करने से सन्तान या बालक का व्यक्तित्व विकास उचित ढंग से होता है। शिवाजी, महाराणा प्रताप जैसे महापुरुषों के व्यक्तित्व विकास का श्रेय उनकी माताओं को है। माता–पिता द्वारा आवश्यकताओं की उचित पूर्ति होने से बालक आगे चलकर आशावादी, कर्मवीर व परोपकारी बनता है, किन्तु माता–पिता द्वारा आवश्यकताओं की उचित पूर्ति न करने से तथा पर्याप्त स्नेह न देने से बालक कर्महीन व निराशावादी बन जाता है। बाल्यकाल में तिरस्कृत रहने पर वह हीन भाव एवं असुरक्षित भाव से पीड़ित रहता है तथा उसमें आत्म विश्वास की कमी रहती है। आगे चलकर वह परावलम्बी स्वभाव का हो जाता है। वह अपनी छोटी–छोटी आवश्यकताओं को पूर्ति के लिए भी दूसरों का मुंह देखता रहता है। फलस्वरूप उसके व्यक्तित्व का विकास उचित दिशा में नहीं होता।

माता–पिता के प्रेम के अभाव का सभी बालकों पर एक सा प्रभाव पड़ता है क्योंकि इसमें बालक के जन्मजात स्वभाव और प्रवृत्तियों का बड़ा महत्व है। माता–पिता के प्रेम की अवहेलना और ताड़ना से एक बालक दब्बू बन सकता है परन्तु दूसरा बालक दबंग और उद्दंड बन सकता है। आलपोर्ट के अनुसार ''वहीं आग जो मक्खन को पिघलाती है अण्डे को कठोर बनाती है।'' माता–पिता द्वारा बच्चे को झिड़कना और गोद में न लेना भी उसके व्यक्तित्व को प्रभावित करता है।

(2) घर के अन्य सदस्यों का प्रभाव (Effeect of other members of family)– बालक के व्यक्तित्व पर घर के अन्य सदस्यों का काफी प्रभाव पड़ता है। घर में रहने वाले दादा–दादी या नाना–नानी, ताऊ–ताई, चाचा–चाची, मामा–मामी, बड़े भाई–बहन या अन्य कोई रिश्तेदार जो उसके परिवार में रहते है, का प्रभाव बालक के व्यक्तित्व के विकास पर पड़ता है। बालक इनके व्यवहारों को देखता है और सीखता है। कालान्तर में ये व्यवहार उसके व्यक्तित्व का एक भाग बन जाता है। परिवार में बड़े लोग बालक के सामने आदर्श के समान होते है बालक उन जैसा बनना चाहता है और वह तादाम्य क्रिया अपनाता है। यदि परिवार में बालक इकलौती सन्तान है तो परिवार में उसे आवश्यकता से अधिक लाड़–प्यार मिलता है फलस्वरूप वह जिद्दी व शरारती हो जाता है। बच्चे के लिए शरारती होना एक आवश्यक गुण है और इससे आगे चलकर वह निर्भीक व साहसी बनता है परन्तु आवश्यकता से अधिक शरारती होने से वह नियंत्रण की सीमा तोड़ देता है और वह समाज विरोधी व्यवहारों को सीखकर उसमें रुचि रखने लगता है। अतः उसका व्यक्तित्व विकास उचित रूप से नहीं हो पाता। यदि परिवार बड़ा है, संयुक्त परिवार है, उसके सदस्यों के व्यवहारों में समायोजन नहीं है, घर में कलहपूर्ण स्थिति रहती है तो उसका प्रभाव बालक के व्यक्तित्व के विकास पर पड़ेगा और बालक का समायोजन आगे चलकर गड़बड़ा सकता है।

यदि परिवार के सदस्यों में आपराधिक प्रवृत्तियां है तो उसका प्रभाव भी बालक के व्यक्तित्व के विकास पर पड़ता है और बालक में भी आपराधिक प्रवृत्तियां जन्म लेती है और आगे चलकर वह बालक सामाजिक अपराध करने लगता है। इसी प्रकार भग्न परिवार (Broken Family) भी किशोर अपराध का मुख्य कारण है।

(3) जन्म क्रम का प्रभाव (Effect of birth order)– प्रायः यह बात आमतौर पर स्पष्ट है कि परिवार के छोटे–बड़े, सबसे बड़े या सबसे छोटे आदि विभिन्न क्रम के बालकों के प्रति एक सा व्यवहार नहीं किया जाता। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक एल्फ्रैड एडलर के अनुसार परिवार में बालक के जन्मक्रम का उसके व्यक्तित्व पर बड़ा प्रभाव पड़ता है, उसकी शारीरिक स्थिति तथा उसके कार्यशैली पर भी प्रभाव पड़ता है। सबसे छोटा बालक सभी से लाड़–प्यार पाता है अतः वह दूसरों पर अत्यधिक निर्भर बन जाता है। सबसे बड़ा बालक स्वावलम्बी व निर्दयी बन जाता है, क्योंकि कुछ दिन तक इकलौते रहने के कारण न तो कोई उसकी चीजों में हिस्सा बांटता है और न कोई उसका अधिकार छीनने वाला होता है परन्तु दूसरे बालक के जन्म से पहले बालक के मन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है क्योंकि इससे उसका
एकाधिकार छिन जाता है और कभी–कभी तो उसकी अवहेलना होने लगती है। अतः वह छोटे बालक के प्रति ईर्ष्या करने लगता है और अपना अधिकार बनाये रखने की कोशिश

करता है। एडलर के इस कथन में बहुत कुछ सत्यता है कि व्यक्ति अपनी जीवन शैली बहुत कुछ परिवार में प्रारम्भिक जीवन से ही निश्चित कर लेता है, परन्तु यह मानने के निश्चित प्रमाण नहीं है कि बचपन की यह शैली आजीवन अपरिवर्तित रहती है।

(ब) विद्यालय का प्रभाव (Effect of School) बालक के व्यक्तित्व विकास पर विद्यालय, विद्यालय में होने वाले अध्ययन, विद्यालय के शिक्षक, बालक के सहपाठी तथा विद्यालय की भौगोलिक स्थिति का बहुत प्रभाव पड़ता है। आगे इन कारकों का संक्षिप्त में वर्णन किया जा रहा है।

(1) शिक्षा का प्रभाव (Effect of education) – विद्यालय में शिक्षा किस प्रकार की दी जाती है इसका प्रभाव बालक के व्यक्तित्व पर पड़ता है। कई विद्यालयों में धार्मिकता, कट्टर धार्मिकता की शिक्षा दी जाती है इससे बालक के व्यक्तित्व का विकास संकीर्णन और एक निश्चित धर्म की तरफ होता है। इससे बालक दूसरे धर्मों के प्रति ईर्ष्या और द्वेष करने वाला बन जाता है। कई अंग्रेजी भाषा के विद्यालयों में बालक को मातृभाषा या अन्य भाषाएं बोलने नहीं दी जाती, बल्कि केवल अंग्रेजी भाषा ही बोलने को बाध्य किया जाता है, ऐसी स्थिति में बालक पर मानसिक दबाव बढ़ जाता है तथा उसमें निराशा एवं कुण्ठाएं उत्पन्न हो जाती है, जिससे आगे चलकर बालक के व्यक्तित्व विकास में तथा समायोजन में बाधा आती है।

कई विद्यालयों में संतुलित शिक्षा नहीं दी जाती। आज की शिक्षा प्रणाली में यह सबसे बड़ा दोष है। बालक के मानसिक और शारीरिक विकास पर समुचित ध्यान नहीं दिया जाता बल्कि उसके पाठ्यक्रम की कितनी ज्यादा पुस्तकें बढ़ाई जाये इस पर ध्यान दिया जाता है। बालक के बस्ते का बोझ, गृह कार्य की मार बालक के सर्वांगीण विकास में बाधक बनती है। और उसके सन्तुलित व्यक्तित्व विकास, सर्वांगीण विकास और मूल्यों के विकास के लिए विद्यालय में संतुलित एवं नैतिक शिक्षा दी जानी चाहिए। प्रायोगिक आधारित शिक्षा मूल्य–परक शिक्षा, अनेकान्त धार्मिक शिक्षा तथा शारीरिक विकास की शिक्षा भी बालक के व्यक्तित्व के विकास में बहुत सहायक होती है।

(2) शिक्षकों का प्रभाव (Effect of educators) - जिस प्रकार बालक परिवार में माता या पिता से तादात्म्य कर लेता है उसी प्रकार विद्यालय में भी शिक्षकों से तादात्म्य कर लेता है। यदि शिक्षक का व्यक्तित्व प्रभावशाली हो तो बालक के व्यक्तित्व विकास पर उसका अनुकूल प्रभाव पड़ता है। कई बार बालक शिक्षकों के नकारात्मक गुणों को सीख जाता है। शिक्षकों द्वारा बालकों से बीड़ी, सिगरेट मंगवाना और उनकी उपस्थिति में उनका प्रयोग करना घातक है क्योंकि इसका तादाम्य कर बालक बीड़ी, सिगरेट पीना सीख जाता है। यदि शिक्षकों में अच्छे गुण है तो बालक भी उन गुणों का तादात्म्य कर लेता है, फलस्वरूप बालक के व्यक्तित्व विकास में वे गुण जुड़ जाते है। संक्षेप में आमतौर से बालक के प्रति व्यवहार में प्रकट होने वाले शिक्षक के व्यक्तित्व के सभी गुण–दोष बालक के व्यक्तित्व विकास पर अच्छा–बुरा प्रभाव डालते है।

(3) सहपाठियों का प्रभाव (Effcet of peers)– बालक के व्यक्तित्व विकास पर उसके सहपाठियों या विद्यालय के साथियों का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। विद्यालय में उसको सभी प्रकार के साथियों के साथ रहना पड़ता है। कई सहपाठी आयु में उससे भिन्न

होते है, कई स्नेह करने वाले तो कई इर्ष्यालु विद्यार्थी भी उसके साथ होते है। इन सभी साथियों के साथ बालक अपनी विद्यालय की दिनचर्या व्यतीत करता है। छोटी आयु या छोटी कक्षा का विद्यार्थी बड़े विद्यार्थी से दबता है। यह दबना आदर्श सूचक भी हो सकता है और भय सूचक भी। अतः इन कारकों का प्रभाव बालक के व्यक्तित्व पर पड़ता है। कई बार बालक अभद्र बालकों के व्यवहारों को सीख जाता है जिसमें गाली–गलौच, विद्यालय से भागने, शिक्षकों तथा माता–पिता के साथ अभद्र व्यवहार करना सीख जाता है, जो उसके व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करता है। सहपाठियों का बालक के व्यक्तित्व पर सबसे अधिक प्रभाव खेल–क्रीड़ा समूह के प्रभाव के रूप में पड़ता है। विद्यालय में साथ–साथ खेलने वाले या प्रतियोगिता करने वाले विद्यार्थी अपना–अपना दल बना लेते है और दल के नेतृत्व के लिए नेता का चुनाव भी करते है। इस तरह विभिन्न क्रियाओं का संचालन करने के लिए छात्र दल अलग–अलग ढंग से कार्य करता है जो उसके व्यक्तित्व विकास में सहायक है। अपने साथियों के साथ में प्रतियोगिता और प्रतिद्वन्द्विता रखने से बालक परिश्रम करता है जो उसके व्यक्तित्व विकास में सहायक होता है।

(4) विद्यालय की भौगोलिक स्थिति (Geographic situation of school) - विद्यालय की भौगोलिक स्थिति कैसी है? इसका प्रभाव भी बालक के व्यक्तित्व के विकास पर पड़ता है। विद्यालय कहां स्थित है तथा विद्यालय भवन की क्या स्थिति है? इसका भी प्रभाव बालक के व्यक्तित्व विकास पर पड़ता है। यदि विद्यालय प्रदूषण जनित जगह पर स्थित है, जहां वायु प्रदूषण तथा ध्वनि प्रदूषण हो तो ऐसे विद्यालय में अध्ययन करने वाले बालकों के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ सकता है। यदि विद्यालय ऐसे मौहल्ले में स्थित है जहां समाज कंटक जैसे शराबी, जुआरी, वेश्यावृत्ति करने वाले और चोरी करने वाले रहते है तो ऐसे क्षेत्र के विद्यालयों में पढ़ने वाले छात्रों के व्यक्तित्व विकास पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। इसमें बालक समाज विरोधी व्यवहार सीख सकता है।

यदि विद्यालय का भवन स्वच्छ नहीं है और क्षीर्ण–जीर्ण और खण्डहर अवस्था में है तो उस स्थान पर पढ़ने वाले बालकों के व्यक्तित्व के विकास पर बुरा प्रभाव पड़ता है। उनके मन में हर समय भवन के ढह जाने का भय रहता है तथा उनमें अन्य व्याधियां भी उत्पन्न हो सकती है जो उनके व्यक्तित्व विकास में बाधक होते है।

(स) समाज का प्रभाव–(Effect of society) जैसा कि पूर्व में लिखा जा चुका है कि व्यक्ति समाज का अंग और इकाई है। अतः समाज का व्यक्तित्व विकास पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। समाज की परम्पराओं रीति–रिवाजों, सामाजिक नियमों का व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति समाज के लोगों के आचरण तथा प्रतिमानों को अपनाता है। जाति, वर्ण तथा व्यवसाय के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति की समाज में स्थिति अलग–अलग होती है। परिवार की सामाजिक स्थिति से बालकों के व्यक्तित्व पर भी प्रभाव पड़ता है। वर्णभेद जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा जातिभेद अर्थात् विभिन्न जातियों की सामाजिक स्थितियां भिन्न–भिन्न है। कुछ लोग जाति–प्रथा, पर्दा–प्रथा, बाल विवाह के पक्षधर होते है तो कुछ घोर विरोधी। कुछ लोग समाज के प्रत्येक नियम को तोड़ने को तत्पर दिखाई देते है जबकि कुछ लोग उनका कठोरता से पालन करते दिखाई पड़ते है। ऊंची जाति के बालकों में बड़प्पन की भावना और नीची जातियों में हीनता की

भावना देखी जा सकती है। ऊंचे घरानों के बालकों का व्यक्तित्व संयमित दिखाई पड़ता है परन्तु इसके लिए कोई ठोस मनोवैज्ञानिक प्रमाण नहीं है।

बालक के व्यक्तित्व के विकास पर समाज सुधारकों, सामाजिक कार्यकर्त्ताओं तथा समाज विरोधी व्यक्तियों का भी प्रभाव पड़ता है। समाज सुधारक, समाज सेवी तथा सामाजिक कार्यकर्त्ता समाज के कल्याण तथा समाज के उत्थान के लिए कार्य करते है और इनका प्रभाव बालकों के व्यक्तित्व विकास पर पड़ता है। इसी तरह समाज विरोधी कार्य करने वाले और सामाजिक कंटकों का भी प्रभाव व्यक्तित्व विकास पर पड़ता है। समाज विरोधी लोग या समाज कंटक, समाज विरोधी कार्य जैसे जेबकतरी (पॉकिट मार), चोरी, शराबखोरी, वेश्यावृत्ति आदि कार्यों को करते है और इनका प्रभाव बालकों के व्यक्तित्व विकास पर पड़ता है। समाज सेवक समाज के विभिन्न लोगों जैसे वृद्ध, निराश्रित, गरीब की सेवा करते है और समाज की सुरचना करने का प्रयत्न करते है। उनकी परोपकारी सेवा भावनाओं का भी प्रभाव अन्य व्यक्तियों के व्यक्तित्व विकास पर पड़ता है। अन्य व्यक्ति भी परोपकारी भावनाओं को अपनाकर अपने व्यक्तित्व का सकारात्मक विकास कर सकते है।

(3) सांस्कृतिक निर्धारक (Cultural Determinantes)–व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास पर संस्कृति की अहम् भूमिका है। व्यक्ति का व्यक्तित्व संस्कृति के अनुरूप होता है। जन्मकाल से ही शिशु का पालन–पोषण तथा समाजीकरण उसकी सांस्कृतिक परम्परा के अनुरूप होता है। प्रत्येक संस्कृति में शिशु के सामाजीकरण की एक विधि होती है क्योंकि इसी विधि के द्वारा संस्कृति अपने को सुरक्षित रखती है। संस्कृति और व्यक्तित्व एक दूसरे के पूरक होते है। आज के अधिकतर मनोवैज्ञानिकों का यह विचार है कि संस्कृति और व्यक्तित्व दो भिन्न वस्तुएं नहीं है, बल्कि एक ही वस्तु के दो पहलू है। जिस संस्कृति में बालक का लालन–पालन होता है उसी संस्कृति के गुण उसके व्यक्तित्व में आ जाते है। मैकाईवर और पेज (Mac.Iver and Page) के शब्दों में ''संस्कृति हमारे रहने व सोचने के ढंगों में, दैनिक कार्यकलापों में, कला में, साहित्य में, धर्म में, मनोरंजन और सुखोपभोग में हमारी प्रकृति की अभिव्यक्ति है।'' इस तरह संस्कृति कार्य करने की शैलियों, मूल्यों, भावात्मक लगावों और बौद्धिक अभियान का क्षेत्र है। एक संस्कृति दूसरी संस्कृति से इन्हीं गुणों के आधार पर भिन्न होती है। अलग– अलग संस्कृतियों के अलग–अलग मूल्य होते है। जैसे–प्राचीन काल में भारतीय लोग धर्मपरायण और आध्यात्मिक थे। आधुनिक भारतीय उतने आध्यात्मिक एवं धार्मिक नहीं है। फिर भी उनमें आध्यात्मिक एवं धार्मिक मूल्य उच्च स्तर के है। इसका कारण हमारी संस्कृति का प्रभाव ही है। पाश्चात्य लोगों के लिए भौतिक व मानसिक मूल्य उच्च स्तर के है। इसी तरह अलग–अलग संस्कृति के समाजों में रहन–सहन, रीति–रिवाज, धर्म, कला, मूल्यों और परम्पराओं में भिन्नताएं देखी जा सकती है। कुछ संस्कृतियों की जातियों में मनुष्य हत्या को पाप समझते है तो दूसरी ओर नागा संस्कृति में उन लोगों का बड़ा सम्मान होता है जो नर मुण्ड काट के लाते है। जो व्यक्ति जितने ज्यादा नर मुण्ड काटता है उतनी ही समाज में उसकी प्रतिष्ठा बढ़ती है और उतने ही ज्यादा स्त्रियों के विवाह के प्रस्ताव आते है। जबकि दूसरी संस्कृति में नर हत्या करने वाले के साथ समाज के लोग अपनी बेटी का विवाह नहीं करना चाहते। भारतीय संस्कृति के कुछ परिवारों में तलाक देना अच्छा नहीं माना जाता परन्तु कुछ जनजातियों में जो स्त्री जितने अधिक तलाक पाती है, उसकी प्रतिष्ठा उतनी ही अधिक बढ़ती है। पाश्चात्य देशों में तलाक को बुरा नहीं माना जाता है। कुछ समाज में

कुंआरी कन्या के गर्भवती हो जाने पर कोई उससे विवाह नहीं करता, परन्तु कुछ जन–जातियों में विवाह से पहले संतानोत्पत्ति करना लड़की के विवाह में सहायक होता है। इस तरह की सांस्कृतिक भिन्नताएं बालक के व्यक्तित्व के विकास पर प्रभाव डालती है। बालक का जिस संस्कृति के परिवेश में विकास होता है उस संस्कृति के खान–पान, रहन–सहन, रीति–रिवाज, धर्म, परम्परा, विवाह, सामाजिक समारोह और सामाजिक संस्थाओं आदि का प्रभाव पड़ता है। जनजातियों की संस्कृति में भी भारी भिन्नताएं है। जैसे नागा लोग सिरों के शिकारी (Head Choppers) है तथा भील लड़ाकू है और संथाल सीधे–साधे है। इस तरह सांस्कृतिक परिवेश में सामाजिक रचना, सामाजिक स्थितियां, सामाजिक कार्य तथा नियम संहिताएं मनुष्य के व्यक्तित्व को प्रभावित करते है।

अभ्यास हेतु प्रश्न

I वस्तुनिष्ठ प्रश्नः–

1. रक्त में शक्कर को पचाने वाले हार्मोन ––– है।
2. टेस्टोस्टेरोन का स्राव –––– ग्रंथियां करती है?
3. व्यक्तित्व की परिभाषाओं को ––––वर्गों में बांटा गया है?

II लघुत्तरीय प्रश्नः–

1. व्यक्तित्व की किन्ही दो परिभाषाओं को स्पष्ट करें ।
2. व्यक्तित्व के अनुवांशिक कारकों को स्पष्ट करें ।
3. पियूष ग्रंथि ग्रंथि के कार्यों को समझाइये ।
4. व्यक्ति के विकास में विद्यालय का किस प्रकार प्रभाव पड़ता है?
5. सांस्कृतिक कारक पर टिप्पणी लिखें ।

2-6 सारांश

इस इकाइZ के अध्ययन के पश्चात आप यह जान गये हैं कि प्रत्येक व्यक्ति में कुछ विशेष गुण होते हैं। व्यक्ति के इन गुणों या विशेषताओं का गत्यात्मक संगठन ही व्यक्ति का व्यक्तित्व कहलाता है। व्यक्तित्व अंग्रेजी शब्द पर्सनलिटी (Personality) है जो लेटिन भाषा के पर्सोना (Persona) शब्द से विकसित हुआ। सामान्य भाषा में व्यक्तितत्व का अर्थ व्यक्ति के बाह्य रूप एवं पहनावे से लिया जाता है, परन्तु मनोविज्ञान में व्यक्तित्व का अर्थ व्यक्ति के रूप गुणों की समष्ठी से है, अर्थात् व्यक्ति के बाह्य आवरण के गुण और आन्तरिक तत्व, दोनों को माना जाता है। व्यक्तित्व विशेष लक्षणों का योग न होकर व्यक्ति के व्यवहार का समग्र गुण (Total quality) है। यक्ति का समस्त व्यवहार उसके वातावरण या परिवेश में समायोजन करने के लिए होता है।

मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्ति के विभिन्न पहलुओं को ध्यान में रखते हुए अनेक परिभाषाएं दी हैं। गिलफोर्ड (Guilford,1959) ने इन परिभाषाओं को चार वर्गों में बांटा है यथा –

1. संग्राही परिभाषाएं 2. समाकलनात्मक परिभाषाएं
2. सोपानित परिभाषाएं 4. समायोजन आधारित परिभाषाएं।

अब आप यह भी जान गयें हैं कि व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कुछ विशेष कारक होतें है जिन्हें व्यक्तित्व के निर्धारक कहते है। इन्हीं कारकों के प्रभाव से व्यक्तित्व का विकास होता है। व्यक्तित्व के विकास में जैविक एवं पर्यावरण संबंधी दोनों निर्धारकों का प्रभाव रहता है। जैविक निर्धारकों में प्रमुख निर्धारक है–1. आनुवांशिकता 2.स्रावी ग्रंथियां 3. शारीरिक गठन व स्वास्थ्य 4. शारीरिक रसायन। पर्यावरण सम्बन्धी भी तीन कारकों हैं, यथा –1. प्राकृतिक निर्धारक 2. सामाजिक निर्धारक 3. सांस्कृतिक निर्धारक।

व्यक्तित्व पर भौगोलिक परिस्थितियों एवं जलवायु का प्रभाव पड़ता है। भौगोलिक परिस्थितियों और जलवायु का उसके स्वास्थ्य, शरीर की बनावट तथा मानसिक स्थितियों पर प्रभाव पड़ता है। जैसे ठण्डी जलवायु में रहने वाले व्यक्तियों का रंग गोरा होता है जबकि गर्म जलवायु में रहने वाले व्यक्ति सांवले रंग के होते है। –समाज का, समाज की संरचना का और समाज के लोगों का व्यक्ति के व्यक्तित्व पर बहुत प्रभाव पड़ता है। परिवार के लोगों से लेकर समाज के लोगों तक का व्यक्ति के व्यक्तित्व पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। घर का परिवेश, समाज की संरचना एवं विद्यालय का वातावरण व्यक्तित्व विकास को प्रभावित करते हैं। –संस्कृति और व्यक्तित्व एक दूसरे के पूरक होते अर्थात संस्कृति और व्यक्तित्व दो भिन्न वस्तुएं नहीं है, बल्कि एक ही वस्तु के दो पहलू है। जिस संस्कृति में बालक कालालन–पालन होता है उसी संस्कृति के गुण, मूल्य व्यक्ति के व्यक्तित्व में आ जाते है।

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1– इन्सूलिन 2– जनन ग्रंथि 3– चार

2.8 संदर्भ ग्रंथ :

1. शर्मा, रामनाथ : व्यावहारिक मनोविज्ञान की रूपरेखा, (1973) *केदारनाथ रामनाथ,* मेरठ।
2. सीताराम जायसवाल; व्यक्तित्व मनोविज्ञान : *उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी* लखनउ।

2.9 निबन्धात्मक प्रश्नः–

1. व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले किन्ही दो जैविक कारकों को समझाइये।
2. व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले सामाजिके कारकों को समझाइये।
3. अन्तःस्रावी ग्रंथियों का वर्णन कीजिये।

इकाई–3 व्यक्तित्व को समझने में पूर्व प्रयास

03.1 प्रस्तावना

03.2 उद्देश्य

03.3 व्यक्तित्व का अध्ययन : पृष्ट भूमि एवं व्यक्तित्व सिद्धांत

3.3.1 व्यक्तित्व पृष्ट भूमि

3.3.2 व्यक्तित्व सिद्धांत

3.4 सारांश

3.5 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

3.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.7 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

मनोविज्ञान में व्यक्तित्व का अध्ययन एक महत्वपूर्ण विषय है। व्यक्ति के व्यक्तित्व को समझने के लिए कई मनोवैज्ञानिकों ने अपने अपने मत एवं सिद्धान्त प्रस्तुत किये हैं जिनको आप इस अध्याय में आगे पढ़गें। इस अध्याय में जर्मन मनोवैज्ञानिक क्रेत्समर, विलियम शेल्डन, आलपोर्ट, सिग्मण्ड फ्रायड तथा मास्लो के व्यक्तित्व सिद्धान्तों की सक्षेंप में जानकारी प्राप्त करेगें।

3.2 उद्देश्य :

प्रस्तुत पाठ के अध्ययन के बाद आप –

1. व्यक्तित्व के अध्ययन की पृष्ट भूमि को समझ पायेगें
2. व्यक्तित्व को मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से समझ पायेगें
3. व्यक्तित्व के 'प्रकार सिद्वान्त' एवं 'शील गुण सिद्वान्त' को समझ पायेगें
4. सिग्मण्ड फ्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धांत एवं मास्लो का मानवीय सिद्धान्त को समझ पायेगें

3.3 व्यक्तित्व का अध्ययन : पृष्ट भूमि एवं व्यक्तित्व सिद्धांत

3.3.1 व्यक्तित्व पृष्टभूमि :

व्यक्ति के व्यक्तित्व को समझेने के लिए एवं उसका अध्ययन करने के लिए मनोवैज्ञानिक सदियों से प्रयत्न करते रहे है। नये–नये सिद्धांतों की खोज और व्यक्ति को

विभिन्न वर्गों में रखकर व्यक्तित्व का अध्ययन करने का प्रयत्न किया गया। ईसा के चार सौ वर्ष पूर्व प्रसिद्ध दार्शनिक व चिकित्सक हिप्पोक्रेट्स ने काय रस के आधार पर व्यक्ति के व्यक्तित्व को चार भागों में बांटा। अपने अध्ययन में उसने मनुष्य में चार रसों की उपस्थिति मानी, ये चार रस है–1. रक्त, 2. कृष्ण पित्त, 3. पीत पित्त और 4. कफ। हिप्पोक्रेट्स के अनुसार इन चारों में से एक काय रस की व्यक्ति में प्रधानता होती है और उसके अनुसार उसकी चित्त–वृत्ति होती है।

इसी तरह भारत में भी आयुर्वेद में वात, कफ, पित्त के आधार पर व्यक्ति के चित्त की प्रकृति का वर्णन किया गया है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी तीन गुणों सत्, रज, और तम के आधार पर व्यक्ति के व्यक्तित्व का वर्गीकरण किया गया है। गत और इस शताब्दी के कई मनोवैज्ञानिकों ने भी विभिन्न सिद्धांतों द्वारा व्यक्तित्व का अध्ययन करने का प्रयत्न किया।

जर्मन मनोवैज्ञानिक क्रेत्समर (1925) ने चित्त प्रकृति एवं शारीरिक रचना के आधार पर व्यक्तित्व के प्रकारों का वर्गीकरण किया। उन्होने व्यक्तियों के व्यक्तित्व को चार प्रकारों में वर्गीकृत किया। इसी तरह अमेरिकन चिकित्सक विलियम शेल्डन (1942) ने व्यक्तियों के व्यक्तित्व को तीन प्रकार के वर्गों में वर्गीकृत किया है–एन्डोमॉर्फी अथवा स्थूलकाय, मीजोमॉर्फी या मध्यकाय, एक्टोमॉर्फी या लम्बकाय। युंग तथा अन्य प्रमुख मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तियों के व्यक्तित्व को दो भागों में बांटा– बहिर्मुखी और अंतर्मुखी। इसी तरह से कई अन्य मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व को तीन भागों में बांटा–अंतर्मुखी, बहिर्मुखी और उभयमुखी। आइजैनक (1970, 1975) ने व्यक्तित्व को चार भागों में बांटा–अंतर्मुखी, बहिर्मुखी, स्थिर और अस्थिर। आलपोर्ट (1966) ने शील गुणों के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण किया। सिग्मण्ड फ्रायड सिद्धान्त के माध्यम से व्यक्ति के व्यक्तित्व का अध्ययन उसके चेतन, अवचेतन व अचेतन मन तथा जीवन के विश्लेषण द्वारा किया जाता है। अस्तित्ववाद एवं मानवतावाद सिद्धान्त व्यक्ति की मानवीय चेतना, आत्मगत अनुभूतियां एवं उमंग तथा व्यक्तिगत अनुभवों की व्याख्या करते हैं।

3.3.2 व्यक्तित्व सिद्धांत

इस प्रकार व्यक्तित्व का सम्पूर्ण अध्ययन करने के लिए कई सिद्धांतों का प्रतिपादन हुआ। इन सिद्धांतों में से निम्न चार सिद्धान्तों का संक्षेप में वर्णन करेंगें।

व्यक्तित्व का प्रकार सिद्धांत (Types theory of personality)

1. व्यक्तित्व शील गुण सिद्धांत (Traits theory of personality)
2. मनोगत्यात्मक या मनोविश्लेषण सिद्धांत (Psycho-dynamic or Psycho-analitic theory of personality)
3. मानवीय सिद्धांत (Humanistic theory of personality)

उपरोक्त प्रकार के सिद्धांतों के आधार पर व्यक्ति के व्यक्तित्व का वर्गीकरण और उसका अध्ययन किया जा सकता है।

1.व्यक्तित्व प्रकार सिद्धांत (Types theory of personality)

क्रेत्समर एवं शेल्डन व्यक्तित्व वर्गीकरण (Kretschmer and Sheldon's Classification of Personality)

क्रेत्समर, जो कि एक जर्मन मनोचिकित्सक थे, ने जर्मनी में कई मनोरोगियों के अध्ययन से व्यक्तित्व का वर्गीकरण किया। अपनी एक शोध पुस्तक ''फिजिक एण्ड करेक्टर'' (Physique and Character) में व्यक्ति के शारीरिक गठन एवं स्वभाव के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण किया। उसने व्यक्तित्व के चार प्रमुख प्रकार बताए–

1. पुष्टकाय प्रकार (Athletic Type)
2. कृशकाय प्रकार (Asthenic Type)
3. तुन्दिल प्रकार (Pyknic Type)
4. मिश्रकाय प्रकार (Dysplastic Type)

1. पुष्टकाय प्रकार (Athletic Type)

इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों में शारीरिक गठन अच्छा होता है। इनके कंधे चौड़े, पीठ सीधी और हाथ–पांव की पेशियां अच्छी तरह विकसित होती है। इस प्रकार का व्यक्ति स्वभाव में साहसी, निर्भीक तथा प्रभुत्व की इच्छा रखने वाला होता है। उसकी रुचियां सफलता प्राप्त करने में होती है। ये सक्रिय ज्यादा रहते है, आराम से अधिक कार्य को महत्व देते है। ये व्यक्ति समाज में अधिक सफल होते है। इस वर्ग के व्यक्तियों में मनोविदलन (Schizophrenia) रोग होने की सम्भावना अधिक होती है।

2. कृशकाय प्रकार (Asthenic Type)

इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति का शरीर दुबला–पतला और लम्बा होता है, अर्थात् उसका शरीर कृश होता है। उसकी मुखाकृति, गर्दन, रीढ़ की हड्डी आदि में पतलेपन और लम्बाई का प्रभाव स्पष्ट होता है। ऐसा व्यक्ति दूसरों की आलोचना करने वाला होता है। परन्तु स्वयं की आलोचना उसे असहनीय होती है, अर्थात् जब दूसरे उसकी आलोचना करते है तो वह इस बात को बहुत ही बुरा मानता है। ये व्यक्ति भावुक शांत और एकांत प्रिय होते है। इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति में मनोविदलता या मनोभाजन (Schizophrenia) मानसिक रोग होने की प्रबल सम्भावना होती है।

3. तुन्दिल प्रकार (Pyknic Type)

क्रेत्समर के अनुसार इस प्रकार के व्यक्तित्ववान व्यक्तियों के शरीर मे तोंद की प्रधानता होती है तथा ये कद में ठिगने, हट्टे–कट्टे, गोल–मटोल होते है। इनकी धड़ और शारीरिक गुहाएं बड़ी होती है। सीना और कंधे अच्छी गोलाई लिए हुए होते है। इनकी गर्दन तथा हाथ–पैर छोटे होते है और ये नाटे कद के होते है। इनकी बढ़ी हुई तोंद, गोल चिकना चेहरा, छोटी बांहे तथा टांगे उसकी तुन्दिल प्रकार के व्यक्तित्व की परिचायक है। ये व्यक्ति मिलनसार, हंसमुख तथा मैत्री रखने वाले होते है। ये व्यक्ति बड़े बातूनी होते है अर्थात् उन्हें बातें करने में बड़ा आनन्द आता है। ये लोग आराम पसन्द भी होते है। इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों की मनोस्थितियां जल्दी–जल्दी बदलती रहती है। अतः क्रेत्समर ने ऐसे व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों की चित्त–प्रकृति को चक्रीयवृत्ति (Cyclothymic)

कहा है। ऐसा व्यक्ति सुख और दुःख में भी अधिक प्रभावी होता है। ऐसे व्यक्तियों में उत्साह–विशाद (Manic-Depressive) नामक रोग होने की सम्भावना अधिक होती है।

4. मिश्रकाय प्रकार (Dysplastic Type)

क्रेत्समर के अनुसार इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों का शरीर का गठन बेलोचदार तथा असामान्य होता है। इनके व्यक्तित्व में ऊपर वर्णित तीनों प्रकार का मिश्रण पाया जाता है। क्रेत्समर के अनुसार अधिकतर मानसिक रोगियों के शरीर की बनावट मिश्रकाय प्रकार की होती है। इनके शारीरिक विकास में कई प्रकार की असामान्यताएं पायी जाती है। इनमें अन्तःÒावी ग्रंथियों का Òाव भी सामान्य नहीं होता है।

शेल्डन का व्यक्तित्व वर्गीकरण (Sheldon's Classification of Personality)

क्रेत्समर के व्यक्तित्व वर्गीकरण को मनोवैज्ञानिको ने उनके वर्गीकरण आंशिक रूप से सही और आंशिक रूप से गलत पाया। कई शोध अध्ययनों में उनका वर्गीकरण खरा नहीं उतरा तथा उनके द्वारा किये गए व्यक्तित्व वर्गीकरण में सभी व्यक्तियों का वर्गीकरण नहीं किया जा सकता।

अमेरिका के चिकित्सक शेल्डन (1942) ने भी शरीर के प्रकार और चित्त प्रकृति का अध्ययन किया। उसने शरीर की रचनाओं में तीन घटकों को प्रधान माना है। इन तीन घटकों में जिस घटक की शरीर में प्रधानता है उसके अनुसार उस व्यक्ति का व्यक्तित्व होगा। उसने पहला घटक स्थूलकाय का या एण्डोमॉर्फी माना है। दूसरा घटक मध्यकाय का या मीजोमॉर्फी का व तीसरा घटक है लम्बकाय या एक्टोमॉर्फी। जिस व्यक्ति के शरीर में स्थूलकायता या एण्डोमॉर्फी की प्रधानता होती है तो उसका शरीर स्थूल होता है और यदि मध्यकायता या मीजोमॉर्फी घटक की प्रधानता होती है तो शारीरिक बनावट मध्यकाय होती है। लम्बकायता, एक्टोमॉर्फी प्रधान घटकों वाले शरीर की बनावट लम्बकाय होती है। इस तरह शेल्डन ने व्यक्तियों को घटकों के आधार पर निम्न तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया है–

1. स्थूलकाय या गोलाकार या अंतरंग प्रधान (Endomorphic or Viscerotonic)
2. मध्यकाय या आयताकार या काय प्रधान (Mesomorphic or Somatonic)
3. लम्बाकार या लम्ब प्रमस्तिष्क प्रधान (Ectom-orphic or Cerebrotonic)

शेल्डन द्वारा वर्गीकृत उपरोक्त तीनों प्रकार के व्यक्तित्वों के लक्षणों का संक्षेप मे वर्णन हम आगे करेंगे।

1. स्थूल काय या गोलाकार या अंतरंग प्रधान (Endomorphic or Viscerotonic)

इस वर्ग वाले व्यक्ति का व्यक्तित्व अंतरंग प्रधान होता है। इनमें अपनी दिनचर्या रहन–सहन और कार्य करने के ढंग विशेष लक्षणों युक्त होते है। इनके मुख्य लक्षणों मे (1) आराम प्रेमी (2) मंद प्रतिक्रिया (3) चाल ढाल में शिथिलत (4) भोजनप्रिय (5) पाचन–क्रिया में आनंद (8) अविवेकी मिलनसारिता–(6) जन–प्रेमी (7) शिष्टाचार का प्रेमी (8) अविवेकी मिलनसारिता (9) प्यार और अनुमोदन की चाह (10) जन अभिविन्यास (11) भाव प्रवणता

(12) सहिष्णुता (13) आत्म संतोष (14) गहन निंद्रा (15) समन्वयवादी (16)निश्चल एवं सरल स्वभाव (17) दुःख में संगी–साथी की तलाश (18) पारिवारिक प्रेमी

2. मध्यकाय प्रधान व्यक्तित्व (Mesomorphic or Somatotonic)

इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों का शरीर पुष्ट सुडौल एवं सुगठित होता है। इनकी शारीरिक शक्ति पर्याप्त विकसित होती है। इनकी मांसपेशियां एवं हड्डियां भी पर्याप्त विकसित एवं शक्तिशाली होती है। इन लोगों मे खेलकूद में भाग लेने की रुचि रहती है। इनके शरीर पर चोट आदि का प्रभाव कम पड़ता है। ये अपने शरीर की देखभाल पर अधिक ध्यान देते है। अपने शरीर को पुष्ट सुगठित एवं ओजस्वी बनाये रखने के लिए व्यायाम और अन्य शारीरिक क्रियाएं करते रहते है। इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों में प्रायः जो गुण पाए जाते हैं वे निम्न प्रकार के हैं –

1. शारीरिक–श्रम और कार्य–प्रेमी 2. ओजस्विता और नेतृत्व 3. चाल–ढाल में स्वाग्रही 4. व्यायाम–मनोरंजन प्रेमी 5. पढ़ाई–लिखाई से दूर 6. साहसी एवं संकटपूर्ण अवसर का प्रेमी 7. वार्तालाप में निर्भीक 8. प्रभुत्व वाला 9. दृढ़ हृदय 10. धर्मभीरुता का अभाव 11.प्रतियोगिता में आक्रामक 12. सवृत स्थानभीति 13 कोलाहल प्रेमी 14. ऊंचा और स्पष्ट स्वर 15. अतिपरिपक्व शरीर 16. कष्ट एवं पीड़ा के प्रति उदासीन 17. कठिनाई में भी सक्रियता 18. चिंतन में रूढ़िवादिता

3. प्रमस्तिष्क प्रधान व्यक्तित्व (Ectomorphic or Cerebrotonic)

प्रमस्तिष्क प्रधान व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों को लम्ब प्रमस्तिष्क प्रधान व्यक्तित्व वाला व्यक्ति भी कहते है। शारीरिक दृष्टि से ये लम्बे दुबले एवं पतले होते हैं। ये सही ढंग से पोशाक पहनते हैं। ये चिन्तनशील होते हैं परंतु शारीरिक शक्ति में कमजोर होते हैं। यह श्रमसाध्य कार्य कम करते हैं।

शेल्डन द्वारा प्रमस्तिष्क प्रधान व्यक्तित्व वाले व्यक्ति के जो लक्षण बताये गये है उनको संक्षेप में नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है–

1. शारीरिक क्रिया 2. तत्काल प्रतिक्रिया 3. चाल–ढाल में संयम 4. एकांत प्रेमी 5. सीमित सामाजिक संबंध एवं जन– भीति 6. मानसिक क्रियाशीलता–लम्ब प्रमस्तिष्क प्रधान व्यक्ति में अत्यधिक मानसिक क्रियाशीलता पायी 7. भावात्मक गोपनीयता8. संकोची स्वभाव 9. विवृत–स्थान–भीति 10. अनिश्चित अभिवृत्ति 11. आदत से बचाव 12. संवेदनशील 13. गहरी निंद्रा का अभाव–इस वर्ग के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति गहरी एवं सुख की नींद नहीं सो पाता 14. निरन्तर थकान का अनुभव 15. संयमित वाणी 16. अंतर्मुखी 17. विपत्ति में एकांत की आवश्यकता 18. नित्य युवापन 19. शिष्टाचार प्रेमी

2. शीलगुण सिद्धांत (Traits theory of personality)

जी. डब्ल्यू. आलपोर्ट का शील गुण सिद्धान्त (Alport's Traits theory of personality)

प्रो. गार्डन डब्ल्यू आलपोर्ट का व्यक्तित्व सिद्धान्त के क्षेत्र में विशेष एवं महत्त्वपूर्ण योगदान है। आलपोर्ट ने व्यक्तित्व को समझने के लिए ''व्यक्तित्व का शील गुण सिद्धान्त''

प्रतिपादित किया। उन्होनें ने व्यक्तित्व को शील गुणों, चरित्र तथा स्वभाव का संकलन माना है और व्यक्तित्व की व्याख्या में इनका उपयोग भी होता है। उन्होंने व्यक्तित्व में व्यक्ति के शीलगुणों, चरित्र, स्वभाव, मूल्य, आदतें आदि प्रत्ययों का उपयोग किया है। आलपोर्ट के अनुसार व्यक्ति के चरित्र से व्यक्तित्व का मूल्यांकन होता है और उसके व्यक्तित्व से चरित्र का, अतः दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। अच्छे चरित्र वाले व्यक्ति में उत्तम स्तर के नैतिक गुण होते हैं और वह समाज का प्रतिष्ठित व्यक्ति होता है।

आलपोर्ट के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में कुछ विशेष प्रकार की विशिष्टताएं पाई जाती हैं जिन्हें शील गुण कहते हैं। उन्होंने शील गुण को एक मानसिक संरचना माना है। उनके अनुसार शील गुण मनोस्नाय की क्रियाओं से निर्मित होते हैं और इनकी क्रियाशीलता विभिन्न प्रकार के उद्दीपकों की क्षमता एवं कार्य प्रणाली पर निर्भर करती है।

आलपोर्ट ने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में शील गुणों के अतिरिक्त व्यक्तित्व का विकास, प्रकार्यात्मक स्वायत्ता, स्वस्थ व्यक्ति के लक्षण तथा मूल्यों पर प्रकाश डाला है।

व्यक्तित्व संरचना (Personality Structure)–आलपोर्ट के अनुसार व्यक्तित्व संरचना में शील गुणों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। इन शील गुणों के बारे में हम नीचे व्याख्या करेंगे।

शील गुण या विशेषक (Traits)–जैसा कि पूर्व में शील गुणों के बारे में हमने थोड़ा सा स्पष्ट किया कि शील गुण व्यक्ति में कुछ विशिष्ट मानसिक संरचनाएं हैं। आलपोर्ट ने शील गुणों को परिभाषित किया है जिनका अनुवाद प्रो. डॉ. सीताराम जायसवाल के शब्दों में इस प्रकार है–''शील गुण सामान्य तथा व्यक्ति विशेष की तंत्रिका मानसिक पद्धति में केन्द्रित होते हैं। उसमें यह क्षमता होती है कि वह विभिन्न उद्दीपनों से संबंधित कार्यों में समानता बनाये रखे और अनुकूलन तथा अभिव्यक्ति संबंधी व्यवहारों का आरम्भ तथा निरन्तरता एवं समरूपता के अनुरूप निर्देशन कर सके।''

शील गुणों के बारे में आलपोर्ट ने कुछ विशेष बातें बताई–

1. प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में शील गुण आवश्य होते हैं। 2. शील गुण दिखने वाले नहीं हैं अपितु ये मनोदैहिक रचना है। 3. इनको प्रत्यक्ष नहीं देखा जा सकता परन्तु व्यवहार की निरन्तरता से इनका अनुमान लगाया जा सकता है। 4. मनुष्य के व्यवहारों की शैली में जो निरन्तरता पाई जाती है वह शील गुणों पर ही आधारित होती है। 5. शील गुण पूर्ण रूप से स्वतंत्र नहीं होते। व्यक्ति के व्यक्तित्व में जो भी शील गुण पाये जाते हैं उनका एक दूसरे से संबंध होता है। 6. भिन्न–भिन्न व्यक्तियों में शील गुणों की मात्रा भिन्न–भिन्न होती है।

शील गुणों के प्रकार (Types of Traits)–आलपोर्ट ने तीन प्रकार के शील गुण माने हैं–**1. मूलभूत शील गुण (Cordinal traits)**–ये वे शील गुण हैं जो प्रायः सभी व्यक्तियों में पाये जाते हैं। इनका अर्थ ऐतिहासिक चरित्रों के आधार पर भी जाना जा सकता है। ये व्यक्ति के व्यक्तित्व के मूलभूत गुण होते हैं। इन शील गुणों से व्यक्ति अपना जीवन संगठित करता है। इस प्रकार के शील गुणों के उदाहरण हैं–शक्ति, उपलब्धियां तथा दूसरों के लिए त्याग आदि। **2. केन्द्रीय शील गुण (Central traits)**–केन्द्रीय शील गुण व्यक्ति की वे प्रवृत्तियां हैं जिन्हें लोग देखकर ही पहचान सकते हैं। जैसे व्यक्ति

की बहिर्गामिता, बहिर्गामी मनोभाव, उसकी सामाजिकता, जीवन्तता, ईमानदारी और कर्त्तव्यनिष्ठा आदि। **3. गौण शील गुण (Secondary traits)**–इस प्रकार के शील गुणों में विशिष्ट आदतें, जीवन शैली, खान–पान का तरीका, अभिवृत्तियां, प्राथमिकताएं आदि आते हैं। आलपोर्ट के अनुसार व्यक्ति प्रायः इन्हीं शील गुणों के आधार पर दूसरे व्यक्तियों से अलग पहचान बनाये रखता है।

उपरोक्त तीनों प्रकार के शील गुण व्यक्तित्व की संरचना करते हैं जो व्यक्ति के व्यवहार को निर्धारित करते हैं। आलपोर्ट ने व्यक्ति के व्यवहार के लिए पर्यावरण दशाओं की अपेक्षा व्यक्तित्व संरचना को उत्तरदायी माना है। इसके लिए उन्होंने उदाहरण देते हुए बताया कि एक ही आग जहां मक्खन को पिघला देती है वहीं अंडे को कठोर बना देती है। यहां पर आग एक ही प्रकार का उद्दीपक है परन्तुउसका प्रभाव भिन्न–भिन्न है। इसी तरह एक ही वातावरण में रहते हुए लोग भिन्न–भिन्न व्यवहार करते हैं जिसका कारण उनकी व्यक्तित्व संरचना है।

उपरोक्त शील गुणों के अतिरिक्त आलपोर्ट ने दो और शील गुणों की चर्चा की है–वैयक्तिक एवं सामान्य शील गुण। एक समाज या एक संस्कृति के लोगों में ये गुण सामान्य होते हैं।

उदाहरण के लिए हम किसी समाज के किन्हीं व्यक्तियों को विनम्र या किन्हीं को आक्रामक कह सकते हैं। इस प्रकार के शील गुणों के अस्तित्व के पीछे यह अवधारणा है कि समाज की संस्कृति विशेष होती है तथा सामाजिक प्रभाव भी विशेष होता है। इनमें समायोजन स्थापित करने के लिए व्यक्ति सामान्य युक्तियों का आधार लेते हैं।

इस प्रकार के शील गुणों के उदाहरणों में सामाजिक अभिवृत्तियां, चिंता, सामाजिक रीति–रिवाज, परम्पराएं, मूल्य आदि आते हैं।

मनोविश्लेषण सिद्धान्त (Psycho-dynamic or Psycho- analytic theory of personality)

मनोविश्लेषण सिद्धान्त के जन्मदाता सिग्मण्ड फ्रायड हैं। इस सिद्धान्त के तीन प्रमुखमनोवैज्ञानिक थे—सिंग्मण्ड फ्रायड, अल्फ्रेड ऐडलर तथा कार्ल जी. युंग। मनोविश्लेषणवाद के तीन मुख्य अर्थ हैं—

1. इस सिद्धान्त के माध्यम से व्यक्ति के चेतन, अवचेतन व अचेतन मन तथा व्यक्ति के जीवन का विश्लेषण किया जाता है तथा उसकी व्यवहार की गति का अध्ययन उसके उपचार की दृष्टि से किया जाता है। 2. मनोविश्लेषण सिद्धान्त का उपयोग मनोचिकित्सा के रूप में किया जाता है। 3. यह मनोविज्ञान क्षेत्र में व्यक्तित्व के अध्ययन का एक सिद्धान्त या सम्प्रदाय है।

इस सिद्धान्त में व्यक्ति के जीवन की दो मूल प्रवृत्तियां मुख्य मानी जाती है। जो व्यक्ति के जीवन में उसके व्यवहार के लिए उत्तरदायी है। ये प्रवृत्तियां हैं– 1. जीवन मूल प्रवृत्ति (Eros Instinct) 2. मरण मूल प्रवृत्ति (Thanatos Instinct) इसके अतिरिक्त इस सिद्धान्त में व्यक्ति के व्यक्तित्व अध्ययन के लिए उसके चेतन, अवचेतन और अचेतन मन तथा इदम्, अहम् और पराहम् पर क्येिष बल दिया जाता है।

फ्रायड ने अपने मनोविश्लेषण सिद्धान्त में व्यक्ति के व्यक्तित्व के दो प्रमुख पक्षों पर ध्यान दिया है ये पक्ष हैं—

1. व्यक्तित्व की संरचना (Structure of Personality)
2. व्यक्तित्व का विकास (Development of Personality)

1. **व्यक्तित्व की संरचना (Structure of Personality)–**: फ्रायड ने व्यक्तित्व की संरचना में निम्न प्रत्ययों को मुख्य माना है —

1. चेतना के स्तरों का प्रत्यय (Concept of Conscious Levels)
2. इदम्, अहम् एवं पराहम् का प्रत्यय (Concept of Id, Ego and Super-ego)
3. मूल प्रवृत्तियों का प्रत्यय (Concept of Instincts)
4. लिबिडो का प्रत्यय (Concept of Libido)
5. स्वप्नों का प्रत्यय (Concept of Dreams)

फ्रायड का यह मानना है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व की संरचना में इन तत्वों की अहम् भूमिका रहती है।

चेतना के स्तर (Levels of Consciousness)

मनोविश्लेषण सिद्धान्त को विकसित करते हुए फ्रायड ने मन या चेतना को तीन स्तरों में विभक्त किया। 1. चेतन स्तर 2. अवचेतन स्तर और 3 अचेतन स्तर

1.चेतन स्तर (Conscious Level) – मन के चेतन स्तर का सम्पर्क बाह्य जगत से रहता है यह उन सारे अनुभवों (सुख–दुःख) एवं चेतन क्रियाओं को समाहित करता है जिसको व्यक्ति किसी भी क्षण जान सकता है। फ्रायड ने इसकी परिधि में व्यक्ति के मानसिक जीवन के विचार, प्रत्यक्षीकरण, अनुभव एवं स्मृतियों को वर्णित किया है। चेतन स्तर सम्पूर्ण चेतनास्तर का 1/10 वॉ भाग ही होता है अर्थात् यह चेतना का छोटा एवं सीमित पहलू है।

2. अवचेतन स्तर (Sub-conscious Level)

यह चेतनास्तर का वह भाग है जो चेतना के चेतन स्तर एवं अचेतना स्तर के बीच सेतु का काम करता है। इस को प्रायः प्राप्य स्मृति (**available memory**) कहा जाता है। यह चेतना के केन्द्र के समीप रहने वाला स्तर है। परन्तु अवचेतन के अनुभव चेतना केन्द्र से परे होते हैं। अवचेतन के अनुभवों को सरलता से चेतना स्तर पर लाया जा सकता है। इसके अनुभव सदैव चैतनावस्था में आने का प्रयत्न करते रहे हैं।

3. अचेतन स्तर (Unconscious Level)

फ्रायड के अनुसार मानव मन का गहनतम् एवं मुख्य भाग अचेतन स्तर है। यह मन का सबसे गहरा स्तर है, और अवचेतना के नीचे का स्तर है। हमारे सभी कार्य चेतन तथा अवचेतन के स्तर से ही नहीं होते परन्तु बहुत से कार्य अचेतन के आधार पर भी होते हैं। मन का अचेतन भाग उन कार्यों को भी करता है जिन्हें चेतन मन नहीं कर पाता।

अचेतन मन का सबसे बड़ा भाग अर्थात् 9/10 वॉ भाग है। अचेतन एक तरह से मन का वो भंडार है जिसमें हमारे भाव, विचार, कामनाएं तथा इच्छाएं, जिनकी संतुष्टि चेतन मन से नहीं हो पाती है, दमित होकर एकत्रित रहते है। ये अचेतन स्तर में ही रहकर व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करते रहते हैं। ये दमित भाव, विचार, कामनाएं तथा इच्छायें आदि व्यक्ति के व्यवहार से अन्य रूपों से प्रकट होती है। मन व्यक्ति के असामान्य व्यवहार या स्वप्नावस्था में इन दमित इच्छाओं की पूर्ति करने का प्रयास करता है।

कई क्रियाएं अचेतन मन से होती है। अचेतन मन में दबी अतृप्त वासनाओं और कामनाओं की तृप्ति के लिए ही ये क्रियाएं अचेतन मन से शरीर के द्वारा होती हैं। अचेतन मन की अतृप्त इच्छाएं, भावनाएं, विचार तथा कामनाओं की संतुष्टि स्वप्न के द्वारा होती है। निद्रा में चेतन मन के सुप्त हो जाने पर, अचेतन मन में दमित इच्छाएं क्रियाशील हो जाती हैं तथा वे सपनों के माध्यम से अपना नया संसार रचती हैं और अपनी संतुष्टि करती है।

2. इदम्, अहम् एवं पराहम् (Id, Ego and Super-ego)

फ्रायड ने व्यक्तित्व संरचना में तीन तत्वों को प्रमुख मानकर इनका वर्णन किया है। ये तत्व है इदम् (**Id**), अहम् (**Ego**) तथा पराहम् या नैतिक मन (**Super-ego**)। इन तीनों तत्वों का चेतना के स्तरों से बड़ा संबंध है। इदम् अहम् तथा पराहम् एक दूसरे से मिले हुऐ है और इनको अलग करके देखा और समझा नहीं जा सकता है। नाम की दृष्टि से ये भिन्न है परन्तु वास्तविकता में व्यक्ति का सम्पूर्ण व्यवहार एवं व्यक्तित्व इन तीनों के कार्यो से प्रभावित होता है।

3. मूल प्रवृत्तियों का प्रत्यय (Concept of Instincts)

फ्रायड ने मनः ऊर्जा का स्रोत मूल प्रवृत्तियों को माना है। फ्रायड ने मूल प्रवृत्तियों की व्याख्या करते हुए स्पष्ट किया है कि इदम् की आवश्यकताओं के फलस्वरूप जो तनाव उत्पन्न होते हैं उनके मूल में पाए जाने वाली शक्तियॉ मूल प्रवृत्तियां कहलाती है। फ्रायड के अनुसार मूल प्रवृत्तियों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—1. **जीवन की मूल प्रवृत्ति या जिजीविषा मूलप्रवृत्ति** (Life Instinct or Eros) फ्रायड के अनुसार जीवन की मूल प्रवृत्ति को जीवन की ऐसी भौतिक प्रवृत्ति माना जा सकता है जो मनुष्य के शारीरिक पदार्थों में संतुलन बनाए रखने और निर्माणकारी कार्यों को करने के लिए उसे प्रेरित करती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से जीवन मूल प्रवृत्ति काममयी आवेगों को जन्म देती है जिसके फलस्वरूप व्यक्ति अपने खाने–पीने रहने तथा कपड़ों का प्रबन्ध करता है इस मूल प्रवृत्ति से बौद्धिक स्तर का भी विकास होता है। **2. मृत्यु या मुमूर्षा मूल प्रवृत्ति** (Death Instinct or Thanatos) यह मूल प्रवृत्ति व्यक्ति को अपने प्रति या समाज के प्रति हानिकारक कार्यों की ओर प्रेरित करती है। फ्रायड ने अपने प्रसिद्ध कथन में यह कहा है कि ''सभी के जीवन का लक्ष्य मृत्यु है।'' फ्रायड के अनुसार जब व्यक्ति अचेतन स्तर पर मृत्यु की कामना करता है तब वह धीरे–धीरे अपनी मृत्यु की ओर अग्रसर होता है। मनुष्य द्वारा किए जाने वाले विनाशकारी कार्य जैसे तोड़फोड़ करना, क्रोध में अपना सिर फोड़ लेना, आगजनी करना, आत्महत्या का प्रयास करना ये सभी इस मूल प्रवृत्ति के कारण है। मनुष्य में द्वेषता की भावना भी इसी मूल प्रवृत्ति का कारण है।

4.लिबिडो का प्रत्यय (Concept of Libido)

फ्रायड ने मनुष्य में व्याप्त काम शक्ति को लिबिडो कहा है। उनके अनुसार इसका सम्बन्ध मूल रूप से व्यक्ति की कामुकता (Sexuality) से होता है। फ्रायड के अनुसार लिबिडो व्यक्ति के कामवासना की गत्यात्मक प्रवृत्ति है। इसका काम सम्बन्धी मूल प्रवृत्तियों से बहुत गहरा सम्बंध है।

फ्रायड के अनुसार मूलप्रवृत्तियॉ जब–जब क्रियाशील होती है तब–तब लिबिडो भी उसके साथ अवश्य रहता है। परन्तु सभी मूल प्रवृत्तियां लिबिडो की अभिव्यक्तियां नहीं हैं। कई व्यक्तियों में लिबिडों का प्रभाव कुछ काल्पनिक वस्तुओं की ओर होता है, ऐसी स्थिति में व्यक्ति अन्तमुर्खी हो जाता है।

5.स्वप्नों का प्रत्यय (Concept of dreams)

सभी मनुष्यों को नींद में स्वप्न आते हैं। कई लोग यह भी कहते हैं कि स्वप्न आने से नींद में बाधा पड़ती है, गहरी नींद नहीं आ पाती। परन्तु फ्रायड ने स्वप्नों को निद्रा में बाधक नहीं माना बल्कि उनको स्वास्थ्य के लिए सहायक माना। स्वप्नों के द्वारा मनुष्य अपनी दमित इच्छाओं को पूर्ण करता है। स्वप्न मानसिक प्रक्रियाएं है और उनका सम्बन्ध अचेतन मन से होता है। फ्रायड के अनुसार समस्त स्वप्न इच्छा पूर्ति के होते हैं। फ्रायड ने अपनी पुस्तक 'The Interpretition of dreams' में स्वप्नों की विस्तार से व्याख्या की है। भिन्न–भिन्न स्तर के व्यक्तियों के लिए इच्छायें, आवश्यकताएं और आकाक्षायें भिन्न–भिन्न होती हैं और इसी आधार पर उनको भिन्न–भिन्न प्रकार के स्वप्न आते हैं। जब व्यक्ति अपनी इच्छाओं की पूर्ति चेतन अवस्था में नहीं कर पाता अथवा किसी कारण उसका दमन कर देता है तो वह समाप्त नहीं होती बल्कि अचेतन में चली जाती है और वहां से वे (इच्छाएं) अवसर मिलने पर विभिन्न प्रकार से प्रकट होने की चेष्टा करती हैं। स्वप्न इन इच्छाओं की अभिव्यक्ति का एक साधन है।फ्रायड के अनुसार स्वप्न रचना दो प्रकार की होती है—

प्रथम प्रकार की रचना में मूल प्रवृत्ति के आवेग जो साधारणतया मनुष्य द्वारा दमित कर लिये जाते हैं वह सोते समय पूरी क्षमता के साथ अहम् पर दबाव डालते हैं और उनसे स्वप्न आते हैं। दूसरी प्रकार की रचना में कोई तीव्र इच्छा जाग्रत अवस्था में तृप्त नहीं होती है तो वे सोते समय अचेतन स्तर से शत्ि बटोरकर बाहर आने के लिए अहम् पर दबाव डालती है। ठीक उसी तरह जैसे कोई कैदी जेल की कोठरी से बाहर आने के लिए छटपटाता है। स्वप्न संक्षिप्त होते हैं तथा इनमें तर्क का कोई विशेष स्थान नहीं होता। ना तो ये स्पष्ट होते हैं और न ही इनमें विवेक का स्थान होता है।

मास्लो का मानवीय सिद्धान्त (Humanistic theory of personality)

बीसवी शताब्दी में व्यक्तित्व अध्ययन सम्बन्धी, तीन महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त सामने आये। पहला फ्रायड का मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त है, इस सिद्धान्त के अन्तर्गत मूल प्रवृत्तियों एवं द्वंद्वों के आधार पर मानव प्रकृति की व्याख्या की जाती है। दूसरा व्यवहारवाद का सिद्धान्त है जिसमें व्यक्ति के व्यवहार की व्याख्या बाह्य उद्दीपकों के सम्बन्ध में की जाती है। तीसरा विचार या सिद्धान्त मानवतावाद का सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त को मनोविज्ञान जगत् में व्यक्तित्व सिद्धान्तों की तीसरी शक्ति भी कहा जाता है। इस सिद्धान्त की व्याख्या अन्य सिद्धान्तों से बिल्कुल ही भिन्न प्रकार से की गई है। इस सिद्धान्त में विशेष रूप से यह माना जाता है कि व्यक्ति मूल रूप में अच्छा एवं आदरणीय होता है और यदि उसकी परिवेशीय दशाएं अनुकूल हों तो वह

अपने शीलगुणों का सकारात्मक विकास करता है। यह सिद्धान्त वैयक्तिक विकास, स्व का परिमार्जन, अभिवृद्धि, व्यक्ति के मूल्यों एवं अर्थों की व्याख्या करता है। इस सिद्धान्त के प्रतिपादक अब्राहम मास्लो

मानवतावादी नामक इस सिद्धान्त के विकास में अस्तित्ववादी मनोविज्ञान का भी योगदान है। अस्तित्ववाद एवं मानवतावाद दोनों व्यक्ति की मानवीय चेतना, आत्मगत अनुभूतियां एवं उमंग तथा व्यक्तिगत अनुभवों की व्याख्या करते है और उसे विश्व से जोड़ने का प्रयत्न करते है।

इस सिद्धान्त के मनोवैज्ञानिकों ने मानव व्यवहार एवं पशु व्यवहार में सापेक्ष अंतर माना है। ये व्यवहारवाद का इसलिए खण्डन करते है कि व्यवहारवाद का प्रारम्भ ही पशु व्यवहार से होता है। मास्लो एवं उनके साथियों ने मानव व्यवहार को सभी प्रकार के पशु व्यवहारों से भिन्न माना। इसलिए उन्होंने पशु व्यवहार की मानव व्यवहार के साथ की समानता को अस्वीकार किया। उन्होंने मानव व्यवहार को समझने के लिए पशुओं पर किये जाने वाले शोध कार्यों का खण्डन किया क्योंकि पशुओं में मानवोचित गुण जैसे आदर्श, मूल्य, प्रेम, लज्जा, कला, उत्साह, रोना, हंसना, ईर्ष्या, सम्मान तथा समानता नही। पाये जाते। इन गुणों का विकास पशुओं में नही। होता और विशेष मस्तिष्कीय कार्य जैसे कविता, गीत, कला, गणित आदि कार्य नही। कर सकते।

इस सिद्धान्त मे मानवीय व्यवहार की व्याख्या में मानव के अंतरंग स्वरूप पर विशेष बल दिया। उनके अनुसार व्यक्ति का एक अंतरंग रूप है जो कुछ मात्रा में उसके लिए स्वाभाविक, स्थाई तथा अपरिवर्तनषील है। इसके अतिरिक्त उन्होंने मानव की सृजनात्मक क्रियाओं को विशिष्ट क्रियाएं माना है। मास्लो के इस सिद्धान्त में यह धारणा है कि अभिप्रेरणाएं समग्र रूप से मनुष्य को प्रभावित करती है।

मास्लो तथा अन्य मानवतावादियों का यह विचार है कि अन्य सिद्धान्तों में मनोवैज्ञानिकों द्वारा मनुष्य के व्यवहार का अध्ययन करने में किसी ऐसे पक्ष का वर्णन नही। किया, जो पूर्ण स्वस्थ मानव के प्रकार्य, जीवन पद्धति और लक्ष्यों का वर्णन कर सके। मास्लो का यह विश्वास था कि मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन किए बिना व्यक्ति की मानसिक दुर्बलताओं का अध्ययन करना बेकार है। मास्लो (1970) ने कहा कि केवल असामान्य, अविकसितों, विकलांगों तथा अस्वस्थों का अध्ययन करना केवल 'विकलांग' मनोविज्ञान को जन्म देना है। उन्होंने मनोवैज्ञानिक रूप से स्वस्थ एवं स्व–वास्तवीकृत व्यक्तियों के अध्ययन पर अधिक बल दिया। अतः मानवतावादी मनोविज्ञान में 'आत्मपरिपूर्ण (Self-fulfillment) को मानव जीवन का मूल्य माना है।

इसी धारणा के आधार पर मास्लो ने मानव प्रेरणा के पदानुक्रम सिद्धान्त को प्रतिपादित किया।

मास्लो का प्रेरणा का पदानुक्रम सिद्धान्त (Maslow's Hierarchical Theory of Motivation)

मास्लो के प्रेरणा के पदानुक्रम सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति के व्यवहार को समझने के लिए उसकी प्रवृत्तियों को समझना आवश्यक है। मास्लो ने सन् 1954 में अपनी पुस्तक 'अभिप्रेरणा एवं व्यक्तित्व' (Motivation and Personality) में अभिप्रेरणा की व्याख्या करते हुए व्यक्ति की बुनियादी आवश्यकताओं का विश्लेषण किया है। उनके अनुसार अभिप्रेरणा का कोई न कोई

मूल्य होता है जिससे मानव व्यवहार लक्ष्योन्मुख होता है। मनुष्य को अपने जीवन के उद्देश्यों की पूर्ति करने एवं व्यक्तित्व का समायोजन बनाने के लिए उसे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करनी होती है।

जिम्बार्डो (1989) के अनुसार मास्लो ने मनुष्य की मूलभूत जैविक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं तथा लक्ष्य–प्राप्ति की आवश्यकताओं को 8 सोपानों में रखा है । जब व्यक्ति अपनी मूलभूत जैविक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकता की पूर्ति सुचारू रूप से नही कर पाता तब उसको मानसिक संताप, तनाव, दुःश्चिन्ता, कुण्ठा आदि से ग्रसित होने की संभावना बढ़ जाती है जो उसके व्यक्तित्व विकास में बाधक होती है। मास्लो द्वारा उद्धृत इन सोपानों का संक्षेप में वर्णन किया जा रहा है:

1. शारीरिक या जैविक आवश्यकताएं (Biological or Physiological needs)
2. सुरक्षा आवश्यकताएं (Safty needs)
3. सम्बद्धता एवं प्रेम की आवश्यकता (Belongingness and Love needs or Attachement)
4. प्रतिष्ठा आवश्यकताएं (Esteem needs)
5. ज्ञानात्मक आवश्यकताएं (Cognitive needs)
6. सौन्दर्यपरक आवश्यकताएं (Esthetic needs)
7. आत्मसात या आत्मसिद्ध आवश्यकता (Self-actualization)
8. भावातीत होने की आवश्यकता (Transcendence)

1.जैविक या दैहिक आवश्यकताएं (Biological or Physiological need)

मनुष्य में प्रमुख आवश्यकताएं देह स्तर की या जैविक स्तर की है। इन आवश्यकताओं में मुख्य रूप से भूख, प्यास, नींद, प्राणवायु, यौन, विश्राम, तनावमुक्ति एवं तीव्र तापमान से बचाव की आवश्यकताएं प्रमुख है। व्यक्ति इन भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अभिप्रेरित होता है। ये आवश्यकताएं दैहिक निरन्तरता को बनाए रखने के लिए भी आवश्यक है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए व्यक्ति आवश्यकताओं के अनुकूल व्यवहार करता है। मास्लो के अनुसार ये आवश्यकताएं जन्मजात हैं न कि इनको सीखा जाता है।

2. सुरक्षा की आवश्यकताएं (Safety Needs)

आवश्यकताओं के दूसरे सोपान में सुरक्षा की आवश्यकताएं आती हैं। व्यक्ति की जब जैविक आवश्यकताएं पूर्ण हो जाती है तब वह सुरक्षा की आवश्यकताओं के बारे में सोचने लगता है। वह अपनी शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक सुरक्षा के लिए प्रयत्नशील होता है। ये प्राथमिक आवश्यकता परिवेश में निश्चयात्मक क्रम, संरचना एवं भविष्य कथनात्मक की भावना का निर्धारण करती है। इस प्रकार की आवश्यकता सर्वाधिक बच्चों में देखी जाती है। क्योंकि वे असहाय होते है तथा वयस्कों पर आश्रित रहते है। यदि उन्हें पूर्ण रूप से सुरक्षा न मिले तो उनमें भय और अनिश्चितता पैदा हो जाती है। सुरक्षा की आवश्यकता का क्रम जन्म के उपरान्त सक्रिय होजाता है परन्तु उसकी दिशा में परिवर्तन हो जाता है। सुरक्षा की आवश्यकता का संकेत बालक द्वारा परिवेशमें किए जाने वाले विभिन्न

व्यवहारों से मिलता है। ऐसे परिवेशमें जहां वे अपने आपको असुरक्षित अनुभव करते है तब वे दूसरे परिवेश या वातावरण की खोज करते है जिनमें अपने आपको सुरक्षित अनुभव करते है। जिन परिवारों में संतानों के प्रति अनुज्ञात्मक या बंधात्मक व्यवहार होता है उनकी संतानों में सुरक्षा की आवश्यकता की कभी पूर्ति नही हो पाती, परिवार में माता–पिता के परस्पर कलहपूर्ण व्यवहार, दैहिक आक्षेप, तलाक या माता–पिता में से किसी एक की मृत्यु से भी बालक की सुरक्षा आवश्यकता पर प्रभाव पड़ता है।

उपरोक्त कारक बालक के परिवेश को असुरक्षित व अस्थिर बनाते है। बाल्यकाल के उपरान्त व्यक्ति जो सुरक्षा चाहता है वे हैं —आर्थिक सुरक्षा, बचत, अनुकुल भवन का निर्माण, चोरी–डकैती से सुरक्षा एवं भयमुक्त आदि। सुरक्षा की आवश्यकता की अनुभूति व्यक्ति को युद्ध, अपराध, बाढ़, भूकंप और दंगों आदि में स्पष्ट रूप से होती है। इस प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति में व्यक्ति को वस्त्र, भवन और अन्य साथियों की आवश्यकता रहती है। मास्लो ने इस प्रकार की आवश्यकता को मनोस्नायु विकृत एवं मनोग्रस्तता बाध्यता के रोगियों में भी पाया।

3. सम्बन्धता एवं प्रेम की आवश्यकता (Needs of Love and Belongingness or Attachment)

तीसरे सोपान की आवश्यकताओं पर मास्लो ने सम्बन्धता तथा प्रेम की आवश्यकता को रखा है। इसमें व्यक्ति दूसरों से स्नेह और प्रेम पाना चाहता है एवं दूसरों को स्नेह और प्रेम देना भी चाहता है। वह समाज से जुड़कर प्रेम और स्नेह प्राप्त करना और देना चाहता है। इस आवश्यकता की पूर्ति न होने पर व्यक्ति में अकेलेपन की कसक, सामाजिक निर्वासन एवं तिरस्कार की अनुभूति होती है। मास्लो ने इस आवश्यकता की कमी का प्रभाव व्यवहार पर पड़ने वाले प्रभाव को सह–सम्बन्धित किया और पाया कि सामाजिक गतिशीलता और औद्योगीकरण के फलस्वरूप इस आवश्यकता की कमी अनुभव होती जा रही है। पारिवारिक विघटन भी इस आवश्यकता का एक महत्त्वपूर्ण कारक है। मास्लो फ्रायड के इस विचार से सहमत नही। थे कि प्रेम व स्नेह का जन्म लैंगिक मूल प्रवृत्तियों द्वारा होता है। उनके अनुसार स्नेह और प्रेम में परस्पर आदर, प्रशंसा तथा विश्वास के भाव निहित होते है।

4. आत्म–सम्मान या प्रतिष्ठा की आवश्यकता (Self-Esteem Needs)

व्यक्ति में दैहिक, सुरक्षात्मक तथा सम्बन्धनषीलता और प्रेम की आवश्यकता की पूर्ति हो जाने पर आत्म सम्मान एवं प्रतिष्ठा की आवश्यकता का जन्म होता है। इस सोपान पर व्यक्ति आदर और सम्मान की आवश्यकता का अनुभव करता है। इस आवश्यकता को मास्लो ने दो शक्तियों के रूप में व्यक्त किया है—

1. आत्म सम्मान (Self-respect), 2. अन्य लोगों से प्राप्त सम्मान (Respect from others)

प्रथम रूप की इच्छा में व्यक्ति में स्पर्धा की इच्छा, विश्वास, वैयक्तिक शक्ति की उपयुक्तता, निष्पत्ति तथा स्वतंत्रता जैसे मूल्य होते है। इसमें व्यक्ति यह अनुभव करना चाहता है कि उसकी क्षमता कैसी है, वह कैसे कार्यों को कर सकता है तथा जीवन की चुनौतियों को कैसे स्वीकार कर सकता है जिससे कि उसका आत्मसम्मान बढ़ सके।

दूसरे रूप की आवश्यकता में दूसरों से प्राप्त प्रतिष्ठा, दूसरों से अनुमोदन, अवधान, अपना पद और प्रसिद्धि आदि है। अच्छा कार्य करने के उपरान्त व्यक्ति प्रतिष्ठा पाने की इच्छा करता है। अर्थात् वह यह इच्छा करता है कि उसने जो अच्छा कार्य किया है उसकी प्रशंसा होनी चाहिए। मास्लो के अनुसार प्रतिष्ठा एवं आत्म–सम्मान की आवश्यकता, सम्बन्ध व प्रेम आवश्यकताओं के उपरान्त उपस्थित होती है। आत्म प्रतिष्ठा या आत्म संतुष्टि व्यक्ति को आत्म–योग्यता, आत्म–विश्वास, शक्ति–योग्यता और प्रशंसा में अपनी उपयोगिता की अनुभूति व अभिवृत्ति प्रदान करती है जो उसके व्यक्तित्व विकास में सहायक होती है। इसके विपरीत यदि इन आवश्यकताओं की पूर्ति न हो तो व्यक्ति में हीनता, दुर्बलता, असहायता तथा विसंगति जैसी अभिवृत्तियों का विकास हो जाता है।

5. ज्ञानात्मक आवश्यकताएं (Cognitive Needs)

जिम्बार्डो (1985) के अनुसार मास्लो ने आवश्यकताओं की पदानुक्रम संख्या पांच पर इस आवश्यकता को रखा। जब व्यक्ति में उपरोक्त चारों पदों की आवश्यकताएं पूर्ण हो जाती है तब व्यक्ति ज्ञानात्मक आवश्यकताओं की ओर बढ़ता है। इसमें ज्ञान प्राप्त करने की, दूसरों को समझने की और नयापन प्राप्त करने की इच्छा बढ़ जाती है। वह दूसरों को समझने की कोशिश करता है, ज्ञान के उच्च स्तर पर वह अपना और दूसरी घटनाओं का विश्लेषण करना चाहता है।

6. सौन्दर्यपरक आवश्यकताएं (Esthetic Needs)

इस पदानुक्रम की आवश्यकता में व्यक्ति में प्राकृतिक एवं मानवीय सौन्दर्यता के प्रति समर्पित होने की इच्छा होती है। वह समाज के विकास और अच्छाई के लिए समर्पित होता है। वे आर्थिक सुरक्षा, प्रशंसा–स्तर, प्रतिष्ठा एवं पौरुष की अपेक्षा न्याय, सत्य, अच्छाई व सौन्दर्य आदि के आकांक्षी होते है। ये आवश्यकताएं परा–अभिप्रेरित या परा–आवश्यकताओं या संभवन की प्रेरणा (Meta Needs or B' Needs) में आती है।

7. स्व–वास्तवीकरण या आत्म–सिद्धि की आवश्यकता (Self-actualization Needs)

जब व्यक्ति की उपरोक्त छः सोपानों की आवश्यकताएं पूर्ण हो जाती है तब उसमें आत्म–सिद्धि प्राप्त करने की आवश्यकता पैदा हो जाती है। इस प्रकार की आवश्यकता को परिभाषित करते हुए मास्लो ने कहा कि स्व–वास्तवीकरण या आत्म–सिद्धि की विशेषता व्यक्ति की सर्वोत्तम इच्छा को अभिव्यक्त करती है। यह आवश्यकता उसके द्वारा अर्जित विशिष्ट गुणों तथा विशेषताओं से होती है। यह इच्छा व्यक्ति को वह बनाती है जो वह बनना चाहता है। इस इच्छा से व्यक्ति अपना सुधार करने का प्रयत्न करता है। इस आवश्यकता में व्यक्ति अपना अर्थपूर्ण उद्देश्य बनाता है और उसको प्राप्त करने का प्रयत्न करता है, अपनी क्षमताओं को आंकता है।

8. भावातीत होने या आध्यात्मिकता की आवश्यकता (Transcendence Needs)

मास्लो के अनुसार जब व्यक्ति की आत्म–सिद्धि की आवश्यकता पूर्ण हो जाती है तब उसमें आध्यात्मिक आवश्यकता उत्पन्न होती है। वह प्रकृति के बहुत निकट होना चाहता है। वह परमात्मा से साक्षीभूत होना चाहता है, प्रकृति के रहस्यों को समझना चाहता है। वह समाधिस्थ होना चाहता है। वह परम शांति को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। इस

आवश्यकता प्राप्ति में पूर्वलिखित सभी आवश्यकता गौण हो जाती है। इस स्थिति में व्यक्ति अपने चेतना स्तर को विस्तृत करना चाहता है, विश्व या ब्रह्माण्ड के रहस्यों को समझना चाहता है। इस तरह व्यक्ति के व्यवहार एवं व्यक्तित्व को समझने के लिए मास्लो ने आवश्यकताओं की उक्त आठ सीढ़ियां बताई है। क्रमशः प्रत्येक सीढ़ी या सोपान की आवश्यकता को पूर्ण करता हुआ व्यक्ति अगली सीढ़ी की आवश्यकता को प्राप्त करता है। यह उसके व्यक्तित्व विकास का क्रम भी है। मास्लो के अनुसार प्रत्येक सीढ़ी–क्रम या सोपान की आवश्यकताएं जन्मजात है न कि सीखी हुई। इनका प्राकट्यकरण व्यक्ति के परिवार और सांस्कृतिक मूल्यों के अनुसार होता है। इन आवश्यकताओं का दमन होना, इनकी पूर्ति न होना या इनका कुंठित हो जाना व्यक्ति के व्यवहार में असामान्यता उत्पन्न कर देता है। उदाहरण के लिए प्रेम की आवश्यकताओं के कुंठित हो जाने पर व्यक्ति में आक्रामक एवं यौन विकृति का व्यवहार पैदा हो जाता है।

दोषपूर्ण अभिप्रेरणा तथा अभिवृद्धि अभिप्रेरणा (Deficient Motivation and Growth Motivation)

मास्लो ने अभिप्रेरणा के क्रमबद्ध सोपानों को मुख्य दो भागों में बांटा है। ये दो भाग हैं दोषपूर्ण अभिप्रेरणायें (Deficient Motives or 'D' Motives) तथा अभिवृद्धि प्रेरणायें (Growth motives)। अभिवृद्धि प्रेरणाओं को मास्लो ने परा–आवश्यकताएं या संभव की प्रेरणा (Meta Needs or Being or B. Needs) के रूप में परिभाषित किया है। दोषपूर्ण अभिप्रेरणाओं में जैसे शारीरिक या जैविक आवश्यकता जिसमें भूख, प्यास और यौन की मुख्य आवश्यकता रहती है। इसी तरह सुरक्षा आवश्यकता तथा सम्बन्धन एवं प्रेम आवश्यकताओं की पूर्ति आवश्यक है।

अभिवृद्धि प्रेरणाओं (Growth motive), जिनको मास्लो ने परा–आवश्यकताएं या संभवन की प्रेरणा (Meta Needs or Being or 'B' Needs) के रूप में परिभाषित किया है, का उद्देश्य व्यक्ति में उसके अनुभवों की वृद्धि करना ताकि उसे जीवन में आनन्द मिल सके। यद्यपि ये प्रेरणायें दोषयुक्त अभिप्रेरणाओं का परिमार्जन नही करती तथापि ये वास्तविक आनन्द से परिचित कराती है। परा–अभिप्रेरित लोग सत्य, न्यायप्रिय, सौन्दर्य, परिपूर्णता, प्रकृति के निकट, अच्छाई के लिए समर्पित रहते है। वे प्रशंसा, प्रतिष्ठा, आर्थिक सुरक्षा, प्रभुत्व व पौरुष की अपेक्षा न्याय, सत्य, अच्छाई आदि के आकांक्षी होते है। वे व्यक्तिगत स्वार्थ से मुक्त, सत्यप्रिय तथा गुणान्वेषी होते है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

I वस्तुनिष्ठ प्रश्नः–

1. हिप्पोक्रेट्स ने व्यक्तित्व को................भागों में बांटा है।
2. व्यक्ति सिद्धान्तों को....................भागों में रखा जा सकता है।
3. क्रेत्समर ने व्यक्तित्व को.............भागों में बांटा है।
4. शेल्डन ने व्यक्तित्व को.................भागों में बांटा है।

II लघुत्तरीय प्रश्नः–

1. तुन्दिल प्रकार के व्यक्तित्व को समझाइये।
2. कृशकाय व्यक्तित्व की विशेषताएं बताइये।
3. प्रमस्तिष्क प्रधान व्यक्ति की विशेषताएं बताइये।

3.4 सारांश–

मनोवैज्ञानिक सदियों से यक्ति के व्यक्तित्व को समने के लिए प्रयत्न करते आ रहे है। व्यक्ति को विभिन्न वर्गों में रखकर व्यक्तित्व का अध्ययन करने का प्रयास किया गया। हिप्पोक्रेट्स ने काय रस के आधार पर व्यक्ति के व्यक्तित्व को चार भागों में बांटा। इन चारों में से जिस काय रस की व्यक्ति में प्रधानता होती है और उसके अनुसार उसकी चित्त–वृत्ति होती है। इसी तरह भारत में भी आयुर्वेद में वात, कफ, पित्त के आधार पर व्यक्ति के चित्त की प्रकृति का वर्णन किया गया है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी तीन गुणों सत्, रज, और तम के आधार पर व्यक्ति के व्यक्तित्व का वर्गीकरण किया गया है। कई पाश्चात् मनोवैज्ञानिकों ने भी विभिन्न सिद्धांतों द्वारा व्यक्तित्व का अध्ययन करने का प्रयत्न किया जैसे क्रेत्समर (1925) ने शारीरिक रचना के आधार पर चार प्रमुख प्रकार बताए– 1. पुष्टकाय प्रकार (Athletic Type) 2. कृशकाय प्रकार (Asthenic Type) 3.तुन्दिल प्रकार (Pyknic Type) 4. मिश्रकाय प्रकार (Dysplastic Type), शेल्डन ने (1942) व्यक्तियों को घटकों के आधार पर निम्न तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया है– 1. स्थूलकाय या गोलाकार या अंतरंग प्रधान (Endomorphic or Viscerotonic) 2.मध्यकाय या आयताकार या काय प्रधान (Mesomorphic or Somatonic) 3.लम्बाकार या लम्ब प्रमस्तिष्क प्रधान(Ectomorphic or Cerebrotonic)

प्रो. गार्डन डब्ल्यू आलपोर्ट ने व्यक्तित्व को समझने के लिए ''व्यक्तित्व का शील गुण सिद्धान्त'' प्रतिपादित किया। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में शील गुण आवश्य होते जो दिखने वाले नहीं हैं अपितु ये मनोदैहिक रचना है। इनको प्रत्यक्ष तो नहीं देखा जा सकता परन्तु व्यवहार की निरन्तरता से इनका अनुमान लगाया जा सकता है।

आलपोर्ट ने तीन प्रकार के शील गुण माने हैं–1. मूलभूत शील गुण 2. केन्द्रीय शील गुण 3. गौण शील। ये तीनों प्रकार के शील गुण व्यक्तित्व की संरचना करते हैं जो व्यक्ति के व्यवहार को निर्धारित करते हैं। आलपोर्ट ने व्यक्ति के व्यवहार के लिए पर्यावरण दशाओं की अपेक्षा व्यक्तित्व संरचना को उत्तरदायी माना है।

3.5 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

1– 4 2–4 3– 4 4– 3

3.6 संदर्भ ग्रंथ :

1.गौड़ . बी.पी.; व्यावहारिक मनोविज्ञान एवं जीवन विज्ञान (2004-2005), *जैन विश्व भरती विश्व विद्यालय,* लाडनूं।

2.शर्मा, रामनाथ : व्यावहारिक मनोविज्ञान की रूपरेखा, (1973) *केदारनाथ रामनाथ,* मेरठ।

राय, रामकुमार, व्यावहारिक मनोविज्ञान; (1974) *चौखम्बा विद्याभवन*, वाराणसी।

3.सीताराम जायसवाल; व्यक्तित्व मनोविज्ञान : *उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी* लखनउ।

3.7 निबन्धात्मक प्रश्नः—

1. क्रेत्समर द्वारा किये गये व्यक्तित्व का वर्गीकरण कीजिये।
2. शेल्डन द्वारा किये गये व्यक्तित्व का वर्गीकरण कीजिये।
3. फ्रायड द्वारा प्रस्तुत व्यक्तित्व संरचना में चेतना के स्तरों के प्रत्यय को स्पष्ट करें।
4. इदम्, अहम् एवं पराहम् के प्रत्यय को स्पष्ट करें।

इकाई – 4 क्रेत्स्मर एवं शेल्डन का व्यक्तित्व सिद्धान्त

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 क्रेत्स्मर एवं शेल्डन का व्यक्तित्व सिद्धान्त

4.3.1 क्रेत्स्मर एवं शेल्डन के अनुसार व्यक्तित्व की अवधारणा

4.3.2 शेल्डन का व्यक्तित्व का संघटक सिद्धान्त

4.3.3 शेल्डन के व्यक्तित्व सिद्धान्त का मूल्यांकन

4.3.4 क्रेत्स्मर के अनुसार व्यक्तित्व विवेक

4.4 सारांश

4.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.6 परिभाषिक शब्दावली

4.7 निबंधात्मक प्रश्न

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.1 प्रस्तावना–

प्रिय पाठको, जैसा कि आप जानते हैं, प्रस्तुत खण्ड में हमें व्यक्तित्व के संबंध में विभिन्न विचारकों, मनोवैज्ञानिकों द्वारा जो विभिन्न अवधारणायें दी गई हैं, उनका अध्ययन करना है। व्यक्त्वि एक बहुत ही जटिल संरचना है तथा प्रायः सभी मनोवैज्ञानिकों ने इसे अपने–अपने ढंग से समझने एवं समझाने का प्रयास किया है। क्योंकि व्यक्तित्व को जान लेने के बाद बहुत सारी चीजों को समझना अपेक्षाकृत आसान हो जाता है। प्रस्तुत इकाई में हमारे अध्ययन का विषय है– "क्रेत्स्मर एवं शेल्डन के व्यक्तित्व सिद्धान्त" का अध्ययन करना।

तो प्रिय विद्यार्थियों, आइये चर्चा करते हैं, क्रेत्स्मर एवं शेल्डन ने व्यक्तित्व के संबंध में क्या विचार दिये हैं तथा इनके विचार वर्तमान समय में कितने प्रासंगिक एवं उपयोगी हैं।

4.2 उद्देश्य–

प्रस्तुत ईकाई पढ़ने के बाद आप–

★ क्रेत्स्मर के व्यक्तित्व सिद्धान्त को स्पष्ट कर सकेंगें।

★ शेल्डन के व्यक्तित्व संबंधी विचारों का अध्ययन कर सकेंगे।

★ क्रेत्स्मर एवं शेल्डन के व्यक्त्वि संबंधी विचारों का तुलनात्मक अध्ययन कर सकेंगे।

★ क्रेत्स्मर के व्यक्तित्व सिद्धान्त के गुण एवं सीमाओं को स्पष्ट कर सकेंगे।

★ शेल्डन के व्यक्तित्व सिद्धान्त का मूल्यांकन कर सकेंगे।

★ क्रेत्स्मर एवं शेल्डन के व्यक्तित्व संबंधी विचारों की वर्तमान समय में प्रासंगिक्ता को स्पष्ट कर सकेंगे।

4.3 क्रेत्स्मर एवं शेल्डन का व्यक्तित्व सिद्धान्त–

4.3.1 क्रेत्स्मर एवं शेल्डन के अनुसार व्यक्तित्व की अवधारणा– प्रिय पाठको, अब हम चर्चा करते है, क्रेत्स्मर एवं शेल्डन के व्यक्तित्व सिद्धान्त के बारे में। क्रेत्स्मर एवं शेल्डन दोनों ने ही मानवीय व्यक्तित्व का आधार शरीर की संरचना एवं क्रियाविधि को माना है। अर्थात्– मनुष्य का शारीरिक गठन तथा उसके उसकी शारीरिक गतिविधियों के आधार पर किसी प्राणी के व्यक्तित्व का विष्लेषण किया जा सकता है। क्रेत्स्मर एवं शेल्डन दोनों ही विद्वानों का मानना है कि मनुष्य की शरीर की बनावट उसके व्यवहार को प्रभावित करती है तथा व्यवहार शारीरिक संरचना को। कहने के आषय यह है कि किस प्रकार का किसी प्राणी का चिन्तर एवं चरित्र होता है। उसी के अनुसार उसके शरीर का गठन होता है अर्थात्– जो कुछ हमारे भीतर होता है, बाहर वही झलकता है। अतः क्रेत्स्मर एवं शेल्डन के व्यक्तित्व सिद्धान्त की मूल अवधारणा यह है कि प्राणी की शारीरिक संरचना तथा क्रियाविधि का उसके व्यवहार तथा स्वीााव से घनिष्ठ संबंध है। इन दोनों ही विद्वानों ने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त के आधार पर शारीरिक गठन एवं क्रियाविध के आधार पर मानव व्यवहार के मनोवैज्ञानिक पक्ष को जानने–समझने की कोषिष की है।

4.3.2 शेल्डन का व्यक्तित्व का संघटक सिद्धान्त–

प्रिय पाठको, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि शेल्डन का व्यक्तित्व सिद्धान्त "व्यक्तित्व के संघटक_सिद्धान्त" के नाम से जाना जाता है। शेल्डन ने व्यक्तित्व की व्याख्या के लिये जैविक आधार को महत्वपूर्ण माना है अर्थात्– मानवीय व्यक्तित्व की जड़े उसकी शारीरिक संरचना तथा शरीर के विभिन्न संस्थानों की क्रियाविध में निहित है।

जिज्ञासु पाठकों, आपके मन में प्रश्न उठ रहा होगा कि "संघटन" शब्द से शेल्डन का क्या आषय है? किस सन्दर्भ में इस सिद्धान्त में संघटन शब्द का प्रयोग किया गया है?

तो आइये, आपकी इसी जिज्ञासा का समाधान करते हुये सर्वप्रथम हम यह जाने कि संघटन शब्द से शेल्डन का क्या अभिप्राय है?

शेल्डन के अनुसार संघटन शब्द का अर्थ–

सन् 1899 में शेल्डन ने संघटन शब्द के अर्थ को स्पष्ट करते हुये कहा कि–"Constitution refers to those aspects of the individual which one relatively more more fixed and unchanging-morpholagy, Physiology, indoc—function etc. and may be controsted with those aspects which one relatively more labile and cusceptible to modification by inviranmental pressuse i.c. haluits. social attitudes, adulation etc." अर्थात्– संघटन से शेल्डन का आषय मनुष्य की शरीर की संरचना, क्रियाविधि तथा अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियों की कार्यप्रणाली इत्यादि से है जो प्रायः परिवर्तित नहीं होती है। शेल्डन का यह भी मानना है कि मनुष्य की यह शारीरिक बनावट एवं कार्यप्रणाली उसके स्वभाव, व्यवहार, आदतो, दृष्टिकोण इत्यादि को प्रभावित करती है।

प्रिय पाठको, शेल्डन के व्यक्तित्व सिद्धान्त को हम निम्न बिन्दुओं के माध्यम से आसानी से समझ सकते है–

(a) शेल्डन के अनुसार शरीर गठन के प्रकार

(b) शेल्डन के अनुसार मानव स्वभाव के भेद

(c) शारीरिक संरचना का व्यवहार के साथ संबंध

प्रिय विद्यार्थियों, सबसे पहले हम चर्चा करते है, शेल्डन द्वारा बताये गये शरीर गठन के विभिन्न भेदों के बारे में–

(a) शेल्डन के अनुसार शरीर गठन के प्रकार– विद्यार्थियों, शेल्डन ने शारीरिक बनावट के आधार पर मनुष्य के तीन प्रकार के भेद बतलाये हैं, जो निम्न है–

(क) एन्डोमार्फी (Endomorphy)

(ख) मेसोमार्फी (**Mesomorphy**)

(ग) एक्टोमार्फी (**Ectomorphy**)

(क) एन्डोमार्फी– शेल्डन के अनुसार इस प्रकार के व्यक्ति की निम्न विषेषतायें होती है–

★ शरीर में चिकनाई

★ शरीर का गोलाकार होना

★ स्थूलकाय

★ पेट का आगे की तरफ निकला हुआ होना

★ भोजन प्रेमी

★ आरामपसन्द

★ मिलनसार

(ख) मेसोमार्फी– मेसोमार्फी रचना वाले मनुष्य में निम्न विषेषतायें होती है–

★ माँसपेषियों तथा हड्डियों की प्रधानता

★ संयोजक ऊतकों की प्रधानता

★ साहसी

★ उर्जावान

★ दृढ़निष्चयी

(ग) एक्टोमार्फी– एक्टोमार्फी रचना वाले व्यक्ति की प्रमुख विषेषतायें निम्नानुसार है–

★ दुबला–पतला शरीर
★ शारीरिक कोमलता
★ मष्तिष्क का बड़ा होना
★ कलाप्रेमी
★ भयग्रस्त
★ अंतर्मुखी प्रवृत्ति
★ नियंत्रित स्वभाव वाले

★ प्रमष्तिष्कीय प्रधानता

प्रिय पाठको, इस प्रकार आपने जाना कि शेल्डन ने शरीर गठन की संरचना के आधार पर व्यक्तित्व के तीन भेद किये।

अब हम अध्ययन करते हैं, मानव स्वभाव के संबंध में शेल्डन के विचारों का। शरीर गठन के समान ही शेल्डन ने मानव स्वभाव को भी तीन श्रेणियों में विभक्त किया है, जिनका विवेचन निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है–

(अ) विसेरोटोनिया (visecrotonia)

(ब) सोमैटोटोनिया (Somatotonia

(स) सेरेब्रोटोनिया (cerebrotonia)

(अ) विसेरोटोनिया (visecrotonia)– इस प्रकार के व्यक्तियों के स्वभाव में निम्न विषेषतायें पायी जाती हैं–

★आराम तलब होना
★भोजन में रूचि
★समाजप्रियता
★सहिष्णुता
★कल्याणकारी स्वभाव

(ब) सोमैटोटोनिया (somatotonia)– शेल्डन के अनुसार इस प्रकार के स्वभाव वाले व्यक्तियों में निम्न विषेषतायें होती हैं–

★खतरा या जोखिम उठाने की प्रवृत्ति
★ओजस्वी
★महत्त्वकांक्षी
★निर्दयी
★प्रभुत्व एवं बलप्रधान

(स) सेरेब्रोटोनिया (Cerebrotonia)–

★समाज से दूर रहने वाले
★विचारषील
★कम सोने वाले
★विचारषील प्रवृत्ति वाले

(C) शारीरिक संरचना का व्यवहार के साथ संबंध–

प्रिय पाठको, जैसा कि आप समझ गये होंगे कि शेल्डन ने शरीर की संरचना के आधार पर तीन भेद किये हैं तथा मानव स्वभाव को भी तीन ही भागों में वर्गीकृत किया है।शेल्डन का मत है कि शरीर गठन का व्यवहार के साथ घनिष्ठ संबंध है अर्थात्– किसी भी मनुष्य के

स्वभाव, आदतों, व्यवहार, दृष्टिकोण इत्यादि का निर्धारण उसकी शारीरिक संरचना एवं क्रियाविधि के आधार पर होता है। जैसी उसकी शरीर की बनावट होती है, उसी के अनुसार उसका स्वभाव होता है अथवा जैसा किसी प्राणी का स्वभाव होता है, उसी के अनुसार उसका शारीरिक गठन होता है।

पाठको, अपने इस मत की पुष्टि के लिये शेल्डन ने 200 प्रौढ़ पुरूषों पर एक अध्ययन किया। इस अध्ययन से यह तथ्य सामने आया कि इन्डोमार्फी का घनिष्ठ संबंध विसेरोटानियों से, मैसोमार्फी का संबंध सोमैटोटोनियों से तथा एक्टोमार्फी का घनिष्ठ संबंध सेरेब्रोटोनिया से है। कहने का अभिप्राय यह है कि शरीर गठन एवं स्वभाव दोनों परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है एवं एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं।

अतः इस सिद्धांत के आधार पर शरीर गठन के आधार में मानव स्वभाव के संबंध में तथा मानव स्वभाव के आधार पर शरीर गठन के संबंध में भविष्यवाणी की जा सकती है।

प्रिय पाठको, शारीरिक संरचना एवं स्वभाव के पारस्परिक संबंधों को निम्न प्रकार से भी स्पष्ट किया जा सकता है।

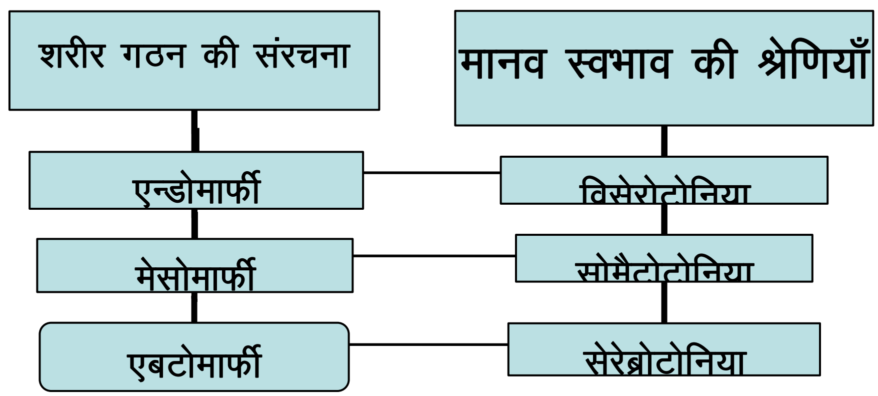

प्रिय पाठको, जैसा कि आप जानते है, चाहे किसी भी सिद्धान्त को प्रतिपादित किया जाये, कोई भी सिद्धान्त अपने आप में पूर्ण नहीं होता है। उसमें कोई न कोई कमियाँ रह ही जाती है, किन्तू इन खामियों के साथ–साथ उसके अपने कुछ गुण एवं उपयोगिता भी होती है, जिसका पता तब लगता है जब निस्पक्ष होकर उस सिद्धान्त का मूल्याांकन किया जाता है।

4.3.3 शेल्डन के व्यक्तित्व सिद्धान्त का मूल्यांकन–

शेल्डन के सिद्धान्त की उपयोगिता या गुण– शेल्डन के व्यक्तित्व सिद्धान्त के प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं–

(i) व्यक्तित्व का जैविक आधार ज्ञात होना– शेल्डन के सिद्धान्त से व्यक्तित्व के जैविक आधारों को जानने–समझने में मदद मिलती है। किस प्रकार से शरीर की संरचना

एवं उसकी कार्यप्रणाली मनुष्य की व्यवहार को प्रभावित करती है, इसका अत्यधिक तर्कसंगत विवेचन शेल्डन द्वारा किया गया है।

(ii) शरीर गठन द्वारा स्वभाव के संबंध में पूर्वकथन करना– शेल्डन के संघटक सिद्धान्त के आधार पर ही यह संभव हो सकता कि शरीर गठन के आधार पर व्यवहार के संबंध में, व्यवहार के आधार पर शरीर गठन के संबंध भविष्यवाणी करना संभव हो सका।

शेल्डन के सिद्धान्त की सीमाएँ–

शेल्डन के सिद्धान्त की कतिपय आधारों पर आलोचना भी की गई है। इन आलोचनाओं के आधार निम्न है–

(i) निष्चयात्मक साक्ष्य नहीं– शेल्डन के सिद्धान्त की सर्वप्रथम आलोचना तो इस आधार पर की जाती है कि शेल्डन ने मानव स्वभाव एवं शरीर गठन में जो संबंध बताया है, उस संबंध की पृष्टि के लिये कोई पुख्ता प्रमाण उनके पास उपलब्ध नहीं हैं। अतः निश्चयात्मक साक्ष्यों के अभाव में कुछ विद्वानों ने इस सिद्धान्त की आलोचना की है।

(ii) अनुसंधान केवल पुरूषों के साथ किया गया– शेल्डन के सिद्धान्त की आलोचना का दूसरा प्रमुख आधार यह है कि इन्होंने अपने सिद्धान्त के संबंध में जो भी प्रयोग–अनुसंधान किये, वे केवल पुरूषों पर ही किये गये, स्त्रियों पर नहीं। अध्ययन की समग्रता की दृष्टि से आवष्यक होता है कि अनुसंधान में स्त्री एवं पुरूष दोनों को ही सम्मिलित किया जाना चाहिये, जिससे कि अध्ययन परिणामों का सामान्यीकरण किया जा सके। इसके अभाव में अध्ययन अपूर्ण एवं एकांगी रहता है। इसलिये आलोचकों ने शेल्डन के सिद्धान्त की इस आधार पर भी आलोचना की है, क्योंकि हमारा उद्‌देष्य केवल पुरूषों के व्यक्तित्व का अध्ययन करना ही नहीं, वरन् स्त्री–पुरूष दोनों के व्यक्तित्वों का अध्ययन करना है।

(iii) अवैज्ञानिक सिद्धान्त– पर्याप्त प्रमाण एवं निष्चयात्मक साक्ष्य न होने के कारण आलोचकों ने शेल्डन के सिद्धान्त को अवैज्ञानिक माना है।

तो प्रिय पाठको, उपर्युक्त विवेचन से आप समझ ही गये होंगे की शेल्डन के व्यक्तित्व के संघटक सिद्धान्त में कुछ गुण भी है और कुछ दोष भी, तथापि काय मनोविज्ञान तथा व्यक्तित्व मनोविज्ञान के क्षेत्र में उनके सिद्धान्त के महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता।

4.3.4 क्रेत्स्मर के अनुसार व्यक्तित्व विवेचन–

प्रिय पाठको, जैसा कि आप अब तक जान ही चुके हैं कि शेल्डन के समान ही क्रेत्स्मर ने भी शरीर की संरचना का मानव स्वभाव से संबंध माना है। क्रेत्स्मर के अनुसार

हमारे व्यक्तित्व के निर्माण एवं विकास में हमारी शारीरिक संरचना का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। अर्थात्– शारीरिक गठन व्यक्तित्व का एक महत्त्वपूर्ण निर्धारक हैं।

शेल्डन के ही समान क्रेत्स्मर ने भी शरीर गठन के कुछ भेद बताये हैं जो निम्नानुसार हैं–

(i) दौर्वल्य काय प्रकार (Asthenic physiquetype)

(ii) सुडौल काय प्रकार (Athletic physique type)

(iii) गोलाकाय प्रकार (pyknque physique type)

(iv) कुगठित काय प्रकार (Dysplastic physiquetype)

(i) दौर्वल्य काय प्रकार– क्रेत्स्मर के अनुसार इस प्रकार के गठन वाले व्यक्ति की निम्न विषेषतायें होती हैं–

★शरीर का छरहरा होना

★वजन औसत से कम होना

(ii) सुडौल काय प्रकार– इस प्रकार की रचना वाले व्यक्ति की प्रमुख विषेषतायें निम्न होती हैं–

★पर्याप्त माँसपेषी युक्त शारीरिक गठन

(iii) गोलाकाय प्रकार – इनकी प्रमुख विषेषतायें निम्न प्रकार हैं–

★चर्बीयुक्त शरीर

★गोलमटोल शरीर

(iv) कुगठित काय प्रकार – क्रेत्स्मर के अनुसार कुगठित काय प्रकार वाले व्यक्ति की प्रमुख विषेषता निम्नलिखित है–

★कुरूप शारीरिक गठन

प्रिय विद्यार्थियों, इस प्रकार आपने जाना के शरीर की संररचना के आधार पर क्रेत्स्मर ने चार प्रकार के व्यक्तित्व बतलाये। इनमें से प्रत्येक श्रेणी का मनुष्य अपनी शारीरिक संरचना के अनुसा ही व्यवहार करता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न–

पाठको, नीचे कुछ कथन दिये गये है। जो कथन सत्य हो उसके आगे दिये गये कोष्ठक में सही का (√) तथा जो गलत हो, उसके सामने वाले कोष्ठक में (x) का निषान लगायें–

(1) शेल्डन ने व्यक्तित्व के संघटक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। ()
(2) क्रेत्स्मर ने शरीर गठन के चार प्रकारों का प्रतिपादन किया। ()
(3) शेल्डन ने शरीर गठन के चार प्रकारों का उल्लेख किया है। ()
(4) शेल्डन के अनुसार एक्टोमार्फी काय वाले व्यक्ति में प्रमस्तिष्कीय प्रधानता होती है।()
(5) शेल्डन के अनुसा एन्डोमार्फी काय वाले व्यक्ति का शरीर दुबला–पतला होता है। ()
(6) मेसोमार्फी काय वाले व्यक्ति साहसी एवं निष्चयात्मक होता है। ()
(7) एक्टोमार्फी काय वाले व्यक्ति साहसी एवं उर्जायुक्त होते हैं। ()
(8) एन्डोमार्फी काय वाले व्यक्ति कलाप्रेमी होते हैं। ()
(9) एन्डोमार्फी काय वाले व्यक्ति भोजन प्रेमी तथा मिलनसार होते हैं। ()
(10) दौर्वल्य काय प्रकार वाले व्यक्ति मोटे होते हैं। ()
(11) कुगठित काय प्रकार में शरीर का गठन सुडौल होता है। ()
(12) शेल्डन के अनुसार सेरेब्रोटोनिया स्वभाव के लोग विचारशील होते हैं।()
(13) विसेरोटोनिया स्वभाव के लोग महत्वाकांक्षी एवं निर्दयी होते हैं। ()
(14) सोमैटोटोनिया स्वभाव के लोगों में खतरा मोल लेने की प्रवृति होती है।()
(15) शेल्डन के अनुसार सरेब्रोटोनिया का संबंध एक्टोमार्फी से है। ()
(16) शेल्डन के अनुसार सरैब्रटोनिया कस संबंध एन्डोमार्फी से है।()
(17) शेल्डन के अनुसार सेरेब्रोटोनिया का संबंध मेसोमार्फी से है। ()
(18) शेल्डन के अनुसार विसेरोटोनिया का संबंध एन्डोमार्फी से है।()
(19) शेल्डन के अनुसार बिसेरोटोनिया का संबंध एक्टोमार्फी से है।()
(20) शेल्डन के अनुसार विसेरोटोनिया का संबंध मेसोमार्फी से है। ()

4.4 सारांश–

तो प्रिय पाठको, इस प्रकार स्पष्ट है कि शेल्डन एवं क्रेत्स्मर दोनों के ही अनुसार मानवीय व्यक्तित्व का आधार जैविक है। शरीर संरचना, कार्यप्रणाली, हार्मोन्स इत्यादि की मानवीय व्यवहार, स्वभाव एवं आदतों के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है अथवा यूँ भी कहा जा सकता है कि एक व्यक्ति की जैसी प्रकृति अर्थात्– स्वभाव होता है, वैसा ही उसका शारीरिक गठन होता है। इसलिये प्रिय विद्यार्थियों, प्रायः आपने यह कहते हुये भी सुना होता कि चेहरा व्यक्तित्व का आइना होता है अर्थात्– किसी व्यक्ति के चेहरे के हाव–भाव को देखकर उसके स्वभाव को बहुत कुछहद तक जाना–समझा जा सकता ळें इस प्रकार क्रेत्स्मर एवं शेल्डन का व्यक्तित्व सिद्धान्त मानव स्वभाव एवं शारीरिक गठन दोनों में घनिष्ठ संबंध को स्वीकार करता है।

4.6 परिभाषिक शब्दावली–

काय – शरीर
स्थूलकाय – चर्बीयुक्त शरीर होना।
पारस्परिक – एक–दूसरे से संबंधित।
गठन – निर्माण, संरचना।
अंतर्मुखी – अपने आप में विचारमग्न रहने वाले। जिनमें बाहरी मेलजोल तथा सामाजिक सम्पर्क की प्रकृति कम होती है।
उतक – कोषिकाओं का समूह।
मनोविज्ञान – मानसिक प्रक्रियाओं तथा प्राणी के व्यवहार का अध्ययन करने वाला विज्ञान
साक्ष्य – प्रमाण
सुडौल – सुन्दर शरीर।
कुगठित – कुरूप संरचना।

4.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर–

(1) सत्य (2) सत्य (3) असत्य (4) सत्य (5) असत्य (6) सत्य (7)असत्य

(8) असत्य (9) सत्य (10) असत्य (11) असत्य (12) सत्य (13) असत्य (14) सत्य

(15) सत्य (16) असत्य (17) असत्य (18) सत्य (19) असत्य (20) असत्य

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

★ सिंह, अरूण कुमार, उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान। मोतीलाला बनारसीदास, बंगलोरोड, जवाहर नगर, दिल्ली।

★ सिंह, अरूण कुमार। व्यक्तित्व मनोविज्ञान। मोतीलाला बनारसीदास, बंगलोरोड, दिल्ली।

4.9 निबंधात्मक प्रश्न–

प्रष्न–5 क्रेत्स्मर एवं शेल्डन के व्यक्तित्व सिद्धान्त का वर्णन कीजिए।

इकाई–5 एब्राहम मैस्लोः व्यक्तित्व का मानवतावादी सिद्धान्त

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 मैस्लो का व्यक्तित्व का मानवतावादी सिद्धान्त

5.3.1–व्यक्तित्व एवं अभिप्रेरण का पदानुक्रमिक मॉडल

5.3.2– स्वस्थ व्यक्तित्व : आत्मसिद्ध व्यक्ति का विकास

5.3.3– व्यक्तित्व का मापन एवं शोध

5.4 मैस्लो के सिद्धान्त का मूल्यांकन

5.5 सारांश

5.6 शब्दावली

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.9 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना –

प्रिय पाठको, इससे पूर्व की ईकाई में आपने क्रेत्स्मर तथा शेल्डन के व्यक्तित्व सिद्धान्त के बारे में अध्ययन किया। प्रस्तुत ईकाई में हमारे अध्ययन का विषय है– एब्राहम मैस्लो का व्यक्तित्व सिद्धान्त। मैस्लों का व्यक्तित्व सिद्धान्त मानवतावादी आन्दोलन से प्रेरित है, जिसमें मानवीय व्यक्तित्व के विकास में बाह्य कारकों की तुलना में व्यक्तिगत मूल्यों, आत्मनिर्देश तथा व्यक्तिगत वर्धन इत्यादि मानवीय एवं आन्तरिक कारकों पर अधिक बल दिया गया है। मैस्लों द्वारा व्यक्तित्व विकास में आन्तरिक कारकों पर अत्यधिक बल दिये जाने के कारण ही उसके सिद्धान्त को " व्यक्तित्व का सम्पूर्ण गत्यात्म सिद्धान्त" भी कहा जाता है। प्रिय पाठको, मैस्लो के व्यक्तित्व सिद्धान्त को भली–भाँति समझने के लिये जैविक एवं सामाजिक अभिप्रेरकों को जानना–समझना भी अत्यावश्यक है। तो आईये, जाने कि मैस्लो का व्यक्तित्व का मानवतावादी सिद्धान्त क्या है? इसकी सीमायें एवं गुण क्या–क्या है।

5.2 उद्देश्य–

प्रिय विधार्थियों, प्रस्तुत ईकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप

- मैस्लो के व्यक्तित्व के मानवतावादी सिद्धान्त का अध्ययन कर सकेंगे।
- प्राणी की कौन–कौन सी आवष्यकतायें होती है, इनका ज्ञान प्राप्त कर सकेंगें
- व्यक्तित्व का विकास किस प्रकार से होता है, इसे स्पष्ट कर सकेंगे।
- स्वस्थ व्यक्तित्व की क्या–क्या विषेषतायें होती है, इसका अध्ययन कर सकेंगे।
- व्यक्तित्व का मापन किस प्रकार से किया जाता है, इसकी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- हम अपने व्यक्तित्व को किस प्रकार से विकसित कर सकते है, इसका अध्ययन कर सकेंगे।

5.3 मैस्लो का व्यक्तित्व का मानवतावादी सिद्धान्त

एब्राहम मैस्लो (1908–1970) के व्यक्तित्व सिद्धान्त को मानवतावादी सिद्धान्त या व्यक्तित्व का सम्पूर्ण गत्यात्मक सिद्धान्त कहा जाता है। मानवतावादी मनोविज्ञान के आध्यात्मिक जनक माने जाने वाले मैस्लो का व्यक्तित्व के प्रति मानवतावादी दृष्टिकोण था जो मानवतावादी आन्दोलन से प्रेरित था। 1960 वाले दशक में आरंभ होने वाले इस आन्दोलन में व्यवहारवाद एवं मनोविश्लेषणवाद दोने ही विचारधाराओं की आलोचना की गई। इस

आलोचना का आधार यह था कि इन दोनों ही विचारधाराओं ने व्यक्तित्व का संकीर्ण एवं सीमित दृष्टिकोण से अध्ययन किया है जबकि व्यक्तित्व के द्वारा हमें किसी प्राणी की प्रायः एक सम्पूर्ण झलक मिलती है। अतः इसका अध्ययन संकीर्ण नहीं वरन व्यापक दृष्टिकोण से किया जाना चाहिये।

मैस्लो का मत है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व पर बाह्य कारकों जैसे कि पूर्व की अनुभूतियों, वातावरण, आनुवांशिकता की तुलना में आन्तरिक कारको जैसे कि उसके व्यक्तिगत मूल्य, आत्मनिर्देश इत्यादि का अधिक प्रभाव पड़ता है। एक प्राणी के व्यक्तित्व का विकास आन्तरिक रूप से संगठित ढंग से होता है। इस प्रकार मैस्लों ने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाते हुये आन्तरिक कारकों पर अधिक जोर दिया है।

मैस्लो के व्यक्तित्व सिद्धान्त का विवेचन निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है।

अ. व्यक्तित्व एवं अभिप्रेरण का पदानुक्रमिक मॉडल
(Parsonality and thirarchical model of motivation)

ब. स्वस्थ व्यक्तित्व आत्मसिद्ध व्यक्ति का विकास
(Healthy personality, Development of self actualizing person)

स. व्यक्तित्व का मापन एंव शोध
(Assessment and Pesearch in personality)

5.3.1 व्यक्तित्व एवं अभिप्रेरण का पदानुक्रमिक मॉडल– मैस्लो के व्यक्तित्व सिद्धान्त का आधार उनका अभिप्रेरण सिद्धान्त है। मैस्लो की मान्यता है कि कोई भी प्राणी अधिकांशतः किसी न किसी व्यक्तिगत लक्ष्य से प्रेरित होकर ही कोई भी व्यवहार करता है अर्थात् प्राणी का व्यवहार व्यक्तिगत लक्ष्य को प्राप्त करने की प्रवृति से अभिप्रेरित होता है।

मैस्लो के अनुसार अभिप्रेरक जैविक भी होते है तथा मनोवैज्ञानिक या सामाजिक भी, जो जन्म से ही मानव में विद्यमान होते है। इन अभिप्रेरकों को प्राथमिक्ता के आधार पर आरोही क्रम में निम्न प्रकार से सुव्यवस्थित किया जा सकता है–

(1) शारीरिक या दैहित आवश्यकता (Phyhualigical needs)

(2) सुरक्षा की आवश्यकता (Safety needs)**निचले स्तर की आवष्यकता**

(3) संवद्धता एवं स्नेह की आवश्यकता (Belongingmens and love needs)

(4) सम्मान की आवश्यकता (Esteem needs)

(5) आत्मसिद्धि की आवश्यकता (Self-actualization needs) **उच्चस्तरीय आवष्यकता**

उपर्युक्त आवश्यकताओं में प्रथम दो आवश्यकताओं दैहिक एवं सुरक्षा की आवश्यकता को निचले स्तर की आवश्यकता तथा अंतिम तीन आवश्यकताओं संबद्धता तथा स्नेह, सम्मान एवं आत्मसिद्धि की आवश्यकता को उच्चस्तरीय आवश्यकता कहा गया है। मैस्लो के अनुसार इस पदानुक्रमिक मॉडल में जो आवश्यकता जितनी नीचे है उसकी प्राथमिकता उतनी ही ज्यादा है अर्थात् सबसे पहले उस आवश्यकता की पूर्ति होना सर्वाधिक जरूरी है।

मैस्लो की मान्यता है कि किसी भी स्तर की आवश्यकता जब ही उत्पन्न होती है, जब उससे निचले स्तर की आवश्यकता की पूर्ति पूरी तरह नहीं तो कम से कम आंशिक तौर पर ही हो जाये। जब तक निचले स्तर की आवश्यकता पूरी नहीं होती तब तक उससे ऊपर वाली आवश्यकता के उत्पन्न होने का प्रश्न ही नहीं उठता। जो व्यक्ति भूख–प्यास से तड़प रहा होता है उसे सबसे पहले भोजन और पानी की आवश्यकता होती है न कि सुरक्षा एवं स्नेह की। मैस्लो का यह भी मानना है कि आवश्यकताओं के पदानुक्रमिक मॉडल में जैसे–जैसे व्यक्ति नीचे से ऊपर की ओर बढ़ता जाता है वैसे–वैसे उसकी आवश्यकताओं की संतुष्टि का प्रतिशत भी धीरे–धीरे कम होता जाता है। जैसे शारीरिक आवश्यकताओं की संतुष्टि लगभग 85 प्रतिशत, सुरक्षा की संतुष्टि 70 प्रतिशत, संबद्धता एवं स्नेह की आवश्यकता की पूर्ति 50 प्रतिशत, सम्मान की आवश्यक्ता की पूर्ति 40 प्रतिशत तथा आत्म सिद्धि की आवश्यकता की पूर्ति लगभग 10 प्रतिशत तक ही हो पाती है।

मैस्लो को पदानुक्रमिक मॉडल

उच्चस्त्तरीय आवश्यकता (Need for self Actualization)

आत्म सिद्धि की आवश्यकता (Esteem needs From self and othesr)

सम्मान की आवश्यकता (Belonging and love needs)

संबद्धता एवं स्नेह की आवश्यकता

निचले स्तर की आवश्यकता(Safety needs- securutg order and stability)

सुरक्षा की आवश्यकता (Physiolagical needs- Food, water, sex, sleep etc.)

शारीरिक आवश्यकता

आवश्यकताओं के पदानुक्रमि मॉडल का वर्णन निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है–

1. **दैहिक या शारीरिक आवश्यकता– (Physialogical needs)–** मैस्लो के अनुसार यह प्राणी निचले स्तर की तथा सर्वप्रथम आवश्यकता है। किसी भी प्राणी के जीवित रहने के लिये आवश्यकता है कि सबसे पहले उसकी दैहित आवश्यकताओं की पूर्ति या संतुष्टि हो। दैहिक आवश्यकताओं में निम्नलिखित आवश्यकताये आती हैं। जैसे कि–

   a भोजन करने की आवश्यकता

   b पानी पीने की आवश्यकता

   c सोने की आवश्यकता

   d यौनसंबंधो की आवश्यकता इत्यादि।

मैस्लो का मानना है कि जब तक किसी मनुष्य की उपर्युक्त शारीरिक आवश्यकतायें पूरी नहीं होती है, तब तक वह अन्य आवष्यक्ताओं जैसे कि सुरक्षा, सम्मान, स्नेह पाने या देने की अभिप्रेरित ही नहीं होता है। अतः सर्वप्रथम प्राणी के स्वस्थ व्यक्तित्व के विकास के लिय आवश्यक है कि उसकी भूख, प्यास, नींद, यौन इत्यादि दैहित आवश्यकताओं की पूर्ति पूर्णतः नहीं तो कम से कम आंशिक रूप से ही हो जाये। जैविक अभिप्रेरक इतना अधिक प्रबल होता है कि इसकी संतुष्टि करने के लिये व्यक्ति सामाजिक मूल्यों (Social Values) और सामाजिक मानकों की भी कभी–कभी अवहेलना करने से पीछे नहीं हटता है।" **(बेटेलहिम, 1943)**

2. **<u>सुरक्षा की आवश्यकता</u> – (Safety or security needs)–** मैस्लो द्वारा प्रतिपादिक पदानुक्रमिक मॉडल में दूसरे स्तर की आवष्यक्ता सुरक्षा की आवष्यक्ता है। जब व्यक्ति की शारीरिक आवश्यकताओं की संतुष्टि हो जाती है तो वह अपने आप को सुरक्षित करने की आवश्यकता महसूस करने लगता है। इसमें मैस्लो ने निम्नांकित आवश्यकताओं को शामिल किया है। जैसे कि–

a डर, चिन्ता इत्यादि से मुक्ति

b शारीरिक सुरक्षा

c निर्भरता

d बचाव

e नियम कानून बनाये रखने की आवश्यकता इत्यादि

मैस्लो के अनुसार वयस्कों की तुलना में बच्चे अपने आपको सुरक्षित करने की जरूरत अधिक महसूस करते हैं, बच्वें कि वे छोटे होने के कारण स्वयं को दूसरों की तुलना में अधिक निःसहाय एवं पराक्षित मानते है।

" सुरक्षा की आवश्यकता कुछ खास तरह के तंत्रिकातापी व्यक्ति (Neuratic individual) जैसे मनोग्रस्ति बाध्यता (Olusessive compulsive) के रोगियों में अधिक सुस्पष्ट होता है। ऐसे लोग इर्द–गिर्द के हालातों को खौफनाक एवं खतरनाक समझकर अपने में सुरक्षा की आवश्यकता पर अधिक जोर डालते हैं तथा अधिक समय एवं शारीरिक ऊर्जा की खपत करते हैं और यदि सके बावजूद भी इन्हें अपने प्रयास में सफलता नहीं मिलती है, तो उनमें एक विषेश तरह की चिन्ता (Annciety) जिसे मैस्लो ने मूल चिन्ता कहा है, की उत्पत्ति होती है।" **एब्राहम मैस्लो, 1970**

3. **सम्बद्धता एवं स्नेह की आवश्यकता–** मैस्लो के अनुसार तृतीय स्तर की यह आवश्यकता तब उत्पन्न होती है जब व्यक्ति शारीरिक एवं सूरक्ष की दृष्टि से अपने आप को संतुष्ट पाता है।

<u>सम्बद्धता की आवश्यकता</u> – मैस्लो के मतानुसार सम्बद्धता का आशय है– परिवार या समाज में एक प्रतिष्ठित स्थान पाने की इच्छा, किसी संदर्भ समूह की की सदस्यता प्राप्त करने की इच्छा, अपने पड़ौसी से मधुर संबंध बनाये रखने की इच्छा इत्यादि।

स्नेह की आवश्यकता – स्नेह की आवश्यकता एवं दूसरों से स्नेह पाना दोनों ही शामिल है। संबंद्धता एवं स्नेह की आवश्यकता दोनों एक दूसरे में घनिष्ट रूप से सम्बद्ध है। अतः मैस्लो ने इसे एक ही वर्ग में रखा है।

"स्नेह की आवश्यकता की संतुष्टि नहीं होने से व्यक्ति में कुसमायोजन होता है।**मैस्लो, 1968**

"स्नेह पाने की भूख एक तरह का अपर्याप्तता रोग है।" **मैस्लो, Toward a phychalagy of being, 1968, पृ.सं. 42**

4. **सम्मान की आवश्यकता (Esteem needs)** मैस्लो के अनुसार चौथे स्तर की आवश्यकता सम्मान की आवश्यकता है। इसमें निम्न दो तरह की आवश्यकताये आती हैं–

क– आत्मसम्मान की आवश्यकता

ख– दूसरों से सम्मान प्राप्त करने की आवश्यकता

क– आत्मसम्मान की आवश्यकता – इसमें उत्तम सामर्थ्य प्राप्त करने की इच्छा, स्वतंत्रता, उपलब्धि, उपयुक्तता, व्यक्तिगत वर्धन, आत्मविश्वास इत्यादि की भावना को शामिल किया गया है।

ख– दूसरों से सम्मान पाने की आवश्यकता – इससे दूसरों से सम्मान, प्रशंसा, पहचान, दूसरों का ध्यान अपनी ओर खींचने की इच्छा, दूसरों की स्वीकृति पाने की इच्छा इत्यादि को सम्मिलित किया गया है।

मैस्लो के मतानुसार आत्मसम्मान की भावना के कारण व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास होता है तथा उसमें आत्मविष्वास, श्रेष्ठता, पर्याप्तता, शक्ति इत्यादि गुणों का विकास होता है। इसके परिणामस्वरूप वह व्यक्ति स्वयं को अधिक प्रतिभाशाली, योग्य एवं उत्पादक मानने लगता है। वह कार्य करने के लिये अभिप्रेरित होता है तथा स्वयं के बारे में उसकी एक सकारात्मक छवि बनती है, किन्तु जब उसके आत्म–सम्मान की पूर्ति नही होती है तो वह आत्महीनता से ग्रस्त होकर स्वयं को लाचार, असहाय तथा दूसरों पर निर्भर मानने लगता है और उसका व्यक्तित्व विकास अवरूद्ध होने लगता है।

" सही अर्थ में आत्म–सम्मान व्यक्ति की योग्यताओं एवं क्षमताओं के वास्तविक मूल्यांकन (Realistic evaluation) पर तथा साथ ही साथ दूसरों से प्राप्त वास्तविक सम्मान पर आधारित होता है। यह आवष्यक है कि व्यक्ति को दूसरों से मिलने वाला मान–सम्मान अवास्तविक या छिछला न होकर उसकी अर्जित योग्यताओं एवं क्षमताओं पर आधारित हो।" **एब्राहम मैस्लो।**

(v) आत्म–सिद्धि की आवश्यकता (Self- actualization need)– मैस्लो के आवश्यकताओं के पदानुक्रमिक मॉडल में यह सबसे ऊँचे स्तर की तथा सबसे अंतिम आवश्यकता है। जब व्यक्ति क्रमशः अपनी शारीरिक आवश्यकता, सुरक्षा की आवश्यकता, सम्बद्धता एवं स्नेह की आवश्यकता तथा सम्मान की आवश्यकता की पूर्ति कर लेता है तो आत्म सिद्धि की आवश्यकता अनुभव होती है।

प्रिय पाठकों आप सोच रहे होंगे कि इस आत्मसिद्धि की आवश्यकता से क्या तात्पर्य है?

"आत्मसिद्धि से तात्पर्य आत्म उन्नति (Self- improvement) की एक ऐसी अवस्था से होता है, जहाँ व्यक्ति अपनी योग्यताओं एवं अन्तः क्षमताओं (Potentialities) से पूर्णरूपेण अवगत होता है तथा उसके अनुरूप अपने आप को विकसित करने की इच्छा करता है। संक्षेप में आत्मसिद्धि से तात्पर्य अपनी अन्तः क्षमताओं के अनुरूप अपने आपको विकसित करना होता है।" **(एब्राहम मैस्लो, 1968)**

मैस्लो के अनुसार आत्मसिद्धि की आवश्यकता की अवस्था अन्य आवश्यकताओं की अवस्था की तुलना में थोड़ी अलग है। अन्तः आवश्यकताओं की अवस्थाओं में तो व्यक्ति उससे क्रमशः निचले स्तर की आवश्यकता की पूर्ति होने पर स्वतः ही अगली आवश्यकता की पूर्ति की स्थिति में पहुँच जाता है, किन्तु आत्मसिद्धि की आवश्यकता की अवस्था में ऐसा नहीं होता है। कहने का आशय यह है कि यदि किसी व्यक्ति द्वारा सम्मान की आवश्यकता की पूर्ति हो जाती है, तब भी इस बात की गारंटी नहीं है कि वह आत्मसिद्धि की आवश्यकता की अवस्था में पहुँच ही जाये, क्योंकि इस अवस्था में पहुँचने के लिये व्यक्ति में सम्मान की आवश्यकता की पूर्ति होने के साथ–साथ ही मूल्यों की पूर्ति होना भी आवश्यक है। मैस्लो ने कुछ अन्य कारण भी बतलाये है जिनके कारण व्यक्ति आत्मसिद्धि की आवष्यक्ता की अवस्था तक नहीं पहुँच पाता है। इस कारकों का विवेचन निम्नानुसार है–

अ. जिस व्यक्ति में पर्याप्त अनुषासन, आत्मनियंत्रण, प्रयास एवं साहस का अभाव होता है, मैस्लो के अनुसार वह व्यक्ति इस अवस्था में नहीं पहुँच सकता।

ब. जिन व्यक्तियों को बचपन में अत्याधिक तिरस्कार एवं नियंत्रण अथवा अत्याधिक प्यार एवं स्वतंत्रता दी जाती है, वे भी इस अवस्था तक नहीं पहुँच पाते है।

स. ऐसे व्यक्ति जिनमें अपने आन्तरिक शक्तियों को विकसित करने पर एक ऐसी स्थिति उत्पन्न होने की संभावना या आशंका हो जाती है, जिसका समाधान करना उनके वश में नहीं होता है, तो ऐसी व्यक्ति भी आत्मसिद्धि की आवश्यकता की अवस्था तक नहीं पहुँच पाते हैं। मैस्लो ने इसे **जोनाहमनोग्रन्थि (Jonath Comlese)** की संज्ञा दी है।

द. मैस्लो का यह भी मत है कि आत्मसिद्धि की आवश्यकता, अन्य आवश्यकताओं की तुलना में कम प्रबल है। अतः अन्य आवश्यकताओं से यह दब जाती है। इस कारण इस आवश्यकता को पूरा करने के लिये पर्याप्त अभिप्रयोग व्यक्ति में विद्यमान नहीं रह पाता है।

इस प्रकार मैस्लो का मानना है कि उपर्युक्त कारणों से सभी व्यक्ति आत्मसिद्धि की आवश्यकता की अवस्था तक नहीं पहुँच पाते हैं।

यद्यपि मैस्लो ने अपने पदनुक्रमिक मॉडल में मनुष्य की पाँच प्रकार की आवश्यकताओं का उल्लेख किया है तथा उन्हें मूल आवश्यकता (Basic need) बताते हुये स्वस्थ व्यक्तित्व के विकास हेतु अत्यधिक आवश्यक माना है, किन्तु इसके साथ ही मैस्लों ने मनुश्य की कुछ अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति को भी महत्वपूर्ण माना है, जो उसके व्यवहार को प्रभावित करती हैं। ये आवश्यकतायें निम्न है–

a संज्ञानात्मक आवश्यकता।(Cagnitive needs)

b तंत्रिकातापी आवश्यकता। (Neuroti needs)

c न्यूनता अभिप्रेरक (Deficency or deficitmotivation)

d वर्धन अभिप्रेरक

a. संज्ञानात्मक आवश्यकता – संज्ञानात्मक आवश्यकताओं से मैस्लो का अभिप्राय सूचनात्मक आवश्यकताओं से है, जिसमें जानने एवं समझने दोनों प्रकार की आवश्यकताओं को शामिल किया गया है तथा समझने की तुलना में जानने की आवश्यकता को अधिक प्राथमिकता दी गई है।

b. तंत्रिकातापी आवश्यकता या स्नायु विकृत आवश्यकता – मैस्लो के अनुसार जब किसी व्यक्ति की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती है तो इसके कारण व्यक्ति में ऐसी आवश्यकतायें जन्म लेती है जो उसके व्यक्तित्व विकास को अवरूद्ध कर उसे निष्क्रिय एवं रोगग्रस्त बना देती है।

उदाहरण– जब व्यक्ति की सम्बद्धता एवं स्नेह का आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो पाती है तो उस व्यक्ति में आक्रमकता एवं विद्वेष की भावना उत्पन्न हो जाती है, जो उसके व्यक्तित्व का समुचित ढंग से विकास होने में बाधा उत्पन्न करती हैं।

c. न्यूनता अभिप्रेरक – न्यूनता अभिप्रेरक से मैस्लो का अभिप्राय उन अभिप्रेरकों से है जो न्यून या हीन अवस्थाओं जैसे कि भूख, प्यास, ठंड, असुरक्षा इत्यादि से उत्पन्न तनाव को दूर करते है। मैस्लो ने इन्हें " डी– अभिप्रेरक" की संज्ञा दी है।

d.वर्धन अभिप्रेरक– जो अभिप्रेरक व्यक्ति को अपनी आन्तरिक क्षमताओं एवं संभावनाओं को पहचानकर उन्हें विकसित करने के लिये प्रेरित करता है, उन्हें वर्धन अभिप्रेरक कहा गया है। मैस्लो ने इन्हें सत्य अभिप्रेरक (Being or B- motives) या मेटा आवश्यकता (Meta needs) भी कहा है। मैस्लो के अनुसार मेटा आवश्यकता में 18 प्रकार की आवश्यकताओं को शामिल किया गया है, जो निम्नानुसार है–

1. सच्चाई
2. अच्छाई
3. अद्वितीयता
4. पूर्णता

5. अनिवार्यता
6. सम्पूरण
7. न्याय
8. क्रम
9. सरलता
10. विस्तृतता
11. प्रयासशीलता
12. विनोदशीलता
13. आत्मपर्याप्तता
14. अर्थपूर्णता इत्यादि।

5.3.2– स्वस्थ व्यक्तित्वः आत्मसिद्ध व्यक्ति का विकास– (Healthy personality Development of self actualizing person)– मैस्लो के अनुसार आत्मसिद्ध व्यक्ति के व्यक्तित्व की कुछ खास विषेषतायें होती है, जिनका विवेचन निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है।

A. वास्तविक प्रत्यक्षण (Realistic perception)

B. सरलता, स्वाभाविकता, सहजता (Naturality)

C. समस्या केन्द्रित व्यवहार (Problem centered behaviour)

D.अनासक्ति की भावना (Detachment)

E.गोपनीयता (Privacy)

F. स्वतंत्रता (autonomy)

G. रचनात्मक्ता एवं मौलिकता (Creativity and orijinality)

H.अलौकि शक्ति एवं अनुभूतियाँ (peak experiences)

I. मानवीयता एवं सामाजिक अभिरूचि **(Humanism and social interest)**

J. कुछ विषेष महत्तवपूर्ण लोगों के साथ घनिष्ट संबंध

K. प्रजातांत्रिक मूल्य **(Demo cratic values)** एवं मनोवृत्ति (**Attitude**) में विष्वास रखने वाले।

L. साधन तथा साध्य में स्पष्ट अन्तर रखने वाले तथा पहल करने वाले।

M. वातावरण के साथ समायोजन तथा वातावरण की उत्कृष्टता को समझने का प्रयास करने वाले।

N. संस्कृति के प्रति अनुरूपता (**Conformity**) न दिखलाने वाले।

O. मनोविनोद में विद्वेष का भाव न होकर दार्षनिक भाव रखने वाले।

तो प्रिय पाठको, इस प्रकार आपने जाना कि जब कोई व्यक्ति आत्मसिद्धि की आवष्यक्ता की पूर्ति करता है तो मैस्लो के अनुसार उसमें उपर्युक्त गुणों का स्वतः ही विकास हो जाता है। मैस्लो के अनुसार आत्मसिद्धि की भावना को प्रोत्साहित करने के लिए विद्यालय सर्वोत्तम स्थान है।

5.3.3 व्यक्तित्व का मापन एवं शोध– Measurement and Research in Personality–
मैस्लो ने व्यक्तित्व को मापने के लिये किसी विशेष तकनीक या प्रविधि का प्रतिपादन तो नहीं किया किन्तु व्यक्तित्व के मापन में उन्होंने स्वतंत्र साध्चर्य, साक्षात्कार, प्रक्षेपण प्रविधियाँ (रोशार्क, TAT इत्यादि) तथा जीवन संबंधी सामग्तियों के उपयोग को महत्त्वपूर्ण माना।

एवरेट शोस्ट्रोम ने एक विशेष प्रश्नावली का निर्माण किया, जिसका उद्देश्य था "आत्मसिद्धि" व्यक्ति के व्यक्तित्व का मापन करना। इस प्रश्नावली में कथनों के कुछ 150 युग्म होते है। इन कथनों में व्यक्ति को यह बताने के लिये कहा जाता है कि उसके लिये युग्म का कौन सा वाक्य अधिक उपयुक्त है। इस प्रश्नावली का नाम (Personal ouiertation inventory) पर्सनल ऑरियन्टेशन इन्वेन्ट्री अर्थात् POI रखा गया।

POI में निम्न दो प्रकार की मापनी होती हैं–

अ. समय सामर्थ्यता मापनी (Time Competence Scale)

ब. आन्तरिक निर्देषन मापनी (innerdireetedness Scale)

अ. समय सामर्थ्यता मापनी– इस मापनी द्वारा यह मापा जाता है कि व्यक्ति की गतिविधियों एवं क्रियाकलाप किस सीमा तक अपने वर्तमान समय के अनुरूप होती हैं।

ब. आन्तरिक निर्देशन मापनी – इस तथ्य का मापन किया जाता है कि व्यक्ति महत्त्वपूर्ण निर्णयों एवं मूल्यों के विषय में दूसरों पर कितना निर्भर रहता है।

कुछ समय के बाद POI में कुछ संषोधन करके शोस्ट्रोम ने इसे और अधिक अच्छा स्वरूप प्रदान किया और इसका नाम बदलकर (Personal orientation dimension) पर्सनल ओरियन्टेशन डाइमेन्शन अर्थात् POD रखा गया। इसमें 240 एकांश (Items) रखे गये है। POI से इसका धनात्मक संबंध माना गया है। इसके बाद सन् **1986** में **जोन्स** एवं **क्रैण्डला** ने भी आत्मसिद्धि के मापन के लिये एक और परीक्षण का निर्माण किया, जिसमें 15 एकांष थे। **लोर एवं ऊण्डर्लिक** ने सन **1986** में ही **आत्म–मनोवृत्ति आविष्कारिका** का निर्माण किया, जिसके द्वारा **आत्मसम्मान** के **विश्वास** एवं **लोकप्रियता** नामक दो महत्त्वपूर्ण तत्वों का मापन किया जाता है।

मैस्लो ने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त के संबंध में कोई विशिष्ट शोधकार्य नहीं किया किन्तु, दूसरे मनोवैज्ञानिकों ने POI की सहायता से कुछ सहसंबंधात्मक शोधकार्य किये। इन शोधकार्यें में POI पर जो प्राप्तांक प्राप्त हुये उनका सहसंबंध व्यक्तित्व या व्यवहार के अन्य मापकों के साथ देखा गया।

जैसे कि **लीमे एवं डाल,1968** ने POI प्राप्तांक तथा सांवेगिक स्वास्थ्य के बीच धनात्मक सहसंबंध की पुष्टि की। **जाकारिया एवं विर, 1967** ने अपने अध्ययन के आधार पर मधपानता एवं POI प्राप्तांक के बीच नकारात्मक सहसंबंध होने की पुष्टि की।

इस प्रकार जिज्ञासु विद्यार्थियों, आपने जाना कि मैस्लो के व्यक्तित्व सिद्धान्त के कतिपय पहलुओं को लेकर मनोवैज्ञानिकों ने अनेक शोध कार्य किये।

5.4— मैस्लो के सिद्धान्त का मूल्यांकन —

प्रिय विद्यार्थियों, जैसा कि आप जानते है कोई भी सिद्धान्त अपने आप में पूर्ण नहीं होता है। उसके कुछ गुण एवं सीमायें दोनों ही होती है। अतः मैस्लो के व्यक्तित्व सिद्धान्त की भी कुछ प्रमुख देन एवं कमियाँ है, जिनका विवेचन निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर किया जा सकता है—

गुण— (i) मैस्लो का व्यक्तित्व सिद्धान्त मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों के अध्ययन पर आधारित है।

(ii) इस सिद्धान्त ने मानवीय व्यवहार को मानवतावादी एवं आषावादी दृष्टिकोण से समझने के लिये प्रेरित किया है।

(iii) इस सिद्धान्त को नैदानिक, सामाजिक तथा व्यक्तिगत परिस्थितियों में अत्याधिक सफलतापूर्वक प्रयुक्त किया गया है।

"इस सिद्धान्त की उपयोगिता मनोचिकित्सा, षिक्षा, चिकित्साषास्त्र तथा संगठनात्मक व्यवस्था आदि में काफी अधिक है।"

(iv) मैस्लो द्वारा प्रतिपादित "आत्म—सिद्धि" के संप्रश्य ने मनुष्य की आन्तरिक क्षमताओं को पहचानने एवं समझने में अत्यधिक सहायता प्रदान की है।

सीमायें अथवा दोष—

(i)आलोचको का मत है कि मैस्लो के सिद्धान्त के विभिन्न संप्रव्यय परस्पर अत्यधिक अतिआच्छाविवत (overlep) होने के कारण उनको एक दूसरे से अलग करके उनका विवेचन करना और उन पर शोध कार्य करना संभव नहीं है।

(ii) सुल्ज,1990 के अनुसार मैस्लो ने मात्र 49 प्रयोज्यों का साक्षात्कार लेकर तथा उन पर कुछ मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का क्रियान्वयन कर अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन कर दिया। अतः इतने कम प्रयोज्यों के आँकड़ों पर आधारित सिद्धान्त को वैज्ञानिक नहीं माना जा सकता है।

(iii) मैस्लो ने आत्मसिद्ध व्यक्तियों के बारे में जिन साधनों से तथ्यों एवं आँकड़ों का संग्रह किया वे स्पष्ट यथार्थ एवं वैज्ञानिक नहीं है।

(iv) मैस्लो मेटा—आवश्यकता आत्मसिद्धि इत्यादि संप्रव्ययों की वस्तुनिष्ठ एवं विज्ञानसम्मत व्याख्या प्रस्तुत नहीं कर सके है।

(v) आलोचकों का यह भी मत है कि व्यक्ति में एक समय में केवल एक ही आवश्यकता की पूर्ति की भावना उत्पन्न नहीं होती है, अर्थात् एक से अधिक आवश्यकतायें भी व्यक्ति में एक ही समय में उत्पन्न हो सकती है। जैसे कि एक व्यक्ति में भूखें होने पर

भोजन की आवश्यकता की संतुष्टि तथा साथ ही वह स्वयं को सुरक्षित रखने की आवश्यकता भी अनुभव कर सकता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न–

नीचे कुछ कथन दिये गये हैं। जो कथन सही हो उनके आगे सही का (√) तथा जो गलत है उसके आगे गलत का (X) का निषान लगायें।

(1) एब्राह्म मैस्लो मानवतावादी मनोविज्ञान के आध्यात्मिक जनक है। ()
(2) मैस्लो के अनुसार आत्मसिद्धि की आवष्यक्ता सबसे अंतिम स्तर की आवश्यकता है। ()
(3) आत्मसिद्ध व्यक्ति मौलिक एवं रचनात्मक होता है। ()
(4) आत्मसिद्ध व्यक्ति रूढ़िवादी होता है। ()
(5) मैस्लो के अनुसार व्यक्ति में दूसरों से सम्मान पाने की चाहत नहीं होती है। ()
(6) दैहिक एवं सुरक्षा की आवष्यक्ता निचले स्तर की आवश्यकता है। ()
(7) दैहिक एवं सुरक्षा की आवश्यकता उच्चस्तरीय आवश्यकतायें हैं। ()
(8) आत्मसिद्धि की आवश्यकता की अवस्था में पहुँचने के लिये व्यक्ति में बी–मूल्यों का होना आवश्यक है। ()
(9) आत्मसिद्धि की आवश्यकता की अवस्था में पहुँचने के लिये व्यक्ति की सम्मान की आवश्यकता की पूर्ति होना आवश्यक है। ()
(10) मैस्लो के अनुसार मूल आवश्यकतायें पाँच है। ()

5.5 सारांश–

प्रिय पाठकों, उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि व्यक्तित्व मनोविज्ञान के क्षेत्र में मानवतावादी मनोविज्ञान के आध्यात्मिक जनक एब्राह्म मैस्लो को व्यक्तित्व के मानवतावादी सिद्धान्त या व्यक्तित्व का सम्पूर्ण_गव्यात्मक सिद्धान्त का महत्त्वपूर्ण योगदान है। फ्रायड की तरह मैस्लो का सिद्धान्त मनोरोगियों पर नहीं वरन् मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों से प्राप्त आँकड़ों पर आधारित था। मैस्लो ने मनुष्य के व्यक्तित्व विकास में बाहरी कारकों, जैसे वातावरण, आनुवांषिक्ता इत्यादि के स्थान पर आन्तरिक कारकों जैसे व्यक्तिगत मूल्य आन्तरिक क्षमताओं पर अधिक बल डाला। इन्होंने अपने सिद्धान्त में यह भी स्पष्ट किया कि व्यक्ति में आत्मसिद्धि की आवश्यकता को किस प्रकार से प्रोत्साहित किया जा सकता है। यद्यपि आलोचकों ने कुछ आधारों पर इस सिद्धान्त की आलोचना भी की है, किन्तु चिकित्साशास्त्र, मनोचिकित्सा तथा औद्योगिक एवं संगठनात्मक क्षेत्रों में इसकी भूमिका को नकारा नहीं जा सकता।

5.6 शब्दावली–

वर्धन – वृद्धि को प्राप्त होना

अवरूद्ध – – रूक जाना
पदानुक्रमिक – क्रमशः बढ़ते हुये क्रम में
संज्ञानात्मक – विचार ,स्मृति, बुद्धि, निर्णय इत्यादि मानसिक प्रक्रियाओं से संबंधित
न्यूनता – कमी होना
अभिप्रेरक – जिसके कारण व्यवहार किसी खास लक्ष्य की प्राप्ति के लिये हो।
तंत्रिकातापी – मानसिक रूप से विकार, रोग या समस्या उत्पन्न करने वाला
स्नायुविकृति – स्नायुओं को रोगग्रस्त करने वाला
मद्यपानता – शराब पीने का व्यसन
सहसंबंध– – दो व्यक्ति, वस्तुओं का एक दूसरे से संबंधित होना
मनोचिकित्सा – मानसिक रोगों का उपचार
गत्यात्मक – गतिशील
बी–मूल्य – धनात्मक गुण अच्छाई, सच्चाई, प्रयासशीलता, न्याय, सरलता, इत्यादि।

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर–

(1) सत्य (2) सत्य (3) सत्य (4) असत्य (5) असत्य (6) सत्य (7) असत्य (8) सत्य (9) सत्य (10) सत्य

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. सिंह, अरूण कुमार। (2006) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड़, जवाहर नगर, दिल्ली।
2. सिंह, अरूण कुमार। (2006) व्यक्तित्व मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलोरोड़, जवाहर नगर, दिल्ली।

5.9 निबंधात्मक प्रश्न–

प्श्न–1– एब्राह्म मैस्लो के व्यक्तित्व के मानवतावादी सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

प्रश्न–2– निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–

A- मैस्लो के अनुसार आत्मसिद्ध व्यक्ति की विषेषताएँ।
B- मैस्लो के व्यक्तित्व सिद्धान्त के प्रमुख गुण एवं सीमाएँ।

इकाई – 6– फ्रायड, युंग एवं एडलर का मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त

इकाई की संरचना

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 फ्रायड का व्यक्तित्व सिद्धान्त

6.3.1 – व्यक्तित्व की संरचना

6.3.2 – व्यक्तित्व की गतिकी

6.3.3 – व्यक्तित्व का विकास

6.3.4 – फ्रायड के सिद्धान्त का मूल्यांकन

6.4 एडलर का व्यक्तित्व सिद्धान्त

6.4.1 मुख्य संप्रत्यय

6.4.2 एडलर के सिद्धान्त का मूल्यांकन

6.5 युंग का व्यक्तित्व सिद्धान्त

6.5.1 व्यक्तित्व की अवधारण

6.5.2 व्यक्तित्व की संरचना

6.5.3 व्यक्तित्व की गतिकी

6.5.4 व्यक्तित्व का विकास

6.5.5 युंग की अध्ययन की विधियाँ

6.5.6 युंग के सिद्धान्त का मूल्यांकन

6.6 सारांश

6.7 शब्दावली

6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

6.10 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना—

प्रिय विद्यार्थियों, इससे पूर्व की ईकाईयों में आप व्यक्तित्व की अवधारणा तथा इसके सबंध में प्रतिपादित की अवधारणा तथा इसके सबंध में प्रतितपादित किये गये कुछ सिद्धान्तों से परिचित हो चुके हैं। जैसे कि क्रेत्स्मर एवं शेल्डन का व्यक्तित्व सिद्धान्त, मैस्लो का व्यक्तित्व सिद्धान्त। पाठकों, व्यक्तित्व के कितने भी सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। उनमें से प्रत्येक सिद्धान्त का आधार कोई ना कोई उपनाम या मॉडल है। उदाहरण के तौर पर यदि हम लें तो क्रेटस्मर एवं शेल्डन ने व्यक्तित्व का जो सिद्धान्त दिया है। उसका आधार शरीर गठनात्मक उपागम है। मॉलो के व्यक्तित्व सिद्धान्त का आधार मानवतावादी या सांवृलिक उपागम है। प्रत्येक उपागम की अपनी कुछ मूल मान्यता है। इन मान्यताओं को केन्द्र में रखकर मनोवैज्ञनिकों अलग—अलग ढंग से व्यक्तित्व का समझने का प्रयास किया है।

प्रस्तुत ईकाई में हमारे अध्ययन का बिषय है— फ्रायड़ एडलर एवं युंग का व्यक्तित्व सिद्धान्त है। तो आइये, अध्ययन के क्रम को आगे बढ़ाते हुए चर्चा करते हैं, इन व्यक्तित्व सिद्धान्तों के बारे में।

6.2 उद्देश्य —

प्रिय पाठकों प्रस्तुत ईकाई को पढ़ने के बाद आप—

1. फ्रायड के व्यक्तित्व सिद्धान्तों को स्पष्ट कर सकेंगे।
2. एडलर के व्यक्तित्व सिद्धान्त को स्पष्ट कर सकेंगे।
3. युंग के व्यक्तित्व सिद्धान्त का विश्लेषण कर सकेंगे।
4. व्यक्तित्व के इन तीनों सिद्धान्तों का मूल्यांकन कर सकेंगे।
5. फ्रायड, एडलर तथा युंग में क्या समानतायें हैं तथा क्या असमानतायें है। इसका विश्लेषण कर सकेंगे।

6.3 फ्रायड का व्यक्तित्व सिद्धान्त—

मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त—

प्रिय पाठकों, मनोविज्ञान के क्षेत्र में सिगमण्ड फ्रायड के नाम से प्रायः सभी लोग परिचित है। फ्रायड ने व्यक्तित्व के जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया, उसे व्यक्तित्व का मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त कहा जाता है। फ्रायड का यह सिद्धान्त उनके लगभग 40 साल के वैदानिक अनुभवों पर आधारित है। प्रिय पाठकों, क्या आप जानते हैं कि व्यक्तित्व का अध्ययन करने वाला सर्वप्रथम उपागम कौन सा है? आपकी जानकारी के लिये बाता दें कि सबसे पहले मनोविश्लेषणात्मक उपागम के आधार पर व्यक्तित्व को जानने समझने का प्रयास किया गया। फ्रयड का सिद्धान्त इसी उपागम पर आधारित है।

विद्यार्थियों किसी भी सिद्धान्त को ठीक प्रकार से जानने के लिये यह आवश्यक है कि उसकी मूल मान्यतायें बचा है? फ्रायड की भी मानवीय स्वभाव के बारे में कुछ

पूर्वकल्पनायें हैं, जिनको जानने से उनके व्यक्तित्व सिद्धान्त को समझने में काफी मदद मिल सकती है। ये पूर्व कल्पनायें नियमानुसार हैं–

1. मनुष्य के व्यवहार का निर्धारण बाहय कारकों द्वारा होता है।
2. ऐसा व्यवहार अपरिवर्तनशील, अविवेकपूर्ण, सनस्थितिष्क तथा जानने योग्य होता है।
3. इस सिद्धान्त में मानवप्रवृत्ति की निराशावादी एवं निश्चयवादी छवि को प्रधानता दी गई है।
4. फ्रायड के अनुसार मानव स्वभाव आत्मनिष्ठ की पूर्व कल्पना द्वारा की कम प्रश्तावित होता है।
5. पूर्णतः शरीरगठनी तथा प्रलक्षता कैसी पूर्व कल्पनाओं से मानव प्रकृति थोड़ी–थोड़ी प्रभावित होती है।

पाठकों हम फ्रायड के व्यक्तित्व सिद्धान्त का अध्ययन निम्नांकित बिन्दुओं के अन्तर्गत कर सकते हैं–

(अ) व्यक्तित्व की गति की
(ब) व्यक्तित्व का विकास
(स) व्यक्तित्व का विकास

सबसे पहले हम चर्चा करते हैं फ्रायड के व्यक्तित्व की संरचना संबंधी विचारों पर।

6.3.1 व्यक्तित्व की संरचना

फ्रायड ने व्यक्तित्व की संरचना का वर्णन निम्नांकित दो मॉडलों के आधार पर किया है–

(अ) आकारात्मक मॉडल
(ब) गत्यात्मक या संरचनात्मक मॉडल

इन दोनों में से सबसे पहले हम आकारात्मक मॉडल को समझने का प्रयास करते हैं–

(क) आकारात्मक मॉडल–

प्रिय पाठको आप सोच रहे होंगे कि मन के आकारात्मक मॉडल से क्या आशय है?

फ्रायड के अनुसार आकारात्मक मॉडल गव्यात्मक शक्तियों में हाने वाले संबंधों का एक कार्यस्थल होता है? इसके निम्न तीन तरह हैं–

1. चेतन
2. अवचेतन
3. अचेतन

1. चेतन–

चेतन मन में से समस्त अनुभव। इच्छायें, प्रेरणायें, संवेदनायें आती हैं। किनका सम्बन्ध वर्तमान समय से होता है और जिसमें व्यक्तित्व जाग्रतावस्था में होता है। अतः केवल वर्तमान संबंध होने के कारण चेतन मन व्यक्तित्व के अत्यन्त सीमित पहलू का प्रतिनिधित्व करता है।

2.अर्द्धचेतन–

यह चेतन एवं अचेतन के मध्य की स्थिति है। इस अवस्था में व्यक्तित्व न तो पूरी तरह जाग्रत अर्थात् चेतन होता है। और न ही पूरी तरह से अचेतना फ्रायड का मानना है कि अद्धचेतन मन में ऐसी इच्छाएं, भावनायें एवं अनुभूतियां आती हैं, किन्तु प्रयास करने पर चेतन स्तर पर आ जाती है। अवचेतन मन को सुलभस्मृति के नाम से भी जाना जाता है। उदाहरण– जैसे कि कोई व्यक्ति अपना चश्मा या अन्य कोई वस्तु रखकर भूल जाता है। कुछ समय तक सोचने के बाद उसे याद आता है कि वह चश्मा या वस्तु तो उसके उदाहरण में आप देखिये कि व्यक्ति को प्रारंभ में याद नहीं आत है कि अचुक वस्तु उसने कहीं रखी है अर्थात् वह स्मृति अभी चेतनमन के स्तर पर नहीं है, किन्तु कुछ समय के बाद उसे स्मरण हो आता है कि वह चीज उसने यहां पर रखी है। इस प्रकार वह स्मृति चेतन मन का एक अच्छा उदाहरण है।

3.अचेतन– प्रिय पाठकों, अचेतन शब्द, चेतन के ठीक विपरीत है अर्थात् जो चेतना से परे हो, वह अचेतन है। फ्रायड ने व्यक्तित्व के आकारात्मक मॉडल में चेतन एवं अर्द्धचेतन की तुलना में अचेतन को कहीं अधिक महत्वपूर्ण माना है। उनके अनुसार मनुष्य का व्यवहार अचेतन अनुभूतियां अच्छाओं एवं प्रेरणाओं से ही सर्वाधिक प्रमाणित होता है। फ्रायड की यह भी मान्यता है कि अचेतन में जो भी इच्छा है, विचार, अनुभव एवं प्रेरणायें होती हैं। उनका स्वरूप कामुक, अनैतिक,घृणित एवं आसामाजिक होता है। कहने के आशय यह है कि नैतिक दबाव अथवा सामाजिक दबाव इत्यादि के कारण अपनी कुछ इच्छाओं की पूर्ति व्यक्ति चेतन में नहीं कर पाता है। अतः ऐसी इच्छाएं चेतन स्तर पर निष्क्रिय होकर अचेतन मन में दमित हो जाती है और मानवीय व्यवहार को निरन्तर प्रभावित करती रहती है। इसी के परिणाम स्वरूप व्यक्ति को विभिन्न प्रकार के मनोरोगों का सामना करना पड़ता है।

(ख) गव्यात्मक या संरचनात्मक मॉडल–

पाठकों, आकारात्मक मॉडल को जानने के बाद अब आपके मन में गत्यात्मक भी संरचनात्मक मॉडल के बारे में जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हो रही होगी।

विद्यार्थियों, फ्रायड का मत है कि मूल प्रवृतियों से उत्पन्न मानसिक संघर्षों का समाधान जिन साधनों के द्वारा होता है। वे सभी गत्यात्मक या संरचनात्मक मॉडल के अन्तर्गत आते हैं। फ्रायड के अनुसार ऐसे साधन निम्न तीन हैं–

1. उपाहं
2. अहं
3. पराहं

1. उपाहं–

- यह व्यक्तित्व का जैविक तत्व है। इसमें व्यक्ति की जन्मजात प्रवृत्तियां होती हैं।
- उपाहं आनन्द सिद्धान्त के आधार पर कार्य करता है। इनका आशय यह है कि इसमें केवल ऐसी प्रसवृत्तियां होती हैं जिनका मुख्य उद्देश्य सुख

प्राप्त करना होता है। अतः इन प्रवृत्तियों का उचित अनुचित विवेक–अविवेक इत्यादि से कोई भी संबंध नहीं होता है।

- उपाहं की प्रवृत्तियां का गुण, असंगठित आक्रामकता युक्त तथा नियम–कानून इत्यादि को नहीं मानने वाली होती हैं।
- उपाहं पूरी तरह से अचेतन होता है। इसलिये वास्तविकता या यथार्थ से इसका कोई संबंध नहीं होता है?
- एक छोटे बच्चे में उपाहं की प्रवृत्तियां होती हैं।

2. अहं–

- पाठकों, अहं व्यक्तित्व के संरचनात्मक मॉडल का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू है।
- यह वास्तविकता सिद्धान्त के आधार पर कार्य करता है अर्थात् इसका संबंध वातावरण की वास्तविकता के साथ होता है।
- जन्म के कुछ समय बाद जब नैतिक एवं सामाजिक नियमों के कारण व्यक्ति की सभी इच्छाओं की पूर्ति नहीं हो पाती है, तो उनमें निराशावादी प्रवृत्ति उत्पन्न होती है और उसका परिचय वास्तविकता से होता है।
- परिणाम स्वरूप उसमें अहं का विकास होता है। अहं को व्यक्तित्व का निर्णय लेने वाला पहलू माना गया है।
- अहं आंशिक रूप से चेतन आंशिक रूप से अवचेतन या अर्द्धचेतन तथा आंशिक रूप से अचेतन होता है। इसलिये अहं द्वारा मन के तीनों स्तरों पर ही निर्णय लिया जाता है।

3. पराहं–

- अहं के बाद गत्यात्मक मॉडल का तीसरा महत्वपूर्ण पहलू है पराहं।
- सच्चा जैसे–जैसे अपने जीवन के विकासक्रम में आगे बढ़ता जाता है, वैसे–वैसे उसका दायरा बढ़ने लगता है। उसका अपने माता–पिता से तादात्म्य, जुड़ाव स्थापित होता है। परिणाम स्वरूप वह जानना शुरू करता है कि क्या गलत है और क्या सही? क्या उचित है? क्या अनुचित/इस प्रकार उसमें पराहं विकसित होता है।
- अहं के समान पराहं भी आंशिक रूप से चेतन अर्द्धचेतन एवं अचेतन अर्थात् तीनों होता है।
- पराहं आदर्शवादी सिद्धान्त द्वारा नियंत्रित होता है अर्थात् यह नैतिकता पर आधारित होता है।
- तो प्रिय विद्यार्थियों इस प्रकार आपने जाना कि फ्रायड के अनुसार व्यक्तित्व की संरचना क्या है अर्थात् व्यक्तित्व किन–किन हाटकों से मिलकर बना है। अब चर्चा करते हैं, व्यक्तित्व की गति के विषय में।

6.3.2 व्यक्तित्व की गतिकी–

व्यक्तित्व की गतिकी का आशय है– व्यक्तित्व में उर्जा का स्त्रोत क्या है? यह उर्जा कहां से प्राप्त होती है तथा समय–समय पर व्यक्तित्व में किस प्रकार से परिवर्तन होते हैं। फ्रायड के अनुसार मनुष्य एवं शारीरिक एवं मानसिक दोनों ही प्रकार की उपाधि होती है। जिनका मुख्य स्त्रोत यौन उर्जा है। चलना, दौड़ना, लिखना इत्यादि कार्य करने में शारीरिक उर्जा तथा सोचना, तर्क करना, निर्णय लेना, समस्या का समाधान करना इत्यादि में मानसिक उर्जा काम में आती है।

फ्रायड ने व्यक्तित्व के कुछ गत्यात्मक पहलू बताये हैं, जो निम्न हैं–

1. मूलप्रवृत्ति
2. चिन्ता
3. मनोरचनायें

इनका वर्णन निम्नानुसार है–

(क) मूलप्रवृत्ति–

पाठकों, मूलप्रवृत्ति से फ्रायड का आशय है– जन्मजात शारीरिक उत्तेजना यही मूल प्रवृत्ति के समस्त व्यवहार की निर्धारक होती है। इन मूलप्रवृत्तियों को फ्रायड ने निम्न दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया है–

(1) जीवनमूल प्रवृत्ति (इरोस)
(2) मृत्यु मूल प्रवृत्ति (थैनाटोस)

(1) जीवनमूल प्रवृत्ति–

पाठकों, जीवन मूलप्रवृत्ति के कारण व्यक्ति की प्रवृत्ति रचनात्मक कार्यों में होती है। वह नये–नये अर्थात् मौलिक और अच्छे–अच्छे कार्य करने के लिये प्रेरित होता है। रचनात्मक कार्यों में मानवजाति का प्रजनन भी शामिल है। यहां पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि फ्रायड ने अपने पूरे सिद्धान्त में ''यौन मूल प्रवृत्ति'' पर सर्वाधिक बल डाला है। फ्रायड के अनुसार यौन उर्जा व्यक्तित्व विकास के लिए अत्यधिक आवश्यक है।

(2) यौन मूलप्रवृत्ति (थैनाटोस)–

इस प्रवृत्ति के कारण हिंसात्मक एवं आक्रामक व्यवहार करता है। उसकी प्रवृत्ति विध्वंसात्मक कार्यों की ओर होती है।

चिन्ता–

व्यक्तित्व का दूसरा गत्यात्यक पहलू है–''चिन्ता''। पाठकों, फ्रायड के अनुसार चिन्ता का अर्थ है– ''एक दुःखद भावनात्मक अवस्था''। यह चिन्ता व्यक्ति के अहं में भविष्य के खतरे के प्रति सतर्क एवं सावधान करता है, जिसके कि व्यक्ति अपने परिवेश के प्रति सामान्य एवं अनुकूली व्यवहार हो सके तथा वह वातावरण के साथ समायोजन कर सके।

फ्रायड ने चिन्ता के निम्न तीन प्रकार बतलाये हैं–

1. वास्तविक चिन्ता

2. तंत्रिकातापी चिन्ता

3. नैतिक चिन्ता

चिन्ता के भेद

1. वास्तविक चिन्ता	2. तंत्रिकातापी चिन्ता	3. नैतिक चिन्ता

1. वास्तविक चिन्ता–

वास्तविक चिन्ता का अर्थ है– ''बाहरी वातावरण में विद्यमान वास्तविक खतरे के प्रति की गई सांवेगिक अनुक्रिया।''

इस प्रकार की चिन्ता इसलिये उत्पन्न होती है, क्योंकि अहं कुछ हद तक बाह्य वातावरण पर निर्भर होता है।

उदाहरण– भूकंप, आँधी–तूफान, शेर इत्यादि से डर उत्पन्न होकर चिन्तित होना वास्तविक चिन्ता के उदाहरण है।

2. तंत्रिकातापी चिन्ता–

इस प्रकार की चिन्ता के उत्पन्न होने का कारण है– अहं का उपाहं की इच्छाओं पर निर्भर होना।

उदाहरण–

जैसे व्यक्ति का यह सोचकर चिंताग्रस्त हो जाना कि क्या अहं, उपाहं की यौन इच्छाओं, आक्रामक एवं हिंसात्मक इच्छाओं को नियंत्रित करने में सक्षम हो पायेगा।

3. नैतिक चिन्ता–

अहं की पराहं पर निर्भरता के कारण व्यक्ति में नैतिक चिन्ता उत्पन्न होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि जब अहं, उपाहं की अनैतिक इच्छाओं को कार्यरूप दे देता है, तो उसे पराहं से दण्डित होने की धमकी मिलती है। इससे वह नैतिक रूप से चिन्ताग्रस्त हो जाता है तथा उसमें दोषभाष, शर्म इत्यादि की भावना उत्पन्न हो जाती है।

पाठकों, यदि हम सामूहिक रूप से देखें तो ये तीनों प्रकार की चिन्तायें एक दूसरे से संबंधिक है तथा एक प्रकार की चिन्ता दूसरे प्रकार की चिन्ता को जन्म देती हैं।

मनोरचनायें या अहंरक्षात्मक प्रक्रम–

पाठकों, जब व्यक्ति के अन्दर अनेक प्रकार की चिन्तायें उत्पन्न होने लगती है तो वह इन चिन्ताओं से छुटकारा पाने के लिये अहं रक्षात्मक प्रक्रमों के संप्रत्यय का प्रतिपादन तो फ्रायड द्वारा किया गया, किन्तु इसकी सूची को पूरा करने का कार्य उनकी पुडी अन्ना फ्रायड एवं दूसरे नव–फ्रायडियनों द्वारा किया गया।

एक सीमा तक इन रक्षात्मक प्रक्रमों का प्रयोग करना ठीक है, किन्तु इनके लगातार तथा अधिक प्रयोग के कारण व्यक्ति के मन में अनेक प्रकार के मनोरोग जन्म लेने लगते हैं।

अहं रक्षात्मक प्रक्रमों की विशेषतायें–

फ्रायड के मतानुसार इन रक्षात्मक प्रक्रमों की दो मुख्य विशेषतायें हैं, जो निम्न हैं–

1. अचेतन स्तर पर कार्य करने के कारण प्रत्येक रक्षात्मक प्रक्रम ''आत्म–भ्रामक'' होता है।
2. ये वास्तविकता के प्रत्यक्षण को विकृत कर देते हैं अर्थात् व्यक्ति पूर्णतः यथार्थ परिस्थिति से रूबरू नहीं हो पाता। इसलिये व्यक्ति अपेक्षाकृत कम चिन्तित होता है।

कुछ प्रमुख रक्षात्मक प्रक्रमों के नाम निम्नांकित हैं–

- दमन
- विस्थापन
- प्रक्षेपण
- प्रतिगमन
- प्रतिक्रिया निर्माण
- यौक्ति की करण

पाठकों, इस प्रकार स्पष्ट है कि रक्षात्मक प्रक्रम व्यक्ति को चिन्ता एवं तनाव से कुछ हद तक बचाते हैं तथा एक सीमा तक प्रायः सभी स्वस्थ व्यक्ति इनका प्रयोग करते हैं तथा इनका उपयोग करने में मनोवैज्ञानिक ऊर्जा लगती है।

6.3.3 व्यक्तित्व का विकास–

प्रिय विद्यार्थियों, फ्रायड ने व्यक्तित्व विकास को ''मनोलैंगिक विकास'' की संज्ञा दी है तथा इस विकास के पाँच चरण या अवस्थायें बतायी है, जिसको हम निम्न चार्ट के द्वारा आसानी से समझ सकते हैं–

मनोलैंगिक विकास की अवस्थायें
पाँच अवस्थायें

प्रथम अवस्था	मुखावस्था
द्वितीय अवस्था	गुदावस्था
तृतीय अवस्था	लिंग प्रधानावस्था
चतुर्थ अवस्था	अव्यक्तावस्था
पंचम अवस्था	जननेन्द्रियवस्था

(मनोलैंगिक विकास के चरण)

पाठकों, इनमें से प्रत्येक अवस्था का विवरण निम्नानुसार है–

1. मुखावस्था–

- मनोलैंगिक विकास की यह प्रथमावस्था है। यह व्यक्ति के जन्म से लेकर लगभग 1 साल की आयु तक होती है।
- फ्रायड के अनुसार इस चरण में व्यक्ति का व्यामुकता क्षेत्र मुँह होता है अर्थात– मुँह के माध्यम से वह कामुक क्रियायें करता है। जैसे– चूसना, निगलना, जबड़े या दाँत निकल आने पर दबाना, काटना इत्यादि।

2. गुदावस्था–

- व्यक्तित्व विकास की यह दूसरी अवस्था 2 से 3 साल की उम्र के बीच होती है।
- इस अवस्था में व्यक्ति का कामुकता क्षेत्र गुदा होता है। फ्रायड के करने का अर्थ यह है कि इस उम्र में बच्चा मुल–मूत्र त्यागकर कामुक क्रियाओं का आनंद उठाता है।

3. लिंग प्रधानावस्था–

- यह व्यक्तित्व विकास की तीसरी अवस्था है, 4 से 5 साल की उम्र के बीच की अवस्था है।
- इसमें कामुकता का क्षेत्र जननेन्द्रिय होते हैं।

4. अव्यवक्तावस्था–

- यह अवस्था 6 से 7 साल की उम्र से आरंभ होकर 12 वर्ष की आयु तक बनी रहती है।
- इस अवस्था में कोई नया कामुकता क्षेत्र उत्पन्न नहीं होता है।
- लैंगिक इच्छायें सुषुप्त हो जाती है और इनकी अभिव्यक्ति अनेक प्रकार की अलैंगिक क्रियाओं के माध्यम से होती है। उदाहरण के तौर पर हम पढ़ाई, चित्रकारी, संगीत नृत्य, खेल इत्यादि को ले सकते हैं।

5. जननेन्द्रियावस्था–

- मनोलैंगिक विकास के इस चरण में किशोरावस्था एवं प्रौढ़ावस्था या वयस्यावास्था दोनों को ही शामिल किया गया है।
- यह 13 वर्ष की उम्र से प्रारंभ होती है और निरन्तर चलती ही रहती है।
- फ्रायड के अनुसार इस अवस्था में व्यक्ति के शरीर में अनेक प्रकार के परिवर्तन होते हैं। जैसे की हार्मोन्स में परिवर्तन होना और इनके अनुसार शरीर में भी किशोरावस्था के अनेक लक्षण दिखायी देने लगते है।
- फ्रायड के अनुसार इस अवस्था के प्रारंभिक वष्रे में अर्थात् किशोरावस्था में व्यक्ति में अपने ही लिंग के व्यक्तियों के साथ सम्पर्क बनाये रखने की प्रवृत्ति अधिक होती है। जैसे लड़कियों में लड़कियों के साथ रहने की तथा लड़कों में लड़कों के साथ रहने की प्रवृत्ति अधिक रहती है।
- किन्तु जब व्यक्ति किशोरावस्था से वयस्कावस्था में प्रवेश करता है तो उसमें ''विषमलिंग कामुकता'' की प्रवृत्ति विकसित होने लगती है अर्थात–

वह अपने से विपरीत लिंग के व्यक्तियों के साथ उठता–बैठता है, बातचीत करता है, अपना समय व्यतीत करता है।

- इस अवस्था में व्यक्ति का व्यक्तित्व हर दृष्टि से परिपक्व होता है। जैसे–कि सामाजिक, शारीरिक, मानसिक दृष्टि से।
- इसी अवस्था में व्यक्ति विवाह जो कि समाज द्वारा मान्य एवं अनुमोदित प्रथा है। उसको अपनाकर एक सन्तोषजनक जीवन की ओर अपने कदम बढ़ाता है।

तो प्रिय पाठकों, उपर्युक्त विवेचन से आप मनोलैंगिक विकास की सभी अवस्थाओं को समझ गये होंगे। पाठकों, फ्रायड का मानना है कि प्रत्येक अवस्था में व्यक्ति की लैंगिक ऊर्जा का क्रमशः विकास होता है, जिसके कारण विकास की अंतिम अवस्था में वह सक्रिय होकर उपयोगी एवं सन्तोषजनक जीवनयापन करता है।

6.3.4 फ्रायड के सिद्धान्त का मूल्यांकन– पाठकों, जैसा कि आप जानते हैं कि मूल्यांकन में किसी भी व्यक्ति, वस्तु, परिस्थिति अथवा सिद्धान्त के गुण एवं दोष की समीक्षा की जाती है। फ्रायड के व्यक्तित्व सिद्धान्त में भी कुछ गुण है और कुछ इसकी सीमायें हैं, जिनको हम निम्न प्रकार से समझ सकते हैं–

गुण–

1. **विस्तृत एवं चुनौतीपूर्ण सिद्धान्त–**

फ्रायड ने काफी व्यापक ढंग से व्यक्तित्व का अध्ययन किया है। उन्होंने प्रायः व्यक्तित्व के प्रत्येक पहलू को समझाने की भरपूर कोशिश की है।

बोधगम्य भाषा– फ्रायड ने व्यक्तित्व के विकास को बहुत ही आसान भाषा में समझाने की कोशिश की है।

फ्रायड का मानना है कि एक स्वस्थ व्यक्तित्व में जीवन एवं मृत्यु मूलप्रवृत्तियों में एक प्रकार का समन्वय एवं सामंजस्य पाया जाता है तथा इससे अर्थात् जीवन मूल प्रवृत्ति थेनाटोस अर्थात् मृत्युमूलप्रवृत्ति की तुलना में अधिक सक्रिय एवं प्रधान होती है।

दोष – पाठकों, आलोचकों ने निम्न आधारों पर फ्रायड के सिद्धान्त की आलोचना की है

1. **वैज्ञानिक विधि का अभाव –**

आलोचकों का मत है कि फ्रायड ने अपने शोध कार्यो को सुव्यवस्थत एवं क्रमबद्ध ढंग से प्रस्तुत नहीं किया है जो किसी भी सिद्धान्त की वैज्ञानिकता के लिये अत्यधिक आवश्यक है।

2. **लैंगिक उर्जा पर आवश्यकता से अधिक बल देना –**

पाठकों, फ्रायड के सिद्धान्त की सबसे कड़ी आलोचना इस आधार पर की जाती है कि उन्होंने अपने पूरे सिद्धान्त में एकमात्र लैंगिक उर्जा को ही आधारभूत इकाई माना है और आवश्यकता से अधिक इसके महत्व को स्वीकार किया है।

3. **मनोरोगियों की अनुभूतियों पर आधारित –**

फ्रायड का सिद्धान्त एक तो उनके अपने व्यक्तिगत अनुभवों और इसके उन मनोरोगियों के अनुभवों पर आधारित है, जो उनके यहाँ उपचार के लिये आते थे। आलोचकों का कहना है कि किस सिद्धान्त की नींव ही मनोरोगियों की अनुभूतियों पर टिकी है। उसे सामान्य व्यक्तियों पर कैसे लागू किया जा सकता है।

पाठकों, इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से आप जान गये हैं कि फ्रायड के सिद्धान्त का क्या महत्व है और उसमें क्या–क्या कमियाँ है। उनके कमियाँ होने के बावजूद भी व्यक्तित्व मनोविज्ञान के क्षेत्र में फ्रायड के मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।

''सही या गलत, सिगमण्ड फ्रायड ने व्यक्तित्व मनोविज्ञान को जाँच के एक सही रास्ते पर ला रखा है और उसके लिये हम सभी लोग उनके आभारी है।'

(हाल एवं उनके सहयोगी, 1985)

(अभ्यासार्थ प्रश्न) (खण्ड क)

प्रिय पाठकों, नीचे दिये गये रिक्त स्थानों की पूर्ति उपयुक्त शब्द लिखकर कीजिए –

(1) फ्रायड के व्यक्तित्व सिद्धान्त को .... सिद्धान्त कहते हैं।
(2) इससे .... है।
(3) मृत्युमूल प्रकृति को फ्रायड ने .... नाम दिया है।
(4) मनोलैंगिक विकास की चतुर्थ अवस्था .... है।
(5) फ्रायड के अनुसार मनोलैंगिक विकास की .... अवस्थायें हैं।

6.4 एडलर का व्यक्तित्व सिद्धान्त

(वैयक्तिक मनोविज्ञान का सिद्धान्त)

प्रिय विद्यार्थियों, फ्रायड के बाद अब हम चर्चा करते हैं, एडलर के व्यक्तित्व सिद्धान्त पर। एडलर का व्यक्तित्व सिद्धान्त ''नवमनी विश्लेषणात्मक उपागम'' पर आधारित है। एडलर यद्यपि फ्रायड के काफी नजदीक थे, किन्तु वे व्यक्तित्व के सम्बन्ध में फ्रायड के कुछ विचारों से सहमत नहीं थे। इसलिये उन्होंने फ्रायड से पृथक होकर एक नये व्यक्तित्व सिद्धान्त को जन्म दिया, जिसका नाम रखा – ''वैयक्तित्व मनोविज्ञान का सिद्धान्त'' इस सिद्धान्त की खास बात यह है कि इसमें एडलर ने प्रत्येक व्यक्ति की मौलिकता एवं अनूठेपन को पर्याप्त महत्व प्रदान किया है। इसीलिये इसका नाम वैयक्तिक मनोविज्ञान का सिद्धान्त है। एडलर ने फ्रायड की तरह जैविक कारकों पर बल न देकर वैयक्तिक सामाजिक वातावरण एवं उनकी अन्तःक्रिया को व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण निर्धारक माना, क्योंकि मनुष्य मूल रूप से एक सामाजिक प्राणी है न कि जैविक

6.4.1 मुख्य सप्रत्यय :

एडलर द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व सिद्धान्त का विवेचन निम्नांकित बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है।

(1) व्यक्तित्व की एकता (न्दपजल व िचमतेवदंसपजल)
(2) प्रत्यक्षण की आत्मनिष्ठता
(3) सफलता चापूर्णता का प्रयास
(4) सामाजिक अभिरूचि
(5) जीवनशैली
(6) सर्जनात्मक शक्ति

प्रिय विद्यार्थियों, इन सभी का हम एक–एक करके अलग–अलग वर्णन करते हैं, जो निम्नानुसार –

(1)व्यक्तित्व की एकता –पाठकों, एडलर ने अपने सिद्धान्त में व्यक्तित्व की मौलिक एकता पर बल डाला है।

उनका मानना है कि हम चेतन तथा अचेतन मन, शरीर तथा मन एवं इसी प्रकार तर्क एवं संवेग को अलग–अलग करके नहीं समझ सकते। ये सभी हमारे व्यक्तित्व के विभिन्न आयाम हैं, जिनमें स्पष्ट विभाजन रेखा खींचना संभव नहीं है। इन सभी का उद्देश्य व्यक्ति को सफलता दिलाना होता है। अतः इस सफलता रूपी अन्तिम लक्ष्य के सन्दर्भ में ही हम मनुष्य के व्यवहार को ठीक प्रकार से समझ सकते हैं।

(2)प्रत्यक्षण की आत्मनिष्ठता–एडलर का मत है कि व्यक्तित्व का निर्धारत बाह्य कारकों से नहीं बल्कि व्यक्ति के आत्मनिष्ठ विचारों से होता है। वास्तवकता को जानने के लिये व्यक्ति जो आत्मनिष्ठ प्रत्यक्षण करता है वहीं उसके व्यक्तित्व के ढांचे को बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। साथ ही इन्होंने यह भी माना कि व्यक्ति व्यवहार करते समय अपने अतीत की अनुभूतियों से नहीं वरन् भावी जीवन को लेकर की गई कल्पनाओं एवं आशाओं से प्रेरित होता है।

एडलर ने निम्न तीन आत्मनिष्ठ कारक बताये हैं –

1. कतिपत लक्ष्य
2. हीनता भाव एवं क्षतिपूर्ति
3. जन्मक्रम

(3) सफलता या पूर्णता का प्रयास

एडलर ने अपने सिद्धान्त में एक गत्यात्म शक्ति पर बल दिया है, जो सभी अभिप्रेरकों के पीछे काम करती है। इस गत्यात्मक बल को एडलर ने नाम दिया – ''सफलता या पूर्णता का प्रयास'' पूर्णता को प्राप्त करने की मौलिक अभिप्रेरणा को ही एडलर ने सफलता या पूर्णता का प्रयास कहा है। यदि व्यक्ति के अन्दर ऐसा अभिप्रेरक मौजूद न हो तो जीवन में उन्नति की बात तो बहुत दूर, जीवन के अस्तित्व की भी कल्पना नहीं की जा सकती।

सफलता या पूर्णता के प्रयास की विशेषतायें –

(1) एडलर के अनुसार ''पूर्णता का प्रयास'' एक जन्मजात प्रक्रिया है।

(2) ''पूर्णता के प्रयास'' का विकास पर्यावरणी कारकों द्वारा प्रभावित निर्धारित एवं विकसित होता है।

(3) पूर्णता का प्रयास उनके अभिप्रेरकों का मिश्रण न होकर अपने आप में एक अकेला अभिप्रेरक है।

(4) यह अभिप्रेरक सामान्य व्यक्तियों तथा स्नायुरोगियों दोनों में सामान्य रूप से पाया जाता है।

(5) पूर्णता के प्रयास में व्यक्ति को अपना लक्ष्य प्राप्त करने के मार्ग में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इसलिये इससे तनाव कम न होकर तनाव बढ़ जाता है।

(6) एडलर के अनुसार पूर्णता का प्रयास व्यक्ति व्यक्तिगत रूप से करने के साथ–साथ समाज की एक इकाईया सदस्य के रूप में भी करता है जिससे कि समाज की प्रगति हो सके।

(4) सामाजिक अभिरूचि

- एडलर के अनुसार सामाजिक अभिरूचि भी एक जन्मजात प्रक्रिया है, जो कम या अधिक मात्रा में सामान्य तथा स्नायुरोगियों दोनों में ही पायी जाती है
- सामाजिक अभिरूचि से तात्पर्य है दूसरों का सहयोग करने की प्रवृति।
- ''मानसिक स्वास्थ्य का बैरोमीटर' कहा है अर्थात जो व्यक्ति जितना अधिक दूसरों की भलाई करता है, यह मानसिक रूप से भी उतना ही स्वस्थ रहता है।
- यद्यपि यह एक जन्मजात प्रक्रिया है फिर भी एडलर के अनुसार इसका विकास सामाजिक वातावरण में जैसे माँ'बाप के साथ अन्तःक्रियाओं इत्यादि के द्वारा होता है।

(5) जीवन शैली– पाठकों, एडलर के व्यक्तित्व सिद्धान्त का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण संप्रत्यय ''जीवन शैली'' है, जो फ्रायड द्वारा दिये गये अहं के समान है, क्योंकि अहं के समान एडलर ने जीवनशैली को व्यक्तित्व का प्रमुख नियंत्रक बल माना है। पाठकों आपके मन में प्रश्न उठ रहा होगा कि जीवन शैली से एडलर का क्या आशय है, इस सम्बन्ध में एडलर का विचार है कि जीवन शैली में एक व्यक्ति के वे सभी व्यवहार, आदतें, शीलगुण आते हैं, जिनका सामूहिक रूप से उपयोग करते हुए व्यक्ति पूर्णता या सफलता को प्राप्त करने की कोशिश करता है। इसके साथ ही उस व्यक्ति का स्वयं अपने प्रति अन्य व्यक्तियों के प्रति एवं वातावरण के प्रति क्या दृष्टिकोण है – ये सब भी उसकी जीवनशैली में ही आते हैं। एडलर के अनुसार किसी भी व्यक्ति की जीवनशैली का निर्माण 4–5 साल की उम्र तक क हो चुका होता है और एक बार जीवन शैली निर्धारित हो जाने के बाद इसकी मौलिक सरंचना में प्रायः परिवर्तन नहीं होता है।

एडलर ने सामाजिक अभिरूचि तथा क्रिया की मात्रा इन दो आकारों पर चार प्रकार की ''जीवन शैली मनोवृत्ति'' बतायी है, जिसे निम्न तालिका द्वारा आप आसानी ने समझ सकते हैं –

Degree of Activity (क्रिया की मात्रा)		
Low		High
High	X	Socially useful type (समाजिक रूप से उपयोगी प्रकार)
Low	Getting Type (प्राप्त करने वाले प्रकार) Avoiding Type (दूर हट जाने वाले प्रकार)	Ruling Type (अधिकार दिखाने वाले प्रकार)

(चार प्रकार की जीवन शैली मनोवृत्ति)

इस प्रकार एडलर ने निम्न चार प्रकार की जीवन शैली मनोवृत्ति बतायी है –

1. अधिकार दिखाने वाले प्रकार
2. प्राप्त करने वाले प्रकार
3. दूर हट जाने वाले प्रकार
4. सामाजिक रूप से उपयोगी प्रकार

एडलर ने तीन प्रकार की दोषपूर्ण जीवनशैली मनोवृत्ति की बतायी है। ये हैं –

1. तृच्छ प्रकार
2. अतिस्नेह प्रकार
3. तिरस्कृत प्रकार

सर्जनात्मक शक्ति

प्रिय विद्यार्थियों सर्जनात्मक शक्ति को एडलर ने ''सर्जनात्मक आत्मन्'' भी कहा है। एडलर की मान्यता है कि इस संसार में प्रत्येक प्राणी अपना व्यक्ति एक विशेष ढंग से विकसित करने के पूरी तरह सर्तक होता हैं जो उसकी रचनात्मक शक्ति का परिचायक है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि व्यक्ति की जीवनशैली, उसका अपने जीवन को एक खास ढंग से जीने का अन्दाज उसकी अपनी रचनात्मक शक्ति का ही परिणाम होता है।

तो जिज्ञासु पाठकों, इस प्रकार आप एडलर के व्यक्तित्व सिद्धान्त के महत्वपूर्ण संप्रत्ययों को भली–भांति समझ गये होंगे।

अब हम करते हैं, एडलर के व्यक्तित्व सिद्धान्त का मूल्यांकन।

6.4.2 एडलर के सिद्धान्त का मूल्यांकन

गुण – एडलर के सिद्धान्त के महत्व का विवेचन निम्नानुसार है –

(1)चेतन एवं तार्किक प्रक्रियाओं पर अधिक बल –

- एडलर ने अचेतन की तुलना में चेतन एवं तर्कपूर्ण प्रक्रियाओं को अधिक महत्व दिया है।
- एडलर के सिद्धान्त से इरिक्सन का मनोसामायिक सिद्धान्त धनात्मक रूप से प्रभावित हुआ है।

(2)सामाजिक कारकों पर बल – एडलर ने जैविक कारकों की तुलना में व्यक्तित्व निर्धारण में सामाजिक कारकों की भूमिका को अधिक महत्वपूर्ण माना। इस आधार पर प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक इरिकक्रोम तथा कैरेन हार्नी ने उनके सिद्धान्त का अत्यधिक समर्थन किया है।

(3)सर्जनात्म व्यक्ति को महत्व देना –एडलर के अनुसार व्यक्ति की जीवन शैली के निर्धारण में उसकी सर्जनात्मक शकित का महत्वपूर्ण योगदान होता है। इस आधार पर भी एब्राहम मैस्लो जैसे विद्वानों ने उनके सिद्धान्त की अत्यधिक प्रशंसा की है।

(4)भविष्य की प्रत्याशाओं पर बल–एडलर के अनुसार व्यक्ति का व्यवहार उसकी गत अनुभूतियों की तुलना में भविष्य की प्रत्याशाओं द्वारा अधिक निर्देशित होता हैं। इस प्रकार उन्होंने मानव प्रकृति की आशावादी छवि पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया है।

दोष – एडलर के सिद्धान्त की प्रमुख कमियां निम्न हैं –

(1)आवश्यकता से अधिक सरल सिद्धान्त–फ्रायड ने एडलर के सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहा है कि इनका सिद्धान्त जरूरत से कुछ ज्यादा ही सरल है। इसमें अचेतन की जटिल प्रकृति, यौन अभिप्रेरण इत्यादि को महत्व नहीं दिया गया है। इसके कारण यह सिद्धान्त न होकर एडलर का अपना सामान्य बोध ज्यादा लगता है।

(2)क्रमबद्ध चिन्तन का अभाव –आलोचकों का मत है कि एडलर के चिन्तन में क्रमबद्धता का अभाव दिखलाई देता है। इनके सिद्धान्त में कुछ ऐसी असंगतायें विद्यमान है, जिनका संतोषजनक समाधान नहीं मिल पाता है। जैसा कि क्या प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में केवल पूर्णता को प्राप्त करने के लिये ही प्रयत्न करते हैं? क्या व्यक्ति के जीवन में एकमात्र समस्या हीनता की ही है। अन्य समस्यायें नहीं है, जिनको वह दूर करना चाहता है इत्यादि।

(3) कुछ संप्रत्ययों का प्रयोगात्मक सत्यापन संभव नहीं –

आलोचकों का यह भी मत है कि कतिपत लक्ष्य, सर्जनात्म शक्ति इत्यादि संप्रत्ययों को प्रयोग करके सत्य सिद्ध नहीं किया जा सकता है। अतः प्रयोगात्मक सत्यापन के अभाव में इस प्रकार के संप्रत्ययों को आधार बनाकर व्यक्तित्व के संबंध में किसी प्रकार का सामान्यीकरण करना उचित प्रतीत नहीं होता है।

(4) जन्मक्रम के संप्रत्यय का वैज्ञानिक अध्ययन संभव नहीं – प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक किस्ट के अनुसार एडलर द्वारा दिये गये जन्मक्रम के संप्रत्यय का वैज्ञानिक विधि द्वारा अध्ययन संभव नहीं है। जन्म के क्रम के साथ शीलगुणों को जोड़ना अत्यन्त कठिन है। इसका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। प्रिय पाठकों, उपर्युक्त विवेचन से आप भली–भांति जान गये होंगे कि एडलर का ''वैयक्तिक मनोविज्ञान का सिद्धान्त'' कया है तथा यह किन–किन मूल आवश्यकताओं पर आधारित है। अनेक प्रकार की आलोचनाओं के बावजूद भी इस सिद्धान्त का भरसक प्रयास किया है।

अभ्यासार्थ प्रश्न (खण्ड ख)

प्रिय विद्यार्थियों, नीचे दिये गये रिक्त स्थानों की पूर्ति उपयुक्त शब्द लिखकर कीजिए–

1. एडलर के अनुसार व्यक्तित्व जैविक नहीं ....कारकों द्वारा प्रभावित होता है।
2. एडलर के व्यक्तित्व सिद्धान्त को ....का सिद्धान्त कहते हैं।
3. एडलर के अनुसार व्यक्ति की जीवनशैली ....शक्ति द्वारा निर्धारित होती है।
4. पूर्णता का प्रयास एक ....प्रक्रिया है।
5. सामाजिक अभिरूचि ....का बैरोमीटर है।

6.5 युंग का विश्लेषणात्मक सिद्धान्त

प्रिय पाठकों, एडलर की तरह युंग भी फ्रायड के सहयोगी थे। किन्तु वैचारिक मतभेद के कारण उन्होंने फ्रायड से अपना रिश्ता तोड़कर व्यक्तित्व की एक नई अवधारणा को जन्म दिया, जिसे हम व्यक्तित्व के विश्लेषणात्मक सिद्धान्त के नाम से जानते हैं। कार्ल युंग ने अपने सिद्धान्त में व्यक्तित्व के अनेक आयामों का बारीकी से अध्ययन किया। विद्यार्थियों, यदि हम युंग के सिद्धान्त का गहन विश्लेषण करें, तो इसका अध्ययन निम्नांकित बिन्दुओं के अन्तर्गत कर सकते हैं–

1. व्यक्तित्व की परिभाषा/अवधारणा
2. व्यक्तित्व का तंत्र या संरचना
3. व्यक्तित्व की गतिकी
4. व्यक्तित्व का विकास
5. युंग की अध्ययन विधियाँ

प्रिय पाठकों, सबसे पहले हम चर्चा करते हैं कि युंग ने व्यक्तित्व को किस रूप में परिभाषित किया है।

6.5.1 व्यक्तित्व की परिभाषा–

पाठकों, क्या आप जानते हैं कि युंग ऐसे मनोवैज्ञानिक हैं जिन्होंने व्यक्तित्व के लिये मन शब्द का भी प्रयोग किया है। उन्होंने व्यक्तित्व को व्यक्ति की मौलिक सम्पूर्णता के रूप में परिभाषित करने का प्रयास किया है। युंग के अनुसार व्यक्तित्व से आशय एक

प्रकार की सम्पूर्णता से हैं, जिसमें उस व्यक्ति की सभी चेतन एवं अचेतन प्रक्रियायें, भाव, चिन्तन, व्यवहार इत्यादि सम्मिलित हैं। युंग ने भी आलपोर्ट के समान इस तथ्य को स्वीकार किया कि व्यक्तित्व हमें भौतिक एवं सामाजिक पर्यावरण के साथ समायोजन करने में मदद करता है। युंग के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का चरम लक्ष्य उक्त सम्पूर्णता का आदर्श विकास करना होता है। व्यक्ति अपनी मौलिक सम्पूर्णता को जितना अधिक विकसित करता है, उसका व्यक्तित्व उतना ही अधिक परिष्कृत होता जाता है।

6.5.2 व्यक्तित्व का तंत्र या संरचना–

पाठकों, युंग के अनुसार व्यक्तित्व की प्रमुख संरचनायें निम्न हैं–

1. चेतन एवं अहं
2. अचेतन
    - क. व्यक्तिगत अचेतन
    - ख. सामुहिक अचेतन
3. आदिरूप
4. मनोवृत्ति एवं प्रकार्य
5. मनोवैज्ञानिक प्रकार

6.5.3 व्यक्तित्व की गतिकी–

प्रिय पाठकों, युंग के अनुसार व्यक्तित्व एक जटिल उर्जा तंत्र है। युंग ने भी शारीरिक एवं मानसिक दोनों प्रकार की उर्जाओं के अस्तित्व को स्वीकार किया। युंग को मानना है कि दैहिक उर्जा को मानसिक उर्जा में तथा मानसिक को दैहिक उर्जा में बदला जा सकता है। युंग ने फ्रायड द्वारा दिये गये लिविडो को स्वीकार तो किया है, किन्तु इसे पूरी तरह मात्र एक पौन उर्जा नहीं माना। युंग के अनुसार लिविडो के दो रूप हैं–

क. एक सामान्य जीवन उर्जा तथा

ख. दूसरी एक संकुचित मानसिक उर्जा

ये दो प्रकार की उर्जायें व्यक्तित्व द्वारा किये जाने वाले कार्यो को उर्जा प्रदान करती हैं।

पाठकों, कार्य युंग ने भौतिकी के नियमों के माध्यम से मानसिक उर्जा के कार्यो को स्पष्ट करने का प्रयास किया है तथा इस संबंध में निम्न तीन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है–

1. विलोम का नियम
2. तुल्यता का नियम

3. इन्ट्रोपी का नियम

6.5.4 व्यक्तित्व का विकास–

प्रिय पाठकों, फ्रायड आदि मनोवैज्ञानिकों के समान युंग ने भी व्यक्तित्व विकास की अनेक अवस्थाओं का विवेचन किया है। युंग के अनुसार मनुष्य का व्यक्त्वि अनेक अवस्थाओं से होकर गुजरता है और अन्ततः वैयक्तिकीकरण की ओर बढ़ता है। युंग के अनुसार व्यक्तित्व का विकास अनुक्रम के माध्यम से होता है। अनुक्रम का तात्पर्य यह है कि लिविडों का प्रवाह आगे की दिशा की ओर होता है। पीछे की दिशा की ओर नहीं।

प्रिय पाठकों, युंग ने व्यक्तित्व विकास की निम्न चार अवस्थायें बतलायी हैं–

1. बाल्यावस्था
2. आरंभिक यौवनावस्था
3. मध्यावस्था
4. वृद्धावस्था

1. बाल्यावस्था–

युंग के अनुसार यह व्यक्तित्व विकास की प्रथम अवस्था है। जिस प्रकार बाल सूर्य में पूर्ण अन्तः शक्ति होती है अर्थात– सारी शक्तियाँ आन्तरिक रूपन से विद्यमान होती है, किन्तु चमकीलापन उतना नहीं होता है, उसी प्रकार बाल्यावस्था होती है। इस अवस्था में प्राणी में समस्त शक्तियाँ बीच रूप में आन्तरिक रूप से विद्यमान होती है, जो समय एवं परिस्थिति के अनुसार कालक्रम के साथ विकसित होती है। युंग के अनुसार बाल्यावस्था के निम्न तीन उपभाग हैं–

क. अराजक
ख. राजतंत्रीय
ग. तथा द्वैतवादी

2.आरंभिक यौवनावस्था–

व्यक्तित्व विकास की यह दूसरी अवस्था है, जो अत्यन्त महत्वपूर्ण है। तरूणावस्था से मध्यावस्था के समय को यौवनावस्था कहते हैं। युंग के अनुसार इस अवधि में व्यक्ति की प्रवृत्ति मुख्य रूप से बहिर्मुखी होती है तथा चेतन की भूमिका प्रधान रूप से होती है। यौवनावस्था में व्यक्ति अपने अनेक कार्य पूरा करता है जैसे– शिक्षा पूरी करना, जीविकोपार्जन हेतु नौकरी या व्यवसाय करना इत्यादि। इस अवस्था में व्यक्ति अपना स्वतंत्र अस्तित्व कायम करने की इच्छा से माता–पिता से शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वतंत्र होना चाहता है। युंग के अनुसार व्यक्तित्व विकास की अस अवस्था में व्यक्ति का सामना वास्तविकता एवं व्यावहारिकता से होता है। एक प्रकार से यह जिन्दगी की दोपहर होती है।

3.मध्यावस्था–

युंग के अनुसार मध्यावस्था एक प्रकार से आत्मबोध की अवस्था है। यह लगभग 35–40 साल से शुरू होती है। इस अवस्था तक व्यक्ति अपनी स्वयं की पहचान बना चुका होता है। उसका अपना परिवार बस चुका होता है, व्यवसाय स्थापित हो चुका होता है। युंग के अनुसार इस अवस्था में व्यक्ति आत्मचिन्तन एवं मनन करता है कि उसने क्या खोया और क्या पाया? कभी–कभी उसे लगता है कि जो कुछ उसे अपनी जिन्दगी में हासिल करना था। उसे वह प्राप्त कर चुका है और अब कुछ भी प्राप्त करना शेष नहीं है। अतः कभी–कभी उसमें निराशा का भाव भी उत्पन्न होने लगता है। युंग के अनुसार मध्यावस्था एक प्रकार से जिन्दगी का अपराह्न है।

4.वृद्धावस्था–

व्यक्तित्व विकास की यह अंतिम अवस्था है, जिसे युंग ने जिन्दगी की शाम कहा है। युंग ने बाल्यावस्था की तुलना उगते हुये सूर्य से की तथा वृद्धावस्था की तुलना अस्त होते हुये सूर्य से। इसमें व्यक्ति की चेतन क्रियायें कम होने लगती है और धीरे–धीरे वह अचेतन की ओर उन्मुख होता है। इस अवस्था में व्यक्ति को यह अहसास होने लगता है कि वह मृत्यु के करीब है। अतः व्यक्ति अपनी आन्तरिक अनुभूतियों को प्रधानता देता है।

प्रिय पाठकों, इस प्रकार आप जान चुके हैं कि किस प्रकार व्यक्तित्व का क्रमशः विकास होता है।

पाठकों, व्यक्तित्व विकास के अध्ययन के उपरान्त अब हम चर्चा करते हैं, युंग की अध्ययन की विधियों के बारे में।

6.5.5 युंग की अध्ययन विधियाँ–

पाठकों, युंग ने व्यक्तित्व के गहन तथा व्यापक अध्ययन एवं विश्लेषण के लिये अनेक विधियों का प्रतिपादन किया, जिनमें निम्न दो प्रमुख हैं–

क. शब्द साहचर्य परीक्षण

ख. लक्षण विश्लेषण

क. शब्द साहचर्य परीक्षण–

इस परीक्षण का प्रयोग अचेतन की मनोग्रन्थियों को समझने के लिये किया जाता है। यह एक प्रक्षेपण विधि है, जिसे अप्रत्यक्ष परीक्षण विधि भी कहा जा सकता है। इसमें व्यक्ति को उद्दीपक शब्द सुनाया जाता है। उसे सुनकर व्यक्ति के मन में जो शब्द सबसे पहले आता है, उसे वह शब्द बतलाना होता है। व्यक्ति विशेष द्वारा जो शब्द बतलाये जाते हैं। उस आधार पर उसके अचेतन मन की ग्रन्थियों को समझने का प्रयास किया जाता है।

ख. लक्षण विश्लेषण–

इस विधि में व्यक्ति या रोगी द्वारा जो लक्षण बतलाये जाते है, उनको ध्यान में रखकर अचेतन मन को समझकर समस्या का समाधान किया जाता है।

6.5.6 युंग के सिद्धान्त का मूल्यांकन–

गुण– प्रिय पाठकों, युंग द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व सिद्धान्त के कुछ गुण है, जिनका विवेचन निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है–

1. सामूहिक अचेतन का संप्रत्यय–

युंग ने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में ''सामूहिक अचेतन'' नामक नवीन संप्रत्यय का प्रतिपादन किया। मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि यह अचेतन मन के स्वरूप का ठीक प्रकार से समझने की दिशा में एक अत्यन्त प्रशंसनीय कदम है।

2. मनोवैज्ञानिक प्रकार–

युंग ने व्यक्तित्व की संरचना के अन्तर्गत मनोवैज्ञानिक प्रकार में आठ प्रकार के व्यक्तित्व प्रकारों का विवेचन किया है। जैसे कि बहिर्मुखी चिन्तन प्रकार, बहिर्मुखी भाव प्रकार, अन्तर्मुखी चिन्तन प्रकार, अन्तर्मुखी भाव प्रकार इत्यादि। मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि इन मनोवैज्ञानिक प्रकारों का शोधपरक मूल्य अत्यधिक ऊँचा है। अतः इस दृष्टि से भी युंग के व्यक्तित्व सिद्धान्त का अत्यन्त महत्व है।

3. वैयक्तिकीकरण का संप्रत्यय–

युंग के वैयक्तिकीकरण के संप्रत्यय को भी अनेक मनोवैज्ञानिकों विशेष रूप से मैस्लो द्वारा अत्यधिक सराहा गया। मैस्लो का मानना है कि उनके द्वारा दिये गये आत्मसिद्धि के संप्रत्यय का वास्तविक आधार युंग का वैयक्तिकीकरण का संप्रत्यय ही है।

4. व्यवहार के निर्धारण में भविष्य की भूमिका–

युंग के द्वारा प्रतिपादित इस विचार को कि व्यक्ति के व्यवहार के निर्धारकों में भविष्य भी एक महत्वपूर्ण कारक है, अनेक मनोवैज्ञानिकों द्वारा सराहा गया। खासकर हेनरी मर्रे एवं एडलर के व्यक्तित्व सिद्धान्त पर इसकी छाप अधिक स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है।

5. शब्द साहचर्य परीक्षण–

युंग ने व्यक्तित्व संरचना, गति एवं विकास का अध्ययन करने के लिये शब्द साहचर्य परीक्षण का प्रतिपादन किया, जो आगे चलकर रोशार्क परीक्षण, झूठ संस्रचना प्रविधि इत्यादि मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के निर्माण के लिये एक प्रेरणा स्रोत बना।

सीमाएँ–

पाठकों, युंग के व्यक्तित्व सिद्धान्त के प्रमुख अवगुण निम्न हैं–

1. संगतता एवं क्रमबद्धता का अभाव–

आलोचकों के मतानुसार युंग के सिद्धान्त में संगतता एवं क्रमबद्धता का अभाव है। विरोधी तथ्यों से परिपूर्ण होने के कारण शुरू से लेकर अन्त तक यह पता ही नहीं चल पाता कि समग्र रूप से व्यक्तित्व के बारे में उनकी क्या अवधारणा है।

2. अवैज्ञानिक एवं आत्मनिष्ठ–

आलोचकों का यह भी मानना है कि युंग के सिद्धान्त में धर्म, अलौकिकता एवं रहस्यवादी विचारों की अधिकता है। अतः यह एक वैज्ञानिक सिद्धान्त नहीं है।

3. आदिरूप का संप्रत्यय एक अर्थहीन संप्रत्यय–

एडवार्ड ग्लोवर के अनुसार युंग का आदिरूप का संप्रत्यय अर्थहीन है।

प्रिय पाठकों, उपर्युक्त विवेचन से आप समझ गये हैं कि युंग के व्यक्तित्व सिद्धान्त की क्या महत्ता है एवं क्या–क्या सीमायें है। कुछ कमियाँ होने के बावजूद भी युंग का व्यक्तित्व सिद्धान्त विशेष रूप से अमेरिकी मनोवैज्ञानिकों के बीच अत्यन्त लोकप्रिय रहा है और उनके सिद्धान्त को लेकर आज भी अनेक शोध अनुसंधान किये जा रहे हैं।

6.6 फ्रायड बनाम एडलर बनाम युंग–

प्रिय विद्यार्थियों क्या आप जानते हैं कि मनोविज्ञान के इतिहास में एडलर एवं युंग को फ्रायड के दो प्रमुख विरोधी मनोवैज्ञानिकों के रूप में जाना जाता है। इन तीनों मनोवैज्ञानिकों ने एक खास ढंग से व्यक्तित्व की व्याख्या की है, जिनका अध्ययन आप कर चुके हैं। अतः यह जानना भी अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि इनके बीच क्या–क्या समनतायें एवं विभिन्नतायें हैं।

तो आइये सबसे पहले चर्चा करते हैं, हम फ्रायड एवं युंग के व्यक्तित्व सिद्धान्त के बारे में।

(फ्रायड बनाम युंग)

1. फ्रायड एवं युंग दोनों ने ही मानसिक उर्जा के संप्रत्यय को स्वीकार किया है, किन्तु फिर भी दोनों में अन्तर है। फ्रायड के अनुसार मानसिक उर्जा का स्रोत यौन मूलप्रवृत्ति है तथा युंग के अनुसार शारीरिक प्रक्रिया है।
2. दोनों ने ही अचेतन के संप्रत्यय को स्वीकार किया किन्तु फ्रायड के अचेतन केवल व्यक्तिगत होता है, जबकि युंग ने अचेतन के दो भेद किये–

   क. व्यक्तिगत अचेतन एवं

   ख. सामूहिक अचेतन

3. फ्रायड के अनुसार व्यक्ति के व्यवहार के निर्धारण में मात्र गत अनुभूतियों की भूमिका होती है, जबकि युंग के अनुसार व्यवहार के निर्धारण में गत अनुभूतियों के साथ–साथ भविष्य के लक्ष्यों की भूमिका भी होती है।

तो पाठकों, इस प्रकार आप जान चुके है कि फ्रायड एवं युंग के व्यक्तित्व सिद्धान्त में क्या–क्या समानतायें एवं क्या–क्या विभिन्नतायें हैं।

(फ्रायड तथा एडलर)

1. फ्रायड ने जैविक कारकाकें को व्यवहार का प्रमुख निर्धारक माना है, जबकि एडलर ने सामाजिक कारकों पर बल डाला है।

2. फ्रायड ने वर्तमान व्यवहार का मुख्य कारण व्यक्ति की गत अनुभूतियों को माना है जबकि एक मात्र जन्मक्रम के संप्रत्यय को छोड़कर एडलर ने भविष्य के लक्ष्यों को ही व्यवहार का निर्धारक माना है। उन्होंने व्यक्ति के व्यवहार के निर्धारण में नियतिवाद या गत अनुभूतियों के महत्व को मान्यता नहीं दी।

3. फ्रायड ने यौन प्रणोद को ही मनुष्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रणोद माना जबकि एडलर ने अन्तिम रूप से व्यक्ति की सामाजिक अभिरूचित का उसका सबसे प्रमुख प्रणोद माना।

4. फ्रायड ने अपने सिद्धान्त में अचेतन मन पर सर्वाधिक बल दिया है, जबकि एडलर ने चेतन मन पर।

5. एडलर ने अपने सिद्धान्त में व्यक्ति विशेष की अपूर्णता एवं व्यक्तित्व की अविभाष्यता पर बल दिया है, जबकि फ्रायड के सिद्धान्त में इन बातों पर बल नहीं डाला गया है।

तो पाठकों, उपर्युक्त विवेचन से आप भली–भाँति जान गये हैं कि फ्रायड तथा एडलर का व्यक्तित्व सिद्धान्त किस प्रकार एक दूसरे से अलग है।

(खण्ड ग)

अभ्यासार्थ प्रश्न–

नीचे कुछ कथन दिये गये हैं, जो कथन सत्य हो, उनके आगे कोष्ठक में सही का तथा जो असत्य हो, उनके सामने क्रास का निशान लगायें–

1. युंग ने व्यक्तित्व के लिये मन शब्द का भी प्रयोग किया है। ( )

2. फ्रायड के समान युंग ने मानसिक उर्जा के संप्रत्यय को स्वीकार नहीं किया है। ( )

3. युंग के अनुसार मनुष्य के व्यवहार के निर्धारण में केवल गत अनुभूतियों की भूमिका होती है।( )

4. युंग के अनुसार अचेतन केवल व्यक्तिगत होता है। ( )

5. युंग के अनुसार वृद्धावस्था आत्मबोध की अवस्था है। ( )

6.7 सारांश–

जिज्ञासु विद्यार्थियों, उपर्युक्त विवेचन से आप फ्रायड, एडलर एवं युंग तीनों मनोवैज्ञानिकों के व्यक्तित्व सिद्धान्त को जान गये हैं। फ्रायड के सिद्धान्त को मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त, एडलर के सिद्धान्त को वैयक्तिक मनोविज्ञान का सिद्धान्त तथा युंग के सिद्धान्त को विश्लेषणात्मक सिद्धान्त कहा जाता है। इन तीनों ही विद्वानों ने व्यक्तित्व को एक खास ढंग से परिभाषित किया है। एडलर एवं युंग दोनों ही फ्रायड के निकट सहयोग रहे हैं, किन्तु वैचारिक भिन्नता के कारण यही दोनों (एडलर एवं युंग) फ्रायड के प्रमुख विरोधी के रूप में भी जाने गये। इन तीनों मनोवैज्ञानिकों के सिद्धान्तों की अपनी महत्ता एवं सीमायें है। कुछ अवधारणाओं के आधार पर इनमें समानतायें हैं, तो कुछ विभिन्नतायें भी हैं।

6.7 शब्दावली –

जन्मजात – जन्म से ही उत्पन्न
लिपिडो – यौन ऊर्जा
येनोटोस – मृत्यु मूल प्रवृत्ति
इरोस – जीवन मूल प्रवृत्ति
प्रक्षेपण – अपनी ईच्छाओं, प्रेरणाओं को दूसरे व्यक्तियों पर आरोपित कर देना।
दमन – असामाजिक, अनैतिक, अतार्किक, कामुक इच्छाओं एवं भावनाओं को चेतन मन से हटाकर अचेतन मन में दबा देना।
विस्थापन – इसमें व्यक्ति अपने संवेग को अचेतन रूप से किसी व्यक्ति विशेष या वस्तुविशेष से हटाकर दूसरे व्यक्ति या वस्तु से संबधित कर लेना।
प्रतिगमन – तनाव या चिंता कम करने के लिये व्यक्ति के अपने बचपन के व्यवहारों की ओर लौटने की प्रवृत्ति।
यौक्तिकीकरण – अतार्किक इच्छाओं को तार्किक या युक्ति संगत बनाकर तनाव कम करने की प्रवृत्ति

प्रतिक्रिया निर्माण – इसमें व्यक्ति अपनी चिन्ता को दूर करने के लिये अप्रिय इच्छा के ठीक विपरीत ईच्छा विकसित कर लेता है। जैसे भ्रष्ट नेता द्वारा भ्रष्टाचार के विरोध में भाषण देना प्रतिक्रिया निर्माण का एक अच्छा उदाहरण है।

6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(खण्ड क)

1. मनोविश्लेषणात्मक
2. जीवन मूल प्रवृत्ति
3. येनाटोस
4. अव्यक्तावस्था
5. पाँच

(खण्ड ख)

1. समाजिक कारकों
2. वैयक्तिक मनोविज्ञान
3. सर्जनात्मक शक्ति
4. जन्मजात
5. मानसिक स्वास्थ्य

6.9 सन्दर्भ गंथ सूची

★ सिंह, अरूण कुमार, उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान। मोतीलाला बनारसीदास, बंगलोरोड, जवाहर नगर, दिल्ली।

★ सिंह, अरूण कुमार। व्यक्तित्व मनोविज्ञान। मोतीलाला बनारसीदास, बंगलोरोड, दिल्ली।

6.10 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न – 1__फ्रायड के मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

प्रश्न – 2_ एडलर के वैयक्तिक मनोविज्ञान के सिद्धान्त का विस्तृत विवेचन कीजिए।

प्रश्न – 3_युंग के व्यक्त्तिव के विश्लेषणात्मक सिद्धान्त पर प्रकाश डालिये।

इकाई–7 एरीक्सन का सिद्धान्त

इकाई की संरचना

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 एरीक्सन का व्यक्तित्व का मनोसामाजिक सिद्धान्त

7.3.1 मानव प्रकृति के संबंध में पूर्वकल्पनायें

7.3.2 मनोसामाजिक विकास की अवस्थायें

7.4 एरीक्सन के सिद्धान्त का मूल्यांकन

7.5 सारांश

7.6 शब्दावली

7.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

7.9 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना–

जिज्ञासु पाठको इससे पूर्व की ईकाई में आप व्यक्तित्व के विभिन्न सिद्धान्तों का अध्ययन कर चुके है। जैसे कि मैस्लो का व्यक्तित्व का मानवतावादी सिद्धान्त, फ्रायड का मनोविष्लेषणात्मक सिद्धान्त, एडलर का वैयक्तिक मनोविज्ञान का सिद्धान्त, चुंग का विष्लेषणात्मक सिद्धान्त इत्यादि। प्रस्तुत इकाई में हमारे अध्ययन का विषय है– इरिक एरीक्सन के व्यक्तित्व सिद्धान्त को जानना–समझना। एरीक्सन के व्यक्तित्व सिद्धान्त को व्यक्तित्व का मनोसामाजिक सिद्धान्त (Psychosocial theory of persanality) नाम दिया गया, जिसमें एरीक्सन ने व्यक्तित्व के विकास एवं संगठन की व्याख्या करने के लिये समाज एवं व्यक्ति दोनों की ही भूमिका को स्वीकार किया हैं।

तो आइये, हम चर्चा करते हैं कि व्यक्तित्व का यह मनोसामाजिक सिद्धान्त क्या है? इसकी मूल मान्यतायें क्या है? इस सिद्धान्त के अनुसार किस प्रकार से एक व्यक्ति का व्यक्तित्व विकसित होता है? इस विकास को कौन–कौन से कारक प्रभावित करते है? इत्यादि

7.2 उद्देश्य–

प्रिय विद्यार्थियों, प्रस्तुत ईकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप–

★ एरीक्सन का व्यक्तित्व सिद्धान्त क्या है?– इसका अध्ययन कर सकेंगे।

★ मानव प्रकृति के संबंध में एरीक्सन की धारणाओं को स्पष्ट कर सकेंगे।

★ मनुष्य का मानसिक एवं सामाजिक विकास किस प्रकार से होता है– इसे स्पष्ट कर सकेंगे।

★ एरीक्सन के व्यक्तित्व सिद्धान्त का विश्लेषण कर सकेंगे।

7.3 इरिक इरीक्सन का व्यक्तित्व का मनोसामाजिक सिद्धान्त–

प्रिय पाठको, इरिक इरिप्सन (1902) मनोविज्ञान के क्षेत्र में अहं मनोवैज्ञानिक के रूप में प्रसिद्ध है। इनके द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व सिद्धान्त फ्रायड के मनोविष्लेषणात्मक सिद्धान्त से भी काफी प्रभावित है तथापि इन्होंने अपने सिद्धान्त में कुछ ऐसे कारकों को भी महत्व दिया है, जिनकी चर्चा फ्रायड ने नहीं की है। जैसे कि इरिप्सन ने मानवीय व्यक्तित्व के विकास में सामाजिक एवं ऐतिहासिक कारकों की भूमिका को भी स्वीकार किया है। इसलिये इनके सिद्धान्त को व्यक्तित्व के मनोसामाजिक सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है।

7.3.1 मानव प्रकृति के संबंध में पूर्वकल्पनायें– प्रिय पाठको, प्रायः प्रत्येक मनोवैज्ञानिक ने मानव स्वभाव के संबंध में अपनी कुछ धारणाओं, मान्यताओं का प्रतिपादन किया है। अतः मानव प्रकृति के संबंध में इरिप्सन की भी कतिपय (कुछ) पूर्वकल्पनाये अर्थात् मान्यतायें है। जिनसे हमें उनके व्यक्तित्व सिद्धान्त को समझने

में काफी हद तक सहायता मिलती है। तो आइये, जाने कि इरिप्सन की मानव स्वभाव के संबंध में क्या–क्या धारणायें है? इनका विवेचन निम्नानुसार है–

1. इरिप्सन ने मानवीय प्रकृति में तीन तत्वों को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना हैं, जो निम्न है–

a. पूर्णतावाद
b.पर्यावरणीयता
c. परिवर्तनषीलता

2. इरिप्सन ने मानव प्रवृति के कुछ अन्य पक्षों जैसे कि वस्तुनिष्ठता (alijeetivity) अग्रलक्षता (Proactivity) निर्धार्यता (Determinism) ज्ञेयता (Knowlability) विषम स्थिति (heterastasis) को अपने सिद्धान्त में अन्य पहलुओं की अपेक्षा कम महत्व प्रदान किया है।

ने अपना ध्यान मूल रू॰ से इस बात पर केन्द्रित किया है कि अहं का विकास किस प्रकार से होता है तथा इसके कार्य क्या–क्या है? अहं के विकास एवं कार्यों से उपाहं (id) तथा पराहं (Super igo) के विकास कार्यों के संबंध न के बराबर है।

प्रिय विद्यार्थियों, वस्तुतः के सिद्धान्त की मूल मान्यता यह है कि मानव मानवीय व्यक्तित्व कई अवस्थाओं से गुजरकर विकसित होता है और ये अवस्थायें शाष्वत एवं पहले से निष्चित होती है। इतना ही नहीं विकास की ये अवस्थायें विषिष्ट नियम द्वारा संचालित एवं नियंत्रित होती है जिसे <u>पष्चजात नियम</u> (Epigenetic puincipte) कहते है।

मनोसामाजिक अहं विकास की अवस्थाओं की विषेषतायें–

प्रिय विद्यार्थियों, इरिप्सन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ‘childhood and society, 1963’ में मनोसामाजिक अहं विकास की 8 अवस्थायें बतायी है। इरिप्सन के अनुसार विकास की प्रत्येक अवस्था होने का एक आदर्ष समय है। प्रत्येक अवस्था क्रमषः एक के बाद एक आती है और व्यक्तित्व क्रमषः विकसित होता जाता है।

के अनुसार व्यक्तित्व का यह विकास जैविक परिपक्वता तथा समाजिक एवं ऐतिहासिक बलों में अन्तः क्रिया के परिणामस्वरूप होता है। इन मनोसामाजिक विकास की अवस्थाओं की कतिपय महत्त्वपूर्ण विषेषतायें है, जिनका विवेचन निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है–

1. के अनुसार मनोसामाजिक विकास की अवस्था की प्रथम महत्त्वपूर्ण विषेषता ”संक्रान्ति” है। संक्रान्ति का अर्थ है– प्राणी के जीवन का एक ऐसा टर्निंग पाइन्ट (Turning paint) जो उस स्थिति में व्यक्ति की

जैविक परिपक्वता एवं सामाजिक माँग दोनों के बीच अन्तः क्रिया होने के कारण उत्पन्न होता है।

2. का मानना है कि प्रत्येक मनोसामाजिक संक्रान्ति में सकारात्मक (धनात्म) तथा नकारात्मक (ऋणात्मक) तत्व दोनों ही विद्यमान होते है। प्रत्येक अवस्था में जैविक परिपक्वता एवं नयी–नयी सामाजिक माँगों के कारण द्वन्द्व होना स्वाभाविक ही है यदि व्यक्ति इस द्वन्द्व से बाहर निकल आता है तो उसका व्यक्तित्व स्वस्थ रूप से विकसित होता जाता है और इसके विपरीत यदि वह इस समस्या का समाधान नही कर पाता है तो व्यक्तित्व का विकास अवरूद्ध हो जाता है तथा व्यक्तित्व संबंधी कई विकार उत्पन्न हो जाते है।

3. का मानना है कि व्यक्ति को प्रत्येक मनोसामाजिक विकास की अवस्था की संक्रान्ति का समाधान करना चाहिये क्योंकि ऐसा न होने पर अगली अवस्था में व्यक्ति के व्यक्तित्व का सुनियोजित एवं उत्त्म तरीके से विकास नहीं हो पाता है। जब व्यक्ति संक्रान्ति का समाधान कर लेता है तो उसमें एक विषिष्ट मनोसामाजिक शक्ति उत्पन्न होती है। इस शक्ति को ने सदाचार कहा है।

4. इरिप्सन के अनुसार मनोसामाजिक विकास की प्रत्येक अवस्था में तीन आर होते है है जिन्हें तीन आर (Eripson three R's) की संज्ञा दी गई है। ये तीन आर (R) हैं–

अ. कर्मकांडता (Ritualization)

ब. कर्मकांड (Ritual)

स. कर्मकांडवाद (Ritualism)

अ. **कर्मकांडता (Ritualization)**– इरिक्सन के अनुसार कर्मकांडता का अर्थ है– " समाज के व्यक्तियों के साथ सांस्कृतिक रूप से स्वीकार किये गये तरीके से व्यवहार या अन्तः क्रिया करना।"

ब. **कर्मकांड (Ritual)** – कर्मकांड का अर्थ है–" वयस्क लोगों के समूह द्वारा आवृत्ति स्वरूप की मुख्य घटनाओं को दिखाने के लिये किये गये कार्य।"

स. **कर्मकांडवाद (Ritualism)** – कर्मकांडता में जो विकार उत्पन्न होता है उसे इरिक्सन ने कर्मकांडवाद का नाम दिया है। इसमें प्राणी स्वयं अपने ऊपर ध्यान केन्द्रित करता है।

5. इरिक्सन के अनुसार प्रत्येक मनोसामाजिक अवस्था का निर्माण उससे पूर्व की स्थिति में हुये विकासों से संबंध रखता है।

इस प्रकार जिज्ञासु पाठकों, आपने जाना कि मनोसामाजिक विकास की अवस्थाओं की कुछ महत्त्वपूर्ण विषेषतायें है, जिनको समझने के बाद हम इरिक्सन ने व्यक्तितव के विकास की जो अवस्थायें बतायी है, उनको आसानी से समझ सकते हैं।

7.3.2– मनोसामाजिक विकास की अवस्थायें–

प्रिय विद्यार्थियों जैसा कि आप जानते हैं कि प्रत्येक मनोवैज्ञानिक ने अपने–अपने सिद्धान्त में व्यक्तित्व की विकास की कुछ अवस्थायें बतायी है, जो क्रमषः एक के बाद एक आती है और उनसे होकर मानवीय व्यक्तित्व क्रमषः विकसित होता जाता है।

इसी क्रम में इरिप्सन ने भी मनोसामाजिक विकास की आठ अवस्थाये बतायी है, जिनमें भिन्न–भिन्न प्रकार से मानवीय व्यक्तित्व विकसित होता है। इन अवस्थाओं का विवेचन निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत किया गया है–

(1) शौषवावस्थाः विष्वास बनाम अविष्वास (infancy: trust versus mistrust)

(2) प्रारंभिक बाल्यावस्थाः स्वतंत्रता बनाम लज्जाषीलता (Early childhood: Autonomy versus shame)

(3) खेल अवस्थाः पहल शक्ति बनाम दोषिता (play age: initiative versus gailt)

(4) स्कूल अवस्थाः परिश्रम बनाम हीनता (school age: indurtriy versus injerioritg)

(5) किषोरवस्थाः अहं पहचान बनाम भूमिका संभ्रान्ति (Adolescence: Ego identity versus role canfusion)

(6) तरूण वयस्कावस्थाः घनिष्ठ बनाम विलगन (Early adulthood: intimacy versus isolation)

(7) मध्यवयस्कावस्थाः जननात्मक्ता बनाम स्थिरता (middle adulthood: Genetatility versus stagnation)

(8) परिपक्वतारू अहं सम्पूर्णता बनाम निराषा (maturity: Ego integlity versus despair)

1. शौषवावस्थाः <u>विष्वास बनाम अविष्वास</u>– इरिप्सन के अनुसार मनोसामाजिक विकास की यह प्रथम अवस्था है, जो क्रायड के मनोविष्लेषणात्मक सिद्धान्त की व्यक्तित्व विकास की प्रथम अवस्था <u>मुख्यावस्था</u> से बहुत समानता रखती है। इरिप्सन की मान्यता है कि शौषवावस्था की आयु जन्म से लेकर लगभग 1 साल तक ही होती है। इस उम्र में माँ के द्वारा जब बच्चे का पर्याप्त देखभाल की जाती है, उसे भरपूर प्यार दिया जाता है तो

इरिप्सन के अनुसार बच्चे में सर्वप्रथम धनात्मक गुण विकसित होता है। यह गुण है– बच्चे का स्वयं तथा दूसरों में विष्वास तथा आस्था की भावना का विकसित होना। यह गुण आगे चलकर उस बच्चे के स्वस्थ व्यक्तित्व के विकास में योगदान देता है, किन्तु इसके विपरीत यदि माँ द्वारा बच्चे का समुचित ढंग से पालन–पोषण नहीं होता है, माँ बच्चे की तुलना में दूसरे कार्यों तथा व्यक्तियों को प्राथमिकता देती है तो इससे उस बच्चे में अविष्वास, हीनता, डर , आषंका, ईर्ष्या इत्यादि ऋणात्मक अहं गुण विकसति हो जाते हैं, जो आगे चलकर उसके व्यक्तित्व विकास को प्रभावित करते है। इरिप्सन का मत है कि जब शैषवास्था में बच्चा विष्वास बनाम अविष्वास के द्वन्द्व का समाधान ठीक–ठीक ढंग से कर लेता है तो इससे उसमें "आषा" नामक एक विषेष मनोसामाजिक शक्ति विकसित होती है।

आषा का अर्थ है–" एक ऐसी समझ या शक्ति जिसके कारण षिषु में अपने अस्तित्व एवं स्वयं के सांस्कृतिक परिवेष को सार्थक ढंग से समझने की क्षमता विकसित होती है।

2.<u>प्रारंभि बाल्यावस्थाः स्वतंत्रता बनाम लज्जाषीलता</u>– यह मनोसामाजिक विकास की

दूसरी अवस्था है, जो लगभग 2 साल से 3 साल की उम्र तक की होती है। यह क्रायड के मनोलैंगिक विकास की <u>"गुदाअवस्था"</u> से समानता रखती है।

इरिप्सन का मत है कि जब शैषवावस्था में बच्चे में विष्वास की भावना विकसित हो जाती है तो इस दूसरी अवस्था में इसके परिणामस्वरू <u>स्वतंत्रता</u> एवं <u>आत्मनियंत्रण</u> जैसे शीलगुण विकसित होते है। स्वतंत्रता का अर्थ यहाँ पर यह है कि माता–पिता अपना नियंत्रण रखते हुये स्वतंत्र रूप से बच्चों को अपनी इच्छानुसार कार्य करने दें। जब बच्चे को स्वतंत्र नहीं छोड़ा जाता है तो उसमें लज्जाषीलता, व्यर्थता अपने ऊपर शक, आत्महीनता इत्यादि भाव उत्पन्न होने लगते हैं, जो स्वस्थ व्यक्तित्व की निषानी नहीं है।

इरिप्सन के अनुसार जब बच्चा स्वतंत्रता बनाम लज्जाषीलता के द्वन्द्व को सफलतापूर्वक दूर कर देता है तो उसमें एक विषिष्ट मनोसामाजिक शक्ति उत्पन्न होती है, जिसे उसने <u>"इच्छाषक्ति"</u> (will power) नाम दिया है।

इरिप्सन के अनुसार इच्छा शक्ति से आषय एक ऐसी शक्ति से है, जिसके कारण बच्चा अपनी रूचि के अनुसार स्वतंत्र होकर कार्य करता है तथा साथ ही उसमें आत्मनियंत्रण एवं आत्मसंयम का गुण भी विकसित होता जाता है।

3. <u>खेल अवस्थाः पहलषक्ति बनाम दोषिता</u>– मनोसामाजिक विकास की यह तीसरी अवस्था क्रायड के मनोलैंगिक विकास की लिंगप्रधानवस्था से मिलती है। यह स्थिति 4 से 6 साल तक की आयु की होती है। इस उम्र तक बच्चे ठीक ढंग से बोलना, चलना, दोड़ना इत्यादि सीख जाते है। इसलिये उन्हें खेलने–कूदने नये कार्य करने, घर से बाहर अपने साथियों के साथ मिलकर नयी–नयी जिम्मेदारियों को निभाने में उनकी रूचि होती है। इस प्रकार के कार्य उन्हें खुषी प्रदान करते है। और उन्हें इस स्थिति में पहली बार इस बात का अहसास होता हद्दै कि उनकी जिन्दगी का भी कोई खास मकसद या लक्ष्य है, जिसे उन्हें प्राप्त करना ही चाहिये किन्तु इसके विपरीत जब अभिभावकों द्वारा बच्चों को

सामाजिक कार्यों में भाग लेने से रोक दिया जाता है अथवा बच्चे द्वारा इस प्रकार के कार्य की इच्छा व्यक्त किये जाने पर उसे दंडित किया जाता है तो इससे उसमें अपराध बोध की भावना का जन्म होने लगती है।

इस प्रकार के बच्चों में लैंगिक नपुंसकता एवं निष्क्रियता की प्रवृति भी जन्म लेने लगती है।

इरिप्सन के अनुसार जब बच्चा पहलषक्ति बनाम दोषिता के संघर्ष का सफलतापूर्वक हल खोज लेता है तो उसमें उद्‌देष्य नामक एक नयी मनोसामाजिक शक्ति विकसित होती है। इस शक्ति के बलबूते बच्चे में अपने जीवन का एक लक्ष्य निर्धारित करने की क्षमता तथा साथ ही उसे बिना की सी डर के प्राप्त करने की सामर्थ्य का भी विकास होता है।

4. स्कूल अवस्थाः परिश्रम बनाम हीनता– मनोसामाजिक विकास की यह चौथी अवस्था 6 साल की उम्र से आरंभ होकर लगभग 12 साल की आयु तक की होती है। यह क्रायड के मनोलैंगिक विकास की अव्यक्तावस्था से समानता रखती है। इस अवस्था में बच्चा पहली बार स्कूल के माध्यम से औपचारिक षिक्षा ग्रहण करता है। अपने आस–पास के लोगों, साथियों से किस प्रकार का व्यवहार करना, कैसे बातचीत करनी है इत्यादि व्यावहारिक कौषलों को वह सीखता है, जिससे उसमें परिश्रम की भावना विकसित होती है। यह परिश्रम की भावना स्कूल में षिक्षकों तथा पड़ौसियों से प्रोत्साहित होती है, किन्तु यदि किसी कारणवष बच्चा स्वयं की क्षमता पर सन्देह करने लगता है तो इससे उसमें आत्महीनता कीभावना आ जाती है, जो उसके स्वस्थ व्यक्तित्व विकास में बाधक बनती है। किन्तु यदि बच्चा परिश्रम बनाम हीनता के संघर्ष से सफलतापूर्वक बाहर निकल जाता है तो उसमें सामर्थ्यता नामक मनोसामाजिक शक्ति विकसित होती है। सामर्थ्यता का अर्थ है– किसी कार्य का पूरा करने में शारीरिक एवं मानसिक क्षमताओं का समुचित उपयोग।

5. किशोरावस्थाः अहं पहचान बनाम भूमिका संभ्रान्ति– इरिप्सन के अनुसार किषोरावस्था 12 वर्ष से लगभग 20 वर्ष तक होती है। इस अवस्था में किषोरों में दो प्रकार के मनोसामाजिक पहलू विकसित होते है। प्रथम है– अहं पहचान नामक धनात्मक पहलू तथा द्वितीय है– भूमिका संभ्रन्ति या पहचान संक्रान्ति नामक ऋणात्मक पहलू।

इरिप्सन का मत है कि जब किषोर अहं पहचान बनाम भूमिका संभ्रान्ति से उत्पन्न होने वाली समस्या का समाधान कर लेता है तो उसमें कर्तव्यनिष्ठता नामक विषिष्ट मनोसामाजिक शक्ति (pyychosocial strength) का विकास होता है। यहाँ कर्तव्यनिष्ठता का आषय है– किषोरों में समाज में प्रचलित विचारधाराओं, मानकों एवं षिष्टाचारों के अनुरूप व्यवहार करने की क्षमता। इरिप्सन के अनुसार किषोरों में कर्त्तव्यनिष्ठता की भावना का उदय होना उनके व्यक्तित्व विकास को इंगित करता है।

6. तरूण वयास्कावस्थाः घनिष्ठ बनाम विकृति– मनोसामाजिक विकास की इस छठी अवस्था में व्यक्ति विवाह का आरंभिक पारिवारिक जीवन में प्रवेष करता है। यह अवस्था 20 से 30 वर्ष तक की होती है। इस अवस्था में व्यक्ति स्वतंत्र रूप से जीविकोपार्जन प्रारंभ कर देता है तथा समाज के सदस्यों, अपने माता–पिता, भाई–बहनों

तथा अन्य संबंधियों के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित करता है। इसके साथ ही वह स्वयं के साथ भी एक घनिष्ठ संबंध स्थापित करता हैं, किन्तु इस अवस्था का एक दूसरा पक्ष यह भी है कि जब व्यक्ति अपने आप में ही खोये रहने के कारण अथवा अन्य किन्हीं कारणों से दूसरों के साथ संतोषजनक संबंध कायम नहीं कर पाता है तो इसे बिलगन कहा जाता है। विलगन (isolation) की मात्रा अधिक हो जाने पर व्यक्ति का व्यवहार मनोविकारी या गैर सामाजिक हो जाता है।

घनिष्ठता बनाम बिलगन से उत्पन्न समस्या का सफलतापूर्वक समाधान होने पर व्यक्ति में स्नेह नामक विषेष मनोसामाजिक शक्ति विकसित होती है। इरिप्सन के मतानुसार स्नेह का आषय है– किसी संबंध को कायम रखने के लिये पारस्परिक समर्पित होने की भावना या क्षमता का होना। जब व्यक्ति दूसरों के प्रति उत्तरदायित्व, उत्तम देखभाल या आदरभाव अभिव्यक्त करता है ते इस स्नेह की अभिव्यक्ति होती है।

7. मध्य वयास्कावस्थाःा जननात्मका बनाम स्थिरता– मनोसामाजिक विकास की यह सातवीं अवस्था है, जो 30 से 65 वर्ष की मानी गई है। इरिप्सन का मत है कि इस स्थिति में प्राणी में जननात्मकता की भावना विकसित होती है, जिसका तात्पर्य है व्यक्ति द्वारा अपनी भावी पीढ़ी के कल्याण के बारे में सोचना और उस समाज को उन्नत बनाने का प्रयास करना जिसमें वे लोग (भावी पीढ़ी के लोग) रहेंगे। व्यक्ति में जननात्मक्ता का भाव उत्पन्न न होने पर स्थिरता उत्पन्न होने की संभावना बढ़ जाती है, जिसमें व्यक्ति अपनी स्वयं की सुख–सुविधाओं एवं आवष्यकताओं को ही सर्वाधिक प्राथमिका देता है।

जब व्यक्ति जननात्मकता एवं स्थिरता से उत्पन्न संघर्ष का सफलतापूर्वक समाधान कर लेता है तो इससे व्यक्ति में देखभाल नामक एक विषेष मनोसामाजिक शक्ति का विकास होता है। देखभाल का गुणविकसित होने पर व्यक्ति दूसरों की सुख–सुविधाओं एवं कल्याण के बारे में सोचता है।

8. परिपक्वताः अहं सम्पूर्णता बनाम निराषा– मनोसामाजिक विकास की यह अंतिम अवस्था है। यह अवस्था 65 वर्ष तथा उससे अधिक उम्र तक की अवधि अर्थात् मृत्यु तक की अवधि को अपने में शामिल करती है। सामान्यतः इस अवस्था को वृद्धावस्था माना जाता है, जिसमें व्यक्ति को अपने स्वास्थ्य, समाज एवं परिवार के साथ समयोजन, अपनी उम्र के लोगों के साथ संबंध स्थापित करना इत्यादि अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इस अवस्था में व्यक्ति भविष्य की ओर ध्यान न देकर अपने अतीत की सफलताओं एवं असफलताओं का स्मरण एवं मूल्यांकन करता है। इरिप्सन के अनुसार इस स्थिति में किसी नयी मनोसामाजिक संक्रान्ति की उत्पत्ति नहीं होती है। इरिप्सन के मतानुसार परिपक्वता ही इस अवस्था की प्रमुख मनोसामाजिक शक्ति है। इस अवस्था में व्यक्ति वास्तविक अर्थों में परिपक्व होता है, किन्तु कुछ व्यक्ति जो अपनी जिन्दगी में असफल रहते है। वे इस अवस्था में चिन्तित रहने के कारण निराषाग्रस्त रहते हैं तथा अपने जीवन को भारस्वरूप समझने लगते हैं। यदि यह निराषा और दुष्चिन्ता लगातार बनी रहती है तो वे मानसिक विषाद से ग्रस्त हो जाते है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि इरिप्सन के अनुसार मनोसामाजिक विकास की आठ अवस्थायें हैख जिनसे होते हुये क्रमषः मानव का व्यक्तित्व विकसित होता है।

7.4– <u>इरिप्सन के सिद्धान्त का मूल्यांकन</u>– प्रिय पाठको, जैसा कि आप जानते है कि प्रत्येक सिद्धान्त की अपनी महत्ता तथा कुछ सीमायें होती है। कोई भी सिद्धान्त अपने आप में सम्पूर्ण नहीं होता है और इसी कारण आगे इन कमियों को दूर करने के लिये नये–नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन होता जाता है।

अतः इरिक इरिप्सन के व्यक्तित्व के मनोसामाजिक सिद्धांत की कुछ कमियाँ एवं विषेषतायें है, जिनकी चर्चा हम अब करेंगे।

तो आइये सबसे पहले हम जानें की इस सिद्धान्त के प्रमुख गुण या विषेषतायें क्या–क्या है?

<u>गुण</u>–

(i)**समाज एवं व्यक्ति की भूमिका पर बल–** इरिक्सन के व्यक्तित्व सिद्धान्त की सबसे खूबसूरत बात यह है कि इन्होंने व्यक्तित्व के विकास एवं संगठन को स्वस्थ करने में सामाजिक कारकों एवं स्वयं व्यक्ति की भूमिका को समान रूप से स्वीकार किया है।

(ii)**किषोरवस्था को महत्त्वपूर्ण स्थान**– इरिक्सन ने मनोसामाजिक विकास की जो आठ अवस्थायें बतायी है उनमें किषोरावस्था को अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। इरिक्सन के अनुसार किषोरावस्था व्यक्तित्व के विकास की अत्यन्त संवंदनषीलत अवस्था होती है। इस दौरान अनेक महत्त्वपूर्ण शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक परिवर्तन होते हैं जबकि फ्रायड ने अपने मनोविष्लेषणात्मक सिद्धान्त में इस अवस्था को अपेक्षाकृत कम महत्व दिया था।

(iii) **आषावादी दृष्टिकोण–** इरिप्सन के व्यक्तित्व सिद्धान्त की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषेषता यह है कि इनके सिद्धान्त में आषावादी दृष्टिकोण की झलक मिलती है। इरिप्सन का मानना है कि प्रत्येक अवस्था में व्यक्ति की कुछ कमियाँ एवं सामर्थ्य होती है। अतः व्यक्ति यदि एक अवस्था में असफल हो गया तो इसका आषय यह नहीं है कि वह दूसरी अवस्था में भी असफल ही होगा, क्योंकि खामियों के साथ–साथ सामर्थ्य भी विद्यमान है, जो प्राणी को निरन्तर आगे बढ़ने के लिये प्रेरित करती है।

(iv) **जन्म से लेकर मृत्यु तक की मनोसामाजिक घटनाओं को शामिल करना–** इरिप्सन ने अपने सिद्धान्त में व्यक्तित्व के विकास एवं समन्वय की व्याख्या करने में व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक की मनोसामाजिक घटनाओं को शामिल किया है, जो इसे अन्य सिद्धान्तों से अत्यधिक विषिष्ट बना देता है।

दोष– प्रिय विद्यार्थियों आलोचकों ने इरिक्सन के व्यक्तित्व सिद्धान्त की कुछ बिन्दुओं के आधार पर आलोचना की है, जिन्हें हम निम्न प्रकार से समझ सकते है–

1. आवष्यक्ता से अधिक आषावादी दृष्टिकोण– कुछ आलोचकों का कहना है कि इरिप्सन ने अपने सिद्धान्त में जरूरत से ज्यादा आषावादी दृष्टिकोण अपनाया है।

2. क्रायड के सिद्धान्त को मात्र सरल करना– कुछ आलोचक यह भी मानते है ंकि इरिप्सन कोई नया सिद्धान्त नहीं दिया वरन् उन्होंने क्रायड के मनोविष्लेषणात्मक सिद्धान्त को मात्र सरल कर दिया है।

3. प्रयोगात्मक समर्थन का अभाव– कुछ आलोचकों का यह भी मानना है कि इरिप्सन ने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में जिन तथ्यों एवं सप्रत्ययों का प्रतिपादन किया है, उनका आधार प्रयोग नहीं है, मात्र उनके व्यक्तिगत निरीक्षण ही हैं। अतः उनमें व्यक्तिगत पक्षपात होने की अधिक संभावना है।

इन तथ्यों में वैज्ञानिका एवं वस्तुनिष्ठता का अभाव है।

4. सामाजिक परिवेष से प्रभाविक हुये बिना भी व्यक्तित्व विकास संभव– कुछ आलोचकों का मानना है कि इरिप्सन की यह धारणा गलत है कि बदलते हुये सामाजिक परिवेष के साथ जब व्यक्ति समायोजन करता है, तब ही एक स्वस्थ व्यक्तित्व का विकास संभव है। आलोचकों के अनुसार कुछ ऐसे उदाहरण भी उपलब्ध है, जब व्यक्ति स्वयं सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित नहीं हुये और उन्होंने अपने विचारों से समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिये और उन्होंने अपने व्यक्त्त्वि का उत्तम एवं अपेक्षाकृत अधिक स्वस्थ तरीके से विकास किया।

5. अंतिम मनोसामजिक अवस्था की व्याख्या अधूरी एवं असन्तोष प्रद– शुल्ज का मानना है कि इरिप्सन के व्यक्तित्व सिद्धान्त की अंतिम आठवीं अवस्था परिपक्वता :अहं सम्पूर्णता बनाम निराषा अधूरी एवं असन्तोषप्रद है। इस अवस्था में व्यक्तित्व में उतना संतोषजनक विकास नहीं होता है, जितना इरिप्सन ने बताया है।

अभ्यास प्रश्न

नीचे कुछ कथन दिये गये है। जो कथन सत्य हो उनके आगे सही (√) का तथा जो असत्य हो उनके आगे (X) का चिन्ह् लगायें–

1. इरिक्सन का व्यक्तित्व का सिद्धान्त मनोविष्लेषणात्मक सिद्धान्त है। ()
2. इरिक्सन के अनुसार व्यक्तित्व के विकास की 9 अवस्थाये हैं। ()
3. इरिक्सन के अनुसार किषोरावस्था व्यक्तित्व विकास की पाँचवी अवस्था है। ()
4. इरिक्सन के अनुसार किषोरावस्था व्यक्तित्व विकास की चौथी अवस्था है। ()
5. इरिक्सन के अनुसार खेल अवस्था लगभग 4 से 6 साल तक की आयु की होती है। ()
6. इरिक्सन के अनुसार खेल अवस्था लगभग 6 से 8 साल तक की आयु की होती है। ()

7. इरिक्सन के अनुसार 12 साल से लगभग 20 साल तक की अवस्था किषोरावस्था होती है। ()
8. इरिक्सन के व्यक्तित्व के विकास की अवस्थाये मनोलैंगिक विकास की अवस्थायें है। ()
9. इरिक्सन के व्यक्तित्व विकास की अवस्थायें मनोसामाजिक विकास की अवस्थायें है। ()
10. इरिक्सन के व्यक्तित्व विकास की प्रारंभिक बाल्यावस्थाक्रायड के व्यक्तित्व सिद्धान्त की मुख्यावस्था के समान है। ()

7.5 सारांश–

प्रिय पाठकों, उपर्युक्त विवेचन से आप समझ ही गये होंगे कि इरिक इरिक्सन का व्यक्तित्व का मनोसामाजिक सिद्धान्त क्या है? इसकी मूल मान्यतायें क्या है? इरिक्सन के अनुसार व्यक्त्त्वि का विकास किस प्रकार होता है? इत्यादि। वस्तुतः इरिक्सन के सिद्धान्त की मूल विषेषता यह है कि इन्होंने व्यक्तित्व के विकास में सामाजिक एवं ऐतिहासिक कारकों तथा स्वयं व्यक्ति की भूमिका को समान रूप से स्वीकार किया है। साथ ही व्यक्तित्व के विकास की व्याख्या में व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक का अर्थात्– उसके सम्पूर्ण जीवन की घटनाओं को सम्मिलित किया है, क्योंकि इरिक्सन के अनुसार व्यक्तित्व भूतकाल एवं भविष्यकाल दोनों की घटनाओं को समान रूप से महत्व देता है। यद्यपि आलोचकों ने अनेक आधारों पर इस सिद्धान्त की आलोचना की है तथापि इरिक्सन के व्यक्तित्व के मनोसामाजिक सिद्धान्त की महत्ता को नकारा नहीं जा सकता।

7.6 शब्दावली–

वस्तुनिष्ठता – पक्षपात, पूर्वाग्रहों अथवा किसी व्यक्ति विषेष की मान्यताओं अथवा धारणों से रहित या मुक्त।

संक्रान्ति – व्यक्तिविषेष के जीवन का टर्निग प्वाइन्ट। (turning point)

द्वन्द्व – दो व्यक्ति, वस्तु, घटना या परिस्थिति का होना अर्थात्– उन दोनों में से किसी एक का निर्णय न कर पाने वाली स्थिति।

7.7अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1) असत्य (2) असत्य (3) सत्य (4) असत्य (5) सत्य

(6) असत्य (7) सत्य (8) असत्य (9) सत्य (10) असत्य

7.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

(i) सिंह, अरूण कुमार। उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान। मोतीलाला बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।

(ii) सिंह, अरूण कुमार। व्यक्तित्व मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलोरोड, जवाहर नगर दिल्ली।

7.9 निबंधात्मक प्रश्न–

प्रष्न.1– इरिक इरिक्सवन के व्यक्तित्व सिद्धान्त का विस्तृत विवेचन कीजिए।

प्रष्न.2– निम्न पर टिप्पणी लिखिए–

क. इरिक्सन की मानव प्रकृति के संबंध में पूर्वकल्पनायें।

ख. मनोसामाजिक विकास की अवस्थाओं की विषेषतायें।

ग. मनोसामाजिक सिद्धान्त का महत्त्व।

इकाई 8—मनोविज्ञान परीक्षण : अर्थ एवं उद्देश्य

इकाई की संरचना

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 मनोवैज्ञानिक परीक्षण : अर्थ एवं स्वरूप

8.4 परिभाषायें

8.5 परिभाषाओं का विश्लेषण

8.6 मनोवैज्ञानिक परीक्षण के उद्देश्य

8.7 सारांश

8.8 शब्दावली

8.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

8.11 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

मनोविज्ञान व्यावहारिक जीवन का विज्ञान है। यह ज्ञान की वह शाखा है जो प्राणियों के व्यवहार एवं मानसिक प्रक्रियाओं जैसे कि बुद्धि, स्मृति, चिन्तन, सीखना, समस्या समाधान, निर्णय प्रक्रिया, विस्मरण का क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित अध्ययन करती है। भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में प्राणी (मानव एवं पशु दोनों) किस प्रकार का व्यवहार करते है? उनके इस प्रकार व्यवहार करने के पीछे क्या–क्या कारण होते है? एक ही स्थिति में अलग–अलग प्राणी को प्रभावित करने वाले कौन–कौन से कारक है ? प्राणियों के मानसिक गुणों जैसे बुद्धि, उपलब्धि, अभिक्षमता, अभिवृत्ति इत्यादि तथा व्यक्तित्व शीलगुणों में विभिन्नता क्यों पायी जाती है आदि इन सभी का अध्ययन करना मनोविज्ञान व्यवहार तथा व्यक्तित्व तथा मानसिक गुणों का मापन तथा तुलनात्मक अध्ययन किस प्रकार किया जाये ? इस हेतु ''मनोवैज्ञानिक परीक्षणों'' की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। मनोवैज्ञानिकों को ऐसे साधनों की आवश्यकता का अनुभव हुआ जो वैयक्तिक विभिन्नताओं के प्रत्येक पहलू का वस्तुनिष्ठ एवं वैज्ञानिक मापन तथा अध्ययन कर समायोजन बनाये रखने का प्रयास करें। वस्तुतः व्यक्तियों की उपलब्धि ज्ञान, शीलगुण इत्यादि का पता लगाने के लिये अतप्राचीनकाल से ही किसी न किसी प्रकार के परीक्षणों एवं मापन प्रविधियों का प्रयोग किया जाता रहा है। प्राचीन काल में चीन, जोर्डन, मिस्त्र आदि संस्कृतियों में इस बात के अनेक प्रमाण मिले हैं किन्तु वर्तमान समय में विविध क्षेत्रों में जो परीक्षण प्रयुक्त किये जाते हैं यह अपने आप में एक विशिष्ट उपलब्धि है।

अब जिज्ञासु पाठकों के मन में निम्न प्रश्न उठ रहे होंगे कि –

- मनोवैज्ञानिक परीक्षण से क्या आशय है ?
- इनका स्वरूप क्या है ?
- इन परीक्षणों द्वारा किस–किस का मापन किया जाता है ?
- विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षण कौन–कौन से हैं ?
- इन परीक्षणों के उद्देश्य क्या है ?

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप उपर्युक्त प्रश्नों के उत्तर देने में सक्षम हो जायेंगे।

वर्तमान समय में मानकीकृत (Standardized) परीक्षणों की संख्या में वृद्धि हो रही है। शिक्षा, व्यवसाय, चिकित्सा इत्यादि क्षेत्रों में व्यापक स्तर पर मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का प्रयोग किया जा रहा है। अनेक विश्वविद्यालयों, सरकारी रहा है। अनेक विश्वविद्यालयों, सरकारी कार्यालयों, प्रकाशकों, शिक्षामंत्रालयों तथा दूसरी अन्य संस्थाओं द्वारा इन परीक्षणों को प्रकाशित भी किया जा रहा है।

8.2 उद्देश्य

i. प्रस्तुत इकाई को पड़ने के बाद आप मनोवैज्ञानिक परीक्षण के अर्थ को परिभाषित कर सकेंगे।

ii. विभिन्न परिभाषाओं का विश्लेषण कर सकेंगे।

iii. मनोवैज्ञानिक परीक्षण के स्वरूप का वर्णन कर सकेंगे।

iv. मनोवैज्ञानिक परीक्षण के विविध उद्देश्यों को स्पष्ट कर सकेंगे।

v. मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की व्यावहारिक उपयोगिता को स्पष्ट कर पायेंगे।

8.3 परिभाषायें (मनोवैज्ञानिक परीक्षण : अर्थ एवं स्वरूप)

मनोवैज्ञानिक परीक्षण से क्या अभिप्राय है ? यदि सामान्य बोलचाल की भाषा में प्रश्न का उत्तर दिया जाये तो कहा जा सकता है कि मनोवैज्ञानिक परीक्षण व्यावहारिक रूप से किसी व्यक्ति का अध्ययन करने की एक ऐसी व्यवस्थित विधि है, जिसके माध्यम से किसी प्राणी को समझा जा सकता है, उसके बारे में निर्णय लिया जा सकता है, उसके बारे में निर्णय लिया जा सकता है अर्थात एक व्यक्ति का बुद्धि स्तर क्या है, किन–किन विषयों में उसकी अभिरूचि है, वह किस क्षेत्र में सफलता प्राप्त कर सकता है। समजा के लोगों के साथ समायोजन स्थापित कर सकता है या नहीं, उसके व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषतायें क्या–क्या है? इत्यादि प्रश्नों का उत्तर हमें प्राप्त करना हो तो इसके लिये विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा न केवल व्यक्ति का अध्ययन ही संभव है, वरन् विभिन्न विशेषताओं के आधार पर उसकी अन्य व्यक्तियों से तुलना भी की जा सकती है। जिस प्रकार रसायन विज्ञान, भौतिक विज्ञान, जीव विज्ञान तथा ज्ञान की अन्य शाखाओं में परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है, उसी प्रकार मनोविज्ञान में भी इन परीक्षणों का उपयोग किया जाता है। एक रसायनशास्त्री जितनी सावधानी से किसी रोग के रक्त का नमूना लेकर उसका परीक्षण करता है, उतनी ही सावधानी से एक मनोवैज्ञानिक भी चयनित व्यक्ति के व्यवहार का निरीक्षण करता है।

मनोविज्ञान शब्दावली (Dictionary of Psychological terms) के अनुसार – ''मनोवैज्ञानिक परीक्षण मानकीकृत एवं नियंत्रित स्थितियों का वह विन्यास है जो व्यक्ति से अनुक्रिया प्राप्त करने हेतु उसके सम्मुख पेश किया जाता है जिससे वह पर्यावरण की मांगों के अनुकूल प्रतिनिधित्व व्यवहार का चयन कर सकें। आज हम बहुधा उन सभी परिस्थितियों एवं अवसरों के विन्यास को मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के अन्तर्गत सम्मिलित कर लेते हैं जो किसी भी प्रकार की क्रिया चाहे उसका सम्बन्ध कार्य या निष्पादन से हो या नहीं करने की विशेष पद्धति का प्रतिपादन करती है।''

अतः यह कहा जा सकता है कि –

''मनोवैज्ञानिक परीक्षण व्यवहार प्रतिदर्श के मापन की एक ऐसी मानकीकृत (Standardized) तथा व्यवस्थित पद्धति है जो विश्वसनीय एवं वैध होती है तथा जिसके प्रशासन की विधि संरचित एवं निश्चित होती है। परीक्षण में व्यवहार मापन के लिए जो प्रश्न या पद होते हैं वह शाब्दिक (Verbal) और अशाब्दिक (non-verbal) दोनों परीक्षणों के माध्यम से व्यवहार के विभिन्न, मनोवैज्ञानिक पहलुओं यथा उपलब्धियों, रूचियों,

योग्यताओं, अभिक्षमताओं तथा व्यक्तित्व शीलगुणों का परिमाणात्मक एंव गुणात्मक अध्ययन एंव मापन किया जाता है।

मनोवैज्ञानिक परीक्षण अलग–अलग प्रकार के होते है। जैसे –

a) बुद्धि परीक्षण
b) अभिवृत्ति परीक्षण
c) अभिक्षमता परीक्षण
d) उपलब्धि परीक्षण
e) व्यक्तित्व परीक्षण इत्यादि।

मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के जन्म का क्षेय दो फ्रांसीसी मनोवैज्ञानिकों इस वियूल (Esquiro, 1772-1840) तथा सैगुइन (Seguin, 1812-1880)

जिन्होंने न केवल मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की आधारशिला रखी वरन् इन परीक्षणों से सम्बद्ध सिद्धान्तों का प्रतिपादन भी किया।

भारत में मानसिक परीक्षणों का विधिवत् अध्ययन सन् 1922 में प्रारंभ हुआ। एफ0जी0 कॉलेज, लाहौर के प्राचार्य सी0एच0राइस ने सर्वप्रथम भारत में परीक्षण का निर्माण किया। यह एक बुद्धि परीक्षण था, जिसका नाम था – Hindustani Binet performance point scale.

8.4 परिभाषायें

अलग–अलग विद्वानों ने मनोवैज्ञानिक परीक्षण को भिन्न–भिन्न प्रकार से परिभाषित किया है। कतिपय प्रमुख परिभाषाए निम्नानुसार हैं –

i. क्रानबैक (1971) के अनुसार, ''एक मनोवैज्ञानिक परीक्षण वह व्यवस्थित प्रक्रिया है, जिसके द्वारा दो या अधिक व्यक्तियों के व्यवहार का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।''

ii. एनास्टसी (1976) के अनुसार, ''एक मनोवैज्ञानिक परीक्षण आवश्यक रूप में व्यवहार प्रतिदर्श का वस्तुनिष्ठ तथा मानकीकृत मापन है।'' (Psychological Testing)

iii. फ्रीमैन (1965) के अनुसार, ''मनोवैज्ञानिक परीक्षण एक मानकीकृत यन्त्र है, जिसके द्वारा समस्त व्यक्तित्व के एक पक्ष अथवा अधिक पक्षों का मापन शाब्दिक या अशाब्दिक अनुक्रियाओं या अन्य प्रकार के व्यवहार माध्यम से किया जाता है।'' (Theory and Practice of Psychological Testing)

iv. ब्राउन के अनुसार, ''व्यवहार प्रतिदर्श के मापन की व्यवस्थित विधि ही मनोवैज्ञानिक परीक्षण हैं।''

(Principles of Educational and Psychological Testing)

v. मन (1967) के अनुसार, ''परीक्षण वह परीक्षण है जो किसी समूह से संबंधित व्यक्ति की बुद्धि व्यक्तित्व, अभिक्षमता एवं उपलब्धि को व्यक्त करती है। (Introduction to Psychology)

vi. टाइलर (1969) के अनुसार, ''परीक्षण वह मानकीकृत परिस्थिति है, जिससे व्यक्ति का प्रतिदर्श व्यवहार निर्धारित होता है।'' (Test and measurements)

8.5 परिभाषाओं का विश्लेषण

मनोवैज्ञानिक परीक्षण की उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

1. मनोवैज्ञानिक परीक्षण एक मानकीकृत एवं वस्तुनिष्ठ साधन, प्रक्रिया, मापक अथवा यन्त्र है।
2. अधिकांश मनोवैज्ञानिक परीक्षणों में मानकीकृत प्रश्नों की एक सूची होती है, लेकिन कुछ में प्रश्नों की जगह अन्य सामग्री उपयोग में लायी जाती है।
3. मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के द्वारा मानव व्यवहार के विभिन्न के विभिन्न मनोवैज्ञानिक पहलुओं जैसे उपलब्धियों क्षमताओं, योग्यताओं, रूचियों, बुद्धि, अभिवृत्तियों, समायोजन, चिन्ता एवं अन्य व्यक्तित्व विशेषताओं का गुणात्मक एवं परिणात्मक अध्ययन किया जाता है।
4. मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के माध्यम से न केवल किसी व्यक्ति को समझा जा सकता है वरन् विभिन्न मनोवैज्ञानिक पहलुओं के आधार पर उसका अन्य व्यक्तियों के साथ तुलनात्मक अध्ययन भी किया जाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न 1. ''व्यवहार प्रतिदर्श के मापन की व्यवस्थित विधि ही मनोवैज्ञानिक परीक्षण है।''

मनोवैज्ञानिक परीक्षण की यह परिभाषा दी है –

क. फ्रीमैन ख. टाइलर ग. ब्राउन घ. मन

प्रश्न 2. "Test and measurement" इस पुस्तक के लेखक कौन है –

क. क्रानबैक ख. टाइलर ग. एनास्टसी घ. मन

8.6 मनोवैज्ञानिक परीक्षण : उद्देश्य

किसी भी परीक्षण के कुछ निश्चित उद्देश्य होते है। मनोवैज्ञानिक परीक्षण के भी कतिपय विशिष्ट उद्देश्य हैं जिनका विवेचन निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता हैं –

1. वर्गीकरण एवं चयन
2. पूर्वकथन
3. मार्गनिर्देशन
4. तुलना करना
5. निदान
6. शोध

1. **वर्गीकरण एवं चयन (Classification and selection) –** प्राचीन काल से ही विद्वानों की मान्यता रही है कि व्यक्ति न केवल शारीरिक आधार पर वरन् मानसिक आधार पर भी एक दूसरे से भिन्न होते हैं। दो व्यक्ति किसी प्रकार भी समान मानसिक योग्यता वाले नहीं हो सकते। उनमें कुछ न कुछ भिन्नता अवश्य ही पायी जाती है। गातटन ने अपने अनुसंधानों के आधार पर यह सिद्ध कर दिया है कि प्रत्येक व्यक्ति मानसिक योग्यता, अभिवृत्ति, रूचि, शीलगुणों इत्यादि में दूसरों से भिन्न होता है। अतः जीवन के विविध क्षेत्रों में परीक्षणों के माध्यम से व्यक्तियों को भिन्न–भिन्न वर्गों में वर्गीकृत किया जाना संभव है। अतः मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के आधार पर शिक्षण संस्थाओं, औद्योगिक संस्थानों, सेना एंव विविध प्रकार की नौकरियों में शारीरिक एवं मानसिक विभिन्नताओं के आधार पर व्यक्तियों का वर्गीकरण करना परीक्षण का एक प्रमुख उद्देश्य है न केवल वर्गीकरण वरन् किसी व्यवसाय या सेवा विशेष में कौन सा व्यक्ति सर्वाधिक उपयुक्त होगा, इसका निर्धारण करने में भी परीक्षणों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसलिए शैक्षिक, औद्योगिक, व्यावसायिक एवं व्यक्तिगत चयन में मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि मानसिक विभिन्नताओं के आधार पर प्राणियों का वर्गीकरण करना तथा विविध व्यवसायों एवं सेवाओं में योग्यतम व्यक्ति का चयन करना मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का प्रमुख उद्देश्य है।

2. **पूर्वकथन (Prediction) –** मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का दूसरा प्रमुख उद्देश्य है – 'पूर्वकथन करना'। यह पूर्वकथन (भविष्यवाणी) विभिन्न प्रकार के कार्यों के संबंध में भी। अब प्रश्न यह उठता है कि पूर्वकथन से हमारा क्या आशय है ? पूर्वकथन का तात्पर्य है किसी भी व्यक्ति अथवा कार्य के वर्तमान अध्ययन के आधार पर उसके भविष्य के संबंध में विचार प्रकट करना या कथन करना। अतः विभिन्न प्रकार के व्यवसायिक संस्थानों में कार्यरत कर्मचारियों एवं शैक्षणिक संस्थाओं में जब अध्ययनरत विद्यार्थियों के संबंध में पूर्वकथन की आवश्यकता होती है तो प्रमाणीकृत मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है। यथा –

अ. उपलब्धि परीक्षण

ब. अभिक्षमता परीक्षण

स. बुद्धि परीक्षण

द. व्यक्तित्व परीक्षण इत्यादि।

उदाहरणार्थ –

क. मान लीजिए कि अमुक व्यक्ति इंजीनियरिंग के क्षेत्र में (व्यवसाय) में सफल होगा या नहीं, इस संबंध में पूर्व कथन करने के लिए अभिक्षमता परीक्षणों का प्रयोग किया जायेगा।

ख. इसी प्रकार यदि यह जानना है कि अमुक विद्यार्थी गणित जैसे विषय में उन्नति करेगा या नही ंतो इस संबंध में भविष्यवाणी करने के लिए उपब्धि परीक्षणों का सहारा लिया जाता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के माध्यम से किसी भी व्यक्ति की बुद्धि, रूचि, उपलब्धि, रचनात्मक एवं समायोजन क्षमता, अभिक्षमता तथा अन्य व्यक्तित्व शीलगुणों के संबंध में आसानी से पूर्वकथन किया जा सकता है।

3. **मार्गनिर्देशन (Guidance) –** व्यावसायिक एवं शैक्षिक निर्देशन प्रदान करना मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का तीसरा प्रमुख उद्देश्य है अर्थात इन परीक्षणों की सहायता से आसानी से बताया जा सकता है कि अमुक व्यक्ति को कौन सा व्यवसाय करना चाहिए अथवा अमुक छात्र को कौन से विषय का चयन करना चाहिए।

उदाहरण –

क. जैसे कोई व्यक्ति ''अध्यापन अभिक्षमता परीक्षण'' पर उच्च अंक प्राप्त करता है, तो उसे अध्यापक बनने के लिए निर्देशित किया जा सकता है।

ख. इसी प्रकार यदि किसी विद्यार्थी का बुद्धि लब्धि स्तर अच्छा है तो उसे मार्ग –

निर्देशन दिया जा सकता है कि वह विज्ञान विषय का चयन करें।

अतः हम कह सकते हैं कि मनौवैज्ञानिक परीक्षण न केवल पूर्वकयन करने से अपितु निर्देशन करने में भी (विशेषतः व्यावसायिक एवं शैक्षिक निर्देशन) अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

4. **तुलना करना (Comparison) –** संसार का प्रत्येक प्राणी अपनी शारीरिक संरचना एवं व्यवहार के आधार पर एक दूसरे से भिन्न होता है। अतः व्यक्ति अथवा समूहों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए भी मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है। मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के प्रयोग द्वारा सांख्यिकीय प्रबिधियों के उपयोग पर बल दिया गया है।

5. **निदान –** शिक्षा के क्षेत्र में तथा जीवन के अन्य विविध क्षेत्रों में प्रत्येक मनुष्य को अनेकानेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अतः मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का एक प्रमुख उद्देश्य इन समस्याओं का निदान करना भी हैं जिन परीक्षणों के माध्यम से विषय संबंधी कठिनाईयों का निदान किया जाता है उन्हें ''नैदानिक परीक्षण'' कहते हैं। किस प्रकार एक्स–रे, थर्मामीटर, माइक्रोस्कोप इत्यादि यंत्रों का प्रयोग चिकित्सात्मक निदान में किया जाता है, उसी प्रकार शैक्षिक, मानसिक एवं संवेगात्मक कठिनाईयों के निदान के लिए मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का प्रयोग होता है।

ब्राउन 1970 के अनुसार, निदान के क्षेत्र में भी परीक्षण प्राप्तांकों का उपयोग किया जा सकता है।

उदाहरण – जैसे कि कभी–कभी कोई विद्यार्थी किन्हीं कारणवश शिक्षा में पिछड़ जाते है, ऐसी स्थिति में अध्यापक एवं अभिभावकों का कर्तव्य है कि विभिन्न परीक्षणों के माध्यम से उसके पिछड़ेपन के कारणों का न केवल पता लगायें वरन् उनके निराकरण का भी यथासंभव उपाय करें।

इसी प्रकार अमुक व्यक्ति किस मानसिक रोग से ग्रस्त है, उसका स्वरूप क्या है? रोग कितना गंभीर है, उसके क्या कारण है एवं किस प्रकार से उसकी रोकथाम की जा सकती है इन सभी बातों की जानकारी भी समस्या के अनुरूप प्राप्त की जा सकती है।

अतः स्पष्ट है कि विभिन्न प्रकार की समस्याओं के निदान एवं निराकरण दोनों में ही मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की अहम् भूमिका होतीहै।

6. **शोध (Research)** – मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का एक अन्य प्रमुख उद्देश्य तथा मनोविज्ञान के क्षेत्र में होने वाले विविध शोध कार्यों में सहायता प्रदान करना ळे। किस प्रकार भौतिक विज्ञान में यंत्रों के माध्यम से अन्वेषण का कार्य किया जाता है, उसी प्रकार मनोविज्ञान में परीक्षणों शोध हेतु परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है। परीक्षणों के माध्यम से अनुसंधान हेतु आवश्यक ऑकड़े का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।

अतः स्पष्ट है कि मनोविज्ञान के बढ़ते हुये अनुसंधान क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक परीक्षण एक यन्त्र, साधन या उपकरण के रूप में कार्य करते हैं।

अतः निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि मनोवैज्ञानिक परीक्षण प्रतिवर्ष व्यवहार के अथवा प्राणी के दैनिक एवं मनोवैज्ञानिक दोनों ही पहलुओं के वस्तुनिष्ठ अध्ययन की एक प्रमापीकृत (Standardized) एवं व्यवस्थित विधि है।

वर्गीकरण एवं चयन, पूर्वकथन, मार्ग निर्देशन, तुलना, निदान, शोध इत्यादि उद्देश्यों को दृष्टि में रखते हुये इन परीक्षण से का निर्माण किया गया है।

8.7 सारांश

- व्यवहार प्रतिदर्श के मापन की व्यवस्थित एवं मानकीकृत (Standardized) विधि मनोवैज्ञानिक परीक्षण है।
- मनोवैज्ञानिक परीक्षणो के माध्यम से व्यवहार के विभिन्न मनोवैज्ञानिक पहलुओं मात्रात्मक एवं गुणात्मक अध्ययन किया जाता हैं। यथा –रूचि, उपलब्धि, अभिवृति, अभिक्षमता, चिन्ता, समायोजन, बुद्धि, व्यक्तित्व शीलगुण इत्यादि।
- मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का प्रयोग व्यक्ति को समझने मे तथा समूह में उसकी तुलना में भी किया जाता हैं।
- मनोवैज्ञानिक परीक्षण अनेक प्रकार के होते हैं। जैसे–

क. बुद्धि परीक्षण ख. उपलब्धि परीक्षण ग. अभिक्षता परीक्षण घ. अभिवृति परीक्षण ड.व्यक्तित्व परीक्षण इत्यादि ।

- मनोवैज्ञानिक परीक्षण के प्रमुख उद्देशय निम्न हैं।

वर्गीकरण एवं चयन
पूर्वकथन
मार्गनिर्देशन
तुलना करना
निदान
शोध

8.8 शब्दावली

1– मानवीकृत – आदर्श स्तर पर आधारित

2– विश्वसनीय– समान देशकाल में किसी परीक्षण को प्रयुक्त करने पर पुनः वही परीणाम प्राप्त होना।

3– वैध– परीक्षण जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अर्थात– जिस व्यवहार प्रतिदर्श के मापन के लिए बनाया गया हैं। उसी उद्देश्य की पूर्ति करना।

4– पूर्वकथन– भविष्यवाणी करना।

5– प्रतिदर्श– नमूना (sample)

8.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ग 2. ख

8.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सुलेमान, मुहम्मद (2005) मनोविज्ञान में प्रयोग एवं परीक्षण। मोतीलाल बनारसीदास, 41 यू0ए0 बंगलों रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।
2. भार्गव, महेश (2001) मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं मापन। एच0पी0 भार्गव बुक हाउस, भार्गव भवन, 4/352, कचहरी घाट, आगरा।
3. वर्मा, प्रीती एवं श्रीवास्तव, डी0एन0, आधुनिक प्रयोगात्मक मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
4. अस्थना, विपिन (1999), मनोविज्ञान और शिक्षा में मापन एवं मूल्यांकन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
5. Cattell, R.B. (1939). A guide to mental testing, London: University of London Press Ltd.
6. Brown F.G. (1970). Priciples of Educational and Psychological testing. New York : Drydon press.

8.11 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. मनोवैज्ञानिक परीक्षण से आप क्या समझते हैं ? इसकी विभिन्न परिभाषाओं का विश्लेषण कीजिए।

प्रश्न 2. मनोवैज्ञानिक परीक्षण के उद्देश्यों का विस्तृत विवेचन कीजिए।

इकाई–9 मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की विशेषता

इकाई की संरचना

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की विशेषतायें
9.4 मनोवैज्ञानिक परीक्षण की सीमायें
9.5 सारांश
9.6 शब्दावली
9.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
9.9 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

प्रिय विधार्थियों, इससे पूर्व की ईकाई का अध्ययन करने के बाद आप इतना तो जान चूके हैं कि मनोवैज्ञानिक परीक्षण किसे कहते हैं ? विभिन्न विद्वानों ने किस–किस ढंग से इन्हें परिभाषित किया है तथा इनके निर्माण का क्या उद्देश्य है ? अब प्रस्तुत ईकाई में इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुयी इन परीक्षणों के स्वरूप अर्थात्– विषेषताओं पर चर्चा की जायेगी जिससे कि आप मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के अर्थ एवं स्वरूप से भलीभाँति परिचित हो जावे। तो अपने अध्ययन के क्रम को जारी रखते हुये चर्चा करते है– मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की विषेषताओं पर।

9.2 उद्देश्य–

प्रस्तुत ईकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप–

- एक उत्तम मनोवैज्ञानिक परीक्षण किसे कहते है– इसे स्पष्ट कर सकेंगे।
- एक अच्छे मनोवैज्ञानिक परीक्षण की विषेषताओं का अध्ययन कर सकेंगे।
- मनोवैज्ञानिक परीक्षण की सीमओं का विष्लेषण कर सकेंगे।

❖ भौतिक विज्ञान इत्यादि यथार्थ विज्ञानों की तुलना में मनोवैज्ञानिक परीक्षण क्यों कम वैज्ञानिक है– इसे स्पष्ट कर सकेंगे;

9.3 मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की विशेषतायें

प्रिय विधार्थियों किसी भी परीक्षण को उत्तम या बहुत अच्छा तब माना जाता है, जब उसमें वे सभी विशेषतायें या गुण अधिकतम संख्या में विद्यमान हो, जो किसी भी परीक्षण के वैज्ञानिक कहलाने के लिए आवश्यक होते है। आपके मन में जिज्ञासा हो रही होगी कि आखिर वे विशेषतायें कौन–कौन सी है। तो आइये निम्नलिखित पंक्तियों को पढ़कर आप अपनी जिज्ञासाओं का समाधान पर सकते हैं।

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार एक अच्छे वैज्ञानिक परीक्षण में निम्न विषेषतायें होती है–

1. विश्वसनीयता 2. वैधता 3. मानक 4.वस्तुनिष्ठता 5.व्यवहारिकता 6. मितव्ययिता 7.रूचि
8. विभेदीकरण 9.व्यापकता

इनका क्रमशः विवेचन निम्नानुसार है–

1.विश्वसनीयता– एक उत्तम तथा वैज्ञानिक मनोवैज्ञानिक परीक्षण में विश्वसनीयता का गुण होना अनिवार्य है। अब प्रश्न उठता है कि परीक्षण की विश्वसनीयता से क्या आशय है? किसी भी परीक्षण के विश्वसनीय होने का अर्थ यह है कि समान शर्तों के साथ यदि किसी परीक्षण को किसी भी समय एवं स्थान पर प्रयुक्त किया जाये तो उससे प्राप्त होने वाले परिणाम प्रत्येक बार समान ही हो, उनमें अन्तर ना हो।

" विश्वसनीयता का तात्पर्य निर्णय की संगति से है। "

(पोस्टमैन 1996, पृ. सं. 230)

" एक विश्वसनीय परीक्षण उसे कहते है, जिसके द्वारा भिन्न–भिन्न समयों में प्राप्त परिणामों में संगति तथा सहमति पायी जाती है। विश्वसनीय परीक्षण संगत होता है, स्थिर होता है।"

(रेबर तथा रेबर, 2001, पृ. सं. 621)

<u>विश्वसनीयता निर्धारित करने की विधियाँ</u>

किसी परीक्षण की विश्वसनीयता को निर्धारित करने की निम्न चार विधियाँ हैं–

1.परीक्षण–पुर्नपरीक्षण विधि

2.अर्ध–विच्छेद विधि

3.समानान्तर कार्म विधि

4.तर्कसंगत समता विधि

उपर्युक्त चार में से सामान्यतः प्रथम दो विधियों का व्यावहारिक दृष्टि से अधिक उपयोग किया जाता है।

2.वैधता– मनोवैज्ञानिक परीक्षण की दूसरी प्रमुख विषेषता " <u>वैधता</u> " है। वैधता का अर्थ है कि किसी परीक्षण को जिस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये बनाया गया है, वह परीक्षण उस उद्देश्य को पूरा कर रहा है या नही। यदि परीक्षण अपने उद्देश्य को पूरा करने में सकल होता है तो उसे वैध माना जाता है और इसके विपरीत उद्देश्य पूरा करने में सक्षम नहीं होता है तो उसे वैध नहीं माना जाता है।

" वैधता का तात्पर्य किसी मनोवैज्ञानिक परीक्षण की उस विषेषता से है, जिससे पता चलता है कि परीक्षण उस चीज को मापने में कहाँ तक सकल है, जिसको मापने के लिए अपेक्षा की जाती है।

(बिजामिनः Psychalogy, 1994, पृ.सं.–7)

<u>वैधता के प्रकार</u>– मनोवैज्ञानिक परीक्षण की वैधता के अनेक प्रकार होते है, जिनका नामोल्लेख निम्नानुसार है–

1.घटक वैधता

2.समवर्ती वैधता

3.भविष्यवाणी वैधता इत्यादि।

वैधता को निर्धारित करने की विधियाँ– किसी परीक्षण की वैधता को निर्धारित करने के लिये सहसंबंध विधि का प्रयोग किया जाता है। जैसे कि

a. **कोटि अन्तर विधि**
b. **प्रोडक्ट मोमेन्ट विधि इत्यादि**

3. **मानक–** किसी भी मनोवैज्ञानिक परीक्षण के अपने मानक होते है। मानक का गुण होना एक वैज्ञानिक परीक्षण के लिये अनिवार्य शर्त है।

" मानक का अर्थ वह संख्या, मूल्य या स्तर है, जो किसी समूह का प्रतिनिधि हो और जिसके आधार पर व्यक्तिगत निस्पादन या उपलब्धि की व्याख्या की जा सके।" (रेबर एवं रेबर, 2001, पृ. सं. 472)

अब प्रष्न यह उठता है कि मनोवैज्ञानिक परीक्षण में कितने प्रकार के मानकों का प्रयोग किया जाता है। मनोवैज्ञानिक परीक्षण में निम्न चार प्रकार के मानक उपयोग में लाये जाते हैं–

अ. आयु मानक

ब. श्रेणी मानक

ज. शतमक मानक

द. प्रमाणिक प्राप्तांक मानक

परीक्षण में जैसी आवश्यकता होती है, उसके आधार पर एक या एक से अधिक मानकों का प्रयोग किया जा सकता है। मानक के कारण इस परीक्षणकर्ता द्वारा इस तथ्य का निर्धारण करना संभव हो पाता है कि किसी व्यक्ति विशेष को जो अंक प्राप्त हुआ है वह औसत स्तर का है, उच्च स्तर का है या निम्न स्तर का है। अतः एक उत्तम वैज्ञानिक परीक्षण के लिये उसमें **मानक** का गुण होना अति आवश्यक है।

4.एक उत्तम मनोवैज्ञानिक परीक्षण में यह गुण पाया जाता है कि वह किसी शीलगुण या किसी खास क्षमता के आधार पर विभिन्न व्यक्तियों में विभेद कर सकता है। कौन सा व्यक्ति उच्चस्तरीय क्षमता एवं योग्यता वाला है, कौन सा औसत योग्यता वाला है तथा कौन सा व्यक्ति निम्नस्तरीय योग्यता एवं क्षमता को धारण करता है, इसका निर्धारण वह वैज्ञानिक परीक्षण सरलतापूर्वक कर सकता है।

5. **व्यावहारिकता–** व्यावहारिकता मनोवैज्ञानिक परीक्षण की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता है। यह ऐसी होनी चाहिये जिसका व्यावहारिक रूप से प्रयोग कोई भी व्यक्ति परीक्षण–पुस्तिका की सहायता से दिये गये निर्देषों के अनुसार कर सके अर्थात् परीक्षण व्यावहारिक रूप से प्रयुक्त करने की दृष्टि से जटिल एवं कठिन नहीं होना चाहिए।

6. **मितव्ययिता–** मनोवैज्ञानिक परीक्षण में आंषिक रूप से मितव्ययिता का गुण भी पाया जाता है। जो परीक्षण धन की दृष्टि से जितना कम खर्चीला होता है तथा जिसके व्यावहारिक प्रयोग में जितना कम श्रम एवं समय लगता है, उसे उतना ही अच्छा माना जाता है।

7. **रूचि–** एक अच्छा परीक्षण वह है जो प्रयोज्यों को नीरस ना लगे अर्थात् जिसमें प्रयोज्यों की रूचि बनी रहे। जब प्रयोज्यों पर वह परीक्षण प्रयुक्त किया जाये तो वे प्रारंभ से लेकर अंत तक रूचिपूर्वक उसमें भाग ले सकें न कि भार समझकर।

8. **विभेदीकरण–** एक वैज्ञानिक परीक्षण में विभेदीकरण का गुण भी पाया जाता है। विभेदीकरण का अर्थ है, किसी गुण , विशेषता या योग्यता के आधार पर किसी एक व्यक्ति, वस्तु, घटना या परिस्थिति को अन्य व्यक्तियों, वस्तुओं, घटनाओं, परिस्थिति से अलग करना।

9. **व्यापक्ता–** व्यापकता मनोवैज्ञानिक परीक्षण एक अत्यन्त महत्तवपूर्ण विशेषता है। व्यापकता का अर्थ है– सीमित एवं संकुचित दृष्टिकोण का न होना अर्थात– विस्तृत होना। यहाँ पर मनोवैज्ञानिक परीक्षण की व्यापकता का अर्थ यह है कि वह परीक्षण जिस गुण, योग्यता अथवा क्षमता को मापने के लिये बनाया गया है, वह उस गुण योग्यता या क्षमता को सभी पक्षों का समुचित ढंग से मापन करता है या नहीं। यदि वह परीक्षण उस गुण या योग्यता के सभी पक्षों का सही ढंग से मापन करने में सक्षम होगा, तो यह माना जायेगा कि उसमें व्यापकता का गुण विद्यमान है और यदि एक पक्ष का ही मापन करेगा तो माना जायेगा कि उसका दृष्टिकोण सीमित है व्यापक नहीं।

अभ्यास प्रश्न– नीचे कुछ कथन दिये गये हैं। जो कथन सत्य है उसके आगे सही (√) का तथा जो गलत है उसके आगे गलत (X) का चिन्ह लगायें।

1. एक उत्तम मनोवैज्ञानिक परीक्षण वैज्ञानिक होता है।
2. मनोवैज्ञानिक परीक्षण में मानक की विषेषता पायी जाती है।
3. परीक्षण–पुनर्परीक्षण विधि द्वारा किसी मनोवैज्ञानिक परीक्षण की विश्वसनीयता का निर्धारण किया जाता है।
4. कोटि अन्तर विधि मनोवैज्ञानिक परीक्षण की विश्वसनीयता को निर्धारित करने की विधि है।
5. प्रोडक्ट मोमेन्ट विधि द्वारा मनोवैज्ञानिक परीक्षण की वैधता का निर्धारण किया जाता है।
6. एक विश्वसनीय मनोवैज्ञानिक परीक्षण स्थिर होता है।
7. एक विश्वसनीय मनोवैज्ञानिक परीक्षण संगत नहीं होता है।
8. मनोवैज्ञानिक परीक्षण में चार प्रकार के मानकों का प्रयोग किया जाता है।
9. एक वैज्ञानिक परीक्षण में व्यापकता का गुण होना आवश्यक नहीं है।

10. एक उत्तम परीक्षण में रूचि बनाये रखने का गुण होना चाहिये।
11. वैधता का अर्थ है— जिस उद्देश्य से किसी परीक्षण का निर्माण किया गया है, वह उद्देश्य परीक्षण से पूरा हो रहा है या नहीं।
12. किसी परीक्षण की वैधता के निर्धारण के लिये अर्ध—विच्छेद विधि का प्रयोग किया जाता है।
13. किसी परीक्षण की विश्वसनीयता के निर्धारण के लिये अर्ध—विच्छेद विधि प्रयुक्त की जाती है।
14. तर्कसंगत समता विधि द्वारा परीक्षण की वैधता एवं विश्वसनीयता का निर्धारण किया जाता है।
15. समानान्तर र्कार्म विधि द्वारा किसी परीक्षण की वैधता को निर्धारित किया जाता है।

9.4 मनोवैज्ञानिक परीक्षण की सीमायें—

प्रिय विधार्थियों, विद्वानों का यह मानना है कि मनोविज्ञान के क्षेत्र में जिन परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है, वे परीक्षण विज्ञान की कसौटी पर उतने खरे नहीं उतरते हैं अर्थात् उतने अधिक विषुद्ध वैज्ञानिक नहीं होते हैं, जितने कि भौतिक विज्ञान आदि यथार्थ विज्ञानों में प्रयुक्त होने वाले परीक्षण होते है। अब आपके मन में यह प्रश्न उठ रहा होगा कि आखिर ऐसे क्या कारण है, जिनकी वजह से इन मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की वैज्ञानिकता सीमित हो जाती है। तो आइये चर्चा करते है, इन्हीं कठिनाइयों या सीमाओं की जिनके कारण मनोवैज्ञानिक परीक्षणों को पूर्णतः वैज्ञानिक नहीं माना जा सकता है।

मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की सीमाओं का विवेचन निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है—

(i) <u>**पूर्ण परिमाणन संभव नहीं**</u>— भौतिक विज्ञानों की भाँति मनोविज्ञान में किसी भी मानसिक योग्यता को पूरी तरह मापा नहीं जा सकता।

(ii) <u>**पूर्ण वस्तुनिष्ठता का अभाव**</u>— यद्यपि मनोवैज्ञानिक परीक्षणों में एक सीमा तक वस्तुनिष्ठता का गुण पाया जाता है, किन्तु फिर भी किसी परीक्षण का निर्माण करते समय परीक्षण को बनाने वाला स्वयं की व्यक्तिगत मान्यताओं, धारणाओं, कारको से प्रभावित हुये बिना नहीं रहता है अर्थात् थोड़ा बहुत प्रभाव तो पड़ता ही है। अतः स्पष्ट है कि मनोवैज्ञानिक परीक्षणों में पूर्ण वस्तु निष्ठता का प्रायः अभाव होता है।

(iii) <u>**पूर्ण यथार्थता का अभाव**</u>— पूर्ण वस्तुनिष्ठता के अभाव में मनोवैज्ञानिक परीक्षण में पूर्ण वास्तविक्ता का भी अभाव होता है।

(iv) <u>**आशंकी मितव्ययिता**</u>— मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की एक प्रमुख कमी यह है कि इनमें मितव्ययिता का गुण भी केवल आंषिक रूप से ही

पाया जाता है अर्थात् अधिकांष मनोवैज्ञानिक परीक्षण महंगे होते है तथा उनको व्यावहारिक रूप से लागू करने में समय एवं श्रम भी अधिक लगता है।

(v) **<u>व्यावहारिक उपयोग सीमित</u>–** मनोवैज्ञानिक परीक्षणों को प्रयुक्त करने में एक कठिनाई यह भी है कि व्यावहारिक दृष्टि से इनका उपयोग करने के लिये पर्याप्त अनुभव तथा प्रषिक्षण की आवष्यकता होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि कोई अनुभवी या सुप्रशिक्षित व्यक्ति ही इनका व्यावहारिक ढंग से सहीं एवं उचित प्रयोग कर सकता है।

तो जिज्ञासु अभ्यर्थियों, उपर्युक्त वर्णन से आप समझ ही गये होंगे कि अनेक वैज्ञानिक विशेषताओं के बावजूद मनोवैज्ञानिक परीक्षणों को पूर्णतः वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता क्योंकि इनकी कुछ सीमायें एवं कमियाँ है।

9.5 सारांश–

प्रिय पाठकों, उपर्युक्त अध्ययन से आप समझ गये होगे कि एक उत्तम मनोवैज्ञानिक परीक्षण वह होता है, जिसमें जितनी अधिक सीमा तक वैज्ञानिक होने के गुण निहित होते हैं अर्थात् जो परीक्षण विज्ञान की कसौटी पर जितना अधिक खरा उतरता है, उसे उतना ही अच्छा माना जाता है। विश्वसनीयता, वैधता, वस्तुनिष्ठता, मितव्ययिता, मानक, व्यापकता, व्यावहारिकता, रूचि इत्यादि मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की प्रमुख विषेषतायें है। विद्वानों का मत है कि यद्यपि मनोवैज्ञानिक परीक्षण कुछ सीमा तक तो वैज्ञानिक है, किन्तु इनकी कुछ सीमायें है, जैसे कि इनमें पूर्ण परिमाणन, पूर्ण वस्तुनिष्ठता, पूर्ण यथार्थता, पूर्णमितव्ययिता इत्यादि का अभाव पाया जाता है। अतः इन्हें प्राकृतिक विज्ञानों तथा भौतिक विज्ञान में से अन्य विज्ञानों की तरह पूर्णतः वैज्ञानिक नहीं माना जा सकता है। लेकिन इन कठिनाइयों तथा कमियों के बावजूद भी मनोविज्ञान के क्षेत्र में वैयक्तिक भिन्नताओं को निर्धारित करने तथा व्यक्तित्व का मापन करने इत्यादि उद्देश्यों की पूर्ति में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका से इनकार नहीं किया जा सकता है।

9.6 शब्दावली –

<u>विश्वसनीयता</u> – विश्वास के योग्य होने का गुण या विशेषता

<u>परिमाणन</u> – मात्रात्मक का मापन

<u>विभेदीकरण</u> – अलग–अलग निर्धारण करना

<u>मितव्ययिता</u> – धन, समय तथा श्रम का कम खर्च होना।

पुनर्परीक्षण – दोबारा परीक्षण करना।

समता – समानता

व्यापक्ता – विस्तृत होना।

प्रयोज्य – जिन पर प्रयोग या शोधकार्य किया जाता है।

औसत – न कम न ज्यादा। मध्यम स्तर का।

9.7 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर–

1. सत्य 2.सत्य 3.सत्य 4. असत्य 5.सत्य 6.सत्य 7.असत्य 8.सत्य 9. असत्य 10.सत्य

11.असत्य 12.सत्य 13.असत्य 14.असत्य

9.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

(i) सुलेमान, मुहम्मद तथा तरन्नुम, रिजवाना (2009), मनोविज्ञान में प्रयोग एवं परीक्षण। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड़, जवाहर नगर दिल्ली।

9.9 निबंधात्मक प्रश्न –

प्रश्न–1 मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की प्रमुख विशेषताओं का विस्तृत विवेचन कीजिए। अथवा एक उत्तम मनोवैज्ञानिक परीक्षण की क्या–क्या विशेषतायें होती है? विस्तारपूर्वक व्याख्या किजिए।

इकाई 10 प्रक्षेपी एवं वस्तुनिष्ठ विधियाँ

इकाई की संरचना

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 मनोवैज्ञानिक परीक्षण के प्रकार

10.4 प्रक्षेपी विधियाँ

10.4.1 प्रक्षेपण शब्द का अर्थ

10.4.2 प्रक्षेपी विधि का अर्थ एवं परिभाषा

10.4.3 प्रक्षेपी विधि का इतिहास

10.4.4 प्रक्षेपी विधि की विशेषतायें

10.4.5 प्रक्षेपी विधि के प्रकार

10.4.6 प्रक्षेपी विधि की सीमायें

10.5 वस्तुनिष्ठ विधियाँ

10.5.1 वस्तुनिष्ठ विधि का अर्थ

10.5.2 वस्तुनिष्ठ विधि से संबंधित प्रमुख उपागम

10.5.3 प्रमुख वस्तुनिष्ठ विधियाँ

10.5.4 वस्तुनिष्ठ विधियों के गुण एवं दोष

10.6 सारांश

10.7 शब्दावली

10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

10.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

10.10 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना–

प्रिय पाठकों, इससे पूर्व की इकाईयों में आपने मनोवैज्ञानिक परीक्षण के अर्थ, परिभाषा, उद्देश्य एवं विशेषताओं का अध्ययन किया है अर्थात् मनोवैज्ञानिक परीक्षण से एक मनोवैज्ञानिक का क्या आशय होता है। किस उद्देश्य से इन परीक्षणों का निर्माण किया जाता है। एक अच्छे मनोवैज्ञानिक परीक्षण की क्या–क्या आवश्यक शर्ते होती हैं– इन सभी तथ्यों से आप अवगत हो चुके हैं।

प्रस्तुत ईकाई में हमारे अध्ययन का विषय है– परीक्षण की प्रक्षेपी एवं वस्तुनिष्ठ विधियाँ अर्थात्, मनोवैज्ञानिक परीक्षण के विभिन्न प्रकार तथा उन विविध विधियों का प्रयोग किस प्रकार से किया जाता है? मनोविज्ञान के क्षेत्र में प्राणी की विभिन्न योग्यताओं, विशेषताओं के मापन हेतु अलग–अलग प्रकार के परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है। तो जिज्ञासु विद्यार्थियों, आइये चर्चा करते हैं– मनोवैज्ञानिक परीक्षण की प्रक्षेपी एवं वस्तुनिष्ठ विधियाँ क्या हैं? किस प्रकार से इनका उपयोग किया जाता हैं?

10.2 उद्देश्य–

प्रिय विद्यार्थियों प्रस्तुत ईकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप–

- मनोवैज्ञानिक परीक्षण के विभिन्न प्रकारों का अध्ययन कर सकेंगे।
- प्रक्षेपण परीक्षण के अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगे।
- प्रक्षेपण परीक्षण के विभिन्न भेदों का वर्गीकरण कर सकेंगे।
- प्रक्षेपण परीक्षण का उपयोग किन मानसिक योग्यताओं के मापन हेतु किया जाता है इसका विश्लेषण कर सकेंगे।
- मनोवैज्ञानिक परीक्षण की वस्तुनिष्ठ विधियों का अध्ययन कर सकेंगे।
- वस्तुनिष्ठ विधि के अन्तर्गत आने वाले विभिन्न परीक्षणों का अध्ययन कर सकेंगे।
- प्रक्षेपी एवं वस्तुनिष्ठ विधि में क्या अन्तर है– इसे स्पष्ट कर सकेंगे।

10.3 मनोवैज्ञानिक परीक्षण के प्रकार–

प्रिय विद्यार्थियों, क्या आप जानते हैं कि मनोवैज्ञानिक परीक्षण कितने प्रकार के होते हैं? पाठकों जैसा कि आप अब तक यह समझ चुके हैं कि मनोवैज्ञानिक परीक्षण एक मानवीकृत यन्त्र होता है, जिसमें प्रश्नों अथवा चित्रों या अन्य माध्यमों के द्वारा मनुष्य की विभिन्न मानसिक योग्यताओं जैसे कि बुद्धि, समायोजन क्षमता, स्मृति, अभिवृत्ति, अभिरूचि इत्यादि का मात्रात्मक मापन किया जाता है। कहने का आशय यह है कि मनोवैज्ञानिक परीक्षण के द्वारा प्राणी के व्यक्तित्व के विभिन्न शीलगुणों का मापन होता है। इन्हीं शीलगुणों को मापने के लिये मनोवैज्ञानिकों ने अनेक विधियों का प्रतिपादन किया है, जिन्हें मनोवैज्ञानिक परीक्षण के विभिन्न प्रकार कहा गया।

प्रिय पाठकों, मनोवैज्ञानिक परीक्षण की विभिन्न विधियाँ निम्नानुसार हैं–

अ. प्रक्षेपी विधियाँ (अप्रत्यक्ष विधि)

ब. वस्तुनिष्ठ विधियाँ (प्रत्यक्ष विधि)

तो आइये, सबसे पहले हम चर्चा करते हैं– मनोवैज्ञानिक परीक्षण की प्रक्षेपी विधि क्या हैं? इस विधि द्वारा व्यक्ति की किन–किन योग्यताओं का मापन होता है? इस विधि के अन्तर्गत कौन–कौन से परीक्षण आते हैं तथा किस प्रकार इनको प्रयुक्त किया जाता हैं?

10.4 प्रक्षेपी विधियाँ–

प्रिय विद्यार्थियों प्रक्षेपी विधि को ठीक प्रकार से समझने के लिये सबसे पहले प्रक्षेपण के अर्थ को जानना जरूरी है।

10.4.1 प्रक्षेपण शब्द का अर्थ–

प्रक्षेपण शबद से क्या आशय हैं?

प्रिय विद्यार्थियों, क्या आप जानते हैं कि प्रक्षेपण शबद का सर्वप्रथम प्रयोग किसने किया था? ''सिगमण्ड फ्रायड'' पहले ऐसे मनोवैज्ञानिक थे जिन्होंने सर्वप्रथम प्रक्षेपण शब्द का प्रयोग एक ''मनोरचना'' के रूप में किया था। फ्रायड का मत था कि प्रक्षेपण को व्यक्ति रक्षात्मक प्रथम (डिफेंस मैकेनिज्म) के रूप में प्रयुक्त करता है अर्थात्– प्रक्षेपण द्वारा व्यक्ति अपनी अनैतिक, अवांछित असामाजिक इच्छाओं को दूसरे व्यक्तियों पर आरोपित करके अपनी चिन्ता, द्वन्द्व एवं मानसिक संघर्षो का समाधान करता है।

फ्रायड के बाद एल.के. फ्रैंक ने प्रक्षेपण शब्द का प्रयोग और भी व्यापक अर्थ में किया। फ्रैंक के मतानुसार प्रक्षेपण द्वारा व्यक्ति न केवल अपनी अवांछित वरन् वांछित–अवांछित सभी प्रकार की इच्छाओं का आरोपण दूसरों पर करता है।

''प्रक्षेपण प्रक्रिया के द्वारा व्यक्ति अपनी सभी वांछित या अवांछित इच्छाओं तथा प्रेरणाओं को दूसरों पर आरोपित करता है।''

(एल.के. फ्रैंक, 1939)

आजकल ''प्रक्षेपण'' शब्द का प्रयोग इसी व्यापक अर्थ में किया जाता है।

तो पाठको अब आप समझ गये होंगे कि मनोविज्ञान में प्रक्षेपण शब्द का प्रयोग किस अर्थ में किया जाता है। प्रक्षेपण शब्द का अर्थ स्पष्अ हो जाने के बाद अब हम चर्चा करते हैं कि ''प्रक्षेपण परीक्षण'' क्या हैं?

10.4.2 प्रक्षेपी विधि का अर्थ एवं परिभाषा–

प्रिय विद्यार्थियों, मनोवैज्ञानिक परीक्षण के क्षेत्र में प्रक्षेपण विधि का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। यह परीक्षण की एक अप्रत्यक्ष विधि है। इसमें व्यक्ति या प्रयोच्य के समक्ष कुछ असंगठित तथा अस्पष्ट उद्दीपक उपस्थित किये जाते हैं अथवा ऐसी कोई परिस्थिति दी जाती है। जब प्रयोच्य के सामने ऐसे उद्दीपकों एवं परिस्थितियों को लाया जाता है तो, वह इनके प्रति कुछ–न–कुछ प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। इन परीक्षणों में व्यक्ति जो अनुक्रिया करता है, वह वस्तुतः उसके अचेतन मन में दबी इच्छायें, भावनायें एवं मानसिक संघर्ष होते हैं, जिनको वह दूसरे व्यक्तियों अथवा वस्तुओं पर आरोपित करता है। इस अप्रत्यक्ष विधि से व्यक्ति के व्यक्तित्व एवं उसकी योग्यताओं को समझने में मद्द मिलती है।

पाठकों, इस प्रकार से हम कह सकते है कि प्रक्षेपण विधि व्यक्तित्व शीलगुणों, मानसिक योग्यताओं के मापन की एक अप्रत्यक्ष या परीक्ष विधि है, जिसके एकांश या प्रश्न संगठित एवं स्पष्ट नहीं होते हैं। इन एकांशों के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त करके व्यक्ति अपनी योग्यताओं, शीलगुणों को परीक्ष रूप से अभिव्यक्त करता है।

''प्रक्षेपण विधि'' को भिन्न–भिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अलग–अलग ढंग से स्पष्ट किया है। पाठकों, कुछ प्रमुख मनोवैज्ञानिकों की परिभाषायें निम्नानुसार हैं–

''प्रक्षेपण वह विधि है जिसमें अपने समाज के प्रति व्यक्ति के प्रत्यक्षीकरण या उस समाज में उसके व्यवहार के विशिष्ट ढंगों को प्रकाशित करने के लिये अस्पष्ट, असंरचित, उद्दीपनों या परिस्थितियों का व्यवहार किया जाता है।''

(चैपलिन, 1975, पृ.सं. 411)

''प्रक्षेपी विधि'' पद का सर्वप्रथम प्रतिपादन लारेन्स फ्रैंक ने किया था।

10.4.3 प्रक्षेपी विधि का इतिहास–

प्रिय पाठकों, अब हम चर्चा करते हैं, प्रक्षेपी विधि के इतिहास पर।

1400 ए.डी में में लियोनार्डो द विन्सी ने कुछ ऐसे बच्चों का चयन किया, जिन्होंने कुछ अस्पष्ट प्रारूपों में विशिष्ट आकार तथा पैटर्न की खोज की। इस खोज से यह स्पष्ट हुआ कि उन बच्चों में रचनात्मकता का गुण विद्यमान था। इसके बाद सन् 1800 के उततरार्द्ध में बिने ने एक खेल जिसका नाम उन्होंने स्लोटो बताया। के माध्यम से बच्चों की निष्क्रिय कल्पना को मापने का प्रयत्न किया। स्लोटो खेल में बच्चों को कुछ स्याही के धब्बे देकर उनसे पूछा जाता था कि इन धब्बों में उन्हें क्या आकार या प्रारूप दिखाई देता है। इसके उपरान्त सन् 1879 में गाल्टन द्वारा एक परीक्षण का निर्माण किया गया। जिसका नाम था– ''शब्द साहचर्य परीक्षण''।

केन्ट तथा रोरोजानोफ्फ द्वारा परीक्षण कार्यो में गाल्टन द्वारा निर्मित परीक्षण का प्रयोग किया गया। सन् 1910 में युंग द्वारा नैदानिक मूल्यांकन के लिये इसी प्रकार के

परीक्षण का प्रयोग किया गया। इविंग होंस ने बुद्धि मापने के लिये ''वाक्यपूर्ति परीक्षण'' का उपयोग किया। धीरे–धीरे इन अनौपचारिक प्रक्षेपीय प्रतिधियों ने औपचारिक प्रक्षेपी परीक्षणों को जन्म दिया। जो अपेक्षाकृत अधिक मानकीकृत थे और इनके माध्यम से पहले की तुलना में अधिक अच्छे ढंग से मानसिक योग्यताओं का मापन करना संभव हो सका।

10.4.4 प्रक्षेपी विधि की विशेषतायें–

प्रिय पाठकों, अब आपके मन में जिज्ञासा उत्पन्न हो रही होगी कि इन प्रक्षेपी विधियों की प्रमुख विशेषतायें क्या होती हैं?

लिण्डजे, 1961 के अनुसार प्रक्षेपी विधियों के स्वरूप का विवेचन निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता हैं–

1. प्रक्षेपी परीक्षण में ऐसे एकांश होते हैं, जिनके प्रति बहुत सारी अनुक्रियायें उत्पन्न हो पाती है।
2. प्रक्षेपी विधि द्वारा व्यक्तित्व के अनेक पहलुओं का मापन किया जाना संभव होता है।
3. प्रक्षेपी विधि व्यक्ति के अचेतन मन में छिपी हुयी इच्छाओं, प्रेरणाओं को उत्तेजित करती है।
4. प्रक्षेपी विधि में एकांशों के प्रति प्रयोज्यों द्वारा जो प्रतिक्रियायें व्यक्त की जाती है उनका अर्थ प्रयोज्य को मालूम नहीं होता है।
5. प्रक्षेपी विधि में व्यकि के सामने असंगठित एवं अस्पस्ट परिस्थितियों एवं उद्दीपकों को उपस्थित किया जाता है।
6. इन विधियों के माध्यम से व्यक्तित्व की एक संगठित तथा सम्पूर्ण तस्वीर सामने आती है।
7. इन विधियों द्वारा अधिक मात्रा में जटिल मूल्यांकन तथ्य एवं आँकड़ें एकत्रित किये जाते हैं।
8. इन विधियों द्वारा व्यक्ति में स्वप्न चित्र उत्पन्न होते हैं।
9. इन विधियों में किसी भी अनुक्रिया को सही अथवा गलत नहीं माना जाता हैं।

10.4.5 प्रक्षेपी विधि के प्रकार–

प्रिय पाठकों, मनोवैज्ञानिकों ने प्रक्षेपी विधि के अनेक प्रकार बताये हैं। इस वर्गीकरण का आधार है– परीक्षण में प्रयुक्त किये जाने वाले उद्दीपक, परीक्षण के निर्माण एवं क्रियान्वयन का तरीका, उद्दीपकों के प्रति व्यक्त की गई अनुक्रिया इत्यादि।

इन विभिन्न वर्गीकरणों में लिण्डले द्वारा प्रक्षेपी विधियों का जो विभाजन किया गया, वह अधिक मान्य एवं लोकप्रिय है।

इन्होंने प्रक्षेपी विधियों को अनुक्रियाओं की कार्यो के आधार पर निम्न पाँच भागों में वर्गीकृत किया–

1. साहचर्य परीक्षण
2. संरचना परीक्षण
3. पूर्ति परीक्षण
4. चयन या क्रम परीक्षण
5. अभिव्यंजक परीक्षण

प्रक्षेपी विधि के प्रकार

लिण्डजे,

1961 का वर्गीकरण

उद्दीपकों के प्रति अनुक्रिया के आधार पर

साहचर्यसंरचना पूर्ति चयन या क्रम अभिव्यंजक

परीक्षण परीक्षण परीक्षण परीक्षण परीक्षण

(लिण्डजे का प्रक्षेपी विधि का वर्गीकरण)

1. साहचर्य परीक्षण–

प्रिय विद्यार्थियों, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, इस परीक्षण के अन्तर्गत प्रयोज्यों को जो उद्दीपक दिखलाये जाते है, ये अस्पष्ट होते हैं। इन अस्पष्ट उद्दीपकों को देखकर प्रयोज्य को यह बताना होता है कि उसमें उसे क्या चीज दिखाई दे रही है अथवा

किस वस्तु व्यक्ति, परिस्थिति, घटना इत्यादि से वह उस उद्दीपक को साहचर्चित कर रहा है। इस श्रेणी में निम्न दो परीक्षण आते हैं–

क. शब्द साहचर्य परीक्षण

ख. रोशार्क परीक्षण

क. शब्द साहचर्य परीक्षण–

जिज्ञासु पाठकों क्या आप जानते हैं कि शब्द साहचर्य परीक्षण का प्रयोग किस प्रकार से किया जाता है? इस परीक्षण कुछ पहले से ही निश्चित उद्दीपक शब्द होते है। इन पूर्व निश्चित शब्द उद्दीपकों को एक–एक करके प्रयोज्य को सुनाया जाता है। इन सभी शब्दों को सुनने के बाद उस व्यक्ति या प्रयोज्य के मन में जो शब्द सर्वप्रथम आता है, उस शब्द को उसे प्रयोगकर्ता को बताना होता है।

इस परीक्षण का उपयोग मुख्य रूप से सिगमण्ड फ्रायड और उनके शिष्य कार्ल युंग द्वारा किया गया। शब्द साहचर्य परीक्षण के माध्यम से युंग ने व्यक्ति की सांवेगिक समस्याओं का सफलतापूर्वक निदान किया। इस सफलता से प्रभावित होकर अमेरिका में केन्ट तथा रोजेन्फ द्वारा सन् 1910 में तथा रैपपोर्ट द्वारा सन् 1946 में दूसरे शब्द साहचर्य परीक्षण का निर्माण किया गया। इन परीक्षणों का प्रयोग साधारण मानसिक रोग से ग्रसित व्यक्तियों के व्यक्तित्व को मापने में मुख्य रूप से किया गया।

ख. रोशार्क परीक्षण–

प्रिय पाठकों, प्रक्षेपण परीक्षणों में ''रोशार्क परीक्षण'' सर्वाधिक लोकप्रिय परीक्षण हे। इस परीक्षण का प्रतिपादन स्विट्जरलैण्ड के मनोश्चिकित्सक हरमान रोशार्क द्वारा सन् 1921 में किया गया था। इस परीक्षण से संबंधित मुख्य–मुख्य बातें निम्नानुसार हैं–

- इस परीक्षण में कुल 10 कार्ड होते हें, जिनमें से पाँच काले एवं सफेद रंग के होते हैं तथा पाँच कार्ड रंगीन होते है।
- इन कार्ड पर स्याही के धब्बे के समान कुछ चित्र बने होते हैं।
- इन कार्ड को देखकर प्रयोज्य (जिसके व्यक्तित्व का मापन किया जा रहा है) को यह बताना होता है कि उस कार्ड में उसे क्या दिखाई दे रहा है, स्याही के धब्बे जैसा पूरा चित्र या उसका कोई भाग उसे किस चीज के समान दिखाइ दे रहा है अर्थात् उस कार्ड को देखकर उसके मन में क्या विचार या भाव आ रहे हैं।
- प्रत्येक कार्ड को एक–एक करके प्रयोज्य को दिया जाता हे।
- प्रयोज्य कार्ड को जैसे चाहे वैसे घुमा–फिरा कर देख सकते हैं।

- प्रत्येक कार्ड के प्रति प्रयोज्य द्वारा जो अनुक्रिया दी जाती है, उसे परीक्षणकर्ता नोट कर लेता है और उसका विश्लेषण निम्न आधारों पर करता है–

अ. स्थल निरूपण (Location) –

इस श्रेणी में इस बात का निर्धारण किया जाता है कि प्रयोज्य द्वारा जो अनुक्रिया व्यक्त की गइ है, वह पूरे चित्र के प्रति है अथवा चित्र (स्याही का धब्बा) के किसी अंश के प्रति। अनुक्रिया का आधार जैसा होता है, उसी के अनुसार परीक्षणकर्ता कुछ विशिष्ट अक्षर संकेतों का प्रयोग करता है। जैसे–

W जब अनुक्रिया का आधार पूरा चित्र या स्याही का पूरा धब्बा होता है तो उसे परीक्षणकर्ता डब्लू से अंकित करता है।

P जब अनुक्रिया का आधार पूरा धब्बा न होकर धब्बे का बड़ा एवं सामान्य अंश होता है।

Dd जब अनुक्रिया का आधार पूरा चित्र न होकर चित्र का असामान्य एवं छोटा अंश होता है।

S सिर्फ उजली अर्थात् सफेद जगहों के आधार पर अनुक्रिया देने पर एस. का प्रयोग किया जाता है।

ब. निर्धारक **(Determinats)** –

इस श्रेणी में परीक्षणकर्ता इस बात का निर्धारण करता है कि प्रयोज्य द्वारा जो अनुक्रिया व्यक्त की गई हैं, वह अनुक्रिया धब्बे के किस गुण के कारण की है अर्थात् आकार, रंग, गति इत्यादि में से अनुक्रिया का आधार कौन सा गुण है।

उदाहरण–

जैसे किसी प्रयोज्य को किसी कार्ड में चमकादड़ दिखाई दे रही है, तो निर्धारण में परीक्षणकर्ता इस बा का निर्धारण करेगा कि कार्ड में उसे (प्रयोज्य) को दो चमगादड़ दिखाई दे रही है, वह स्याही के धब्बे का रंग चमगादड़ जैसा है, इसलिये दिखाई दे रही है अथवा स्याही के धब्बे का आकार या गति चमगादड़ के समान प्रतीत होने के कारण उसे (प्रयोज्य को) ऐसा लग रहा है अथवा अन्य किसी कारण से उसे ऐसा प्रतीत हो रहा है इत्यादि। तो उस कारण का न परीक्षणकर्ता द्वारा निर्धारण किया जाता है।

इस श्रेणी के लिये लगभग 24 अक्षर संकेतों को प्रतिपादित किया गया है। इनमें से कुछ निम्न प्रकार हैं–

F– आकार **(Farm)** के लिये

M मानव गति अनुक्रिया के लिये **(For human movement response)**

FM पशु गति अनुक्रिया के लिये **(For animal movement response)**

C रंग **(Colur)** के लिये

m निर्जीव गति अनुक्रिया के लिये इत्यादि।

स. विषय–वस्तु **(content)** –

पाठकों, इस श्रेणी में प्रयोज्य द्वारा व्यक्त की गई अनुक्रिया की विषय–वस्तु का निर्धारण किया जाता है।

जैसे–

H अनुक्रिया की विषय वस्तु मनुष्य होने पर।

A विषय–वस्तु पशु होने पर

Hd मानव के किसी अंग का विवरण होने पर।

Ad पशु के किसी अंग का विवरण होने पर

Hh घरेलू वस्तुओं के लिये **Hh** अक्षर संकेत का प्रयोग किया जाता है।

Fi विषय वस्तु आग होने पर इत्यादि।

द. मौलिक अनुक्रिया एवं संगठन **(Original response and organization)** –

प्रिय पाठकों, विषय वस्तु के निर्धारण के बाद इस श्रेणी में मौलिक अनुक्रिया एवं संगठन का निर्धारण किया जाता है।

अब आपके मन में प्रश्न उठ रहा होगा कि यहाँ पर मौलिक अनुक्रिया एवं संगठन से क्या आशय है?

मौलिक अनुक्रिया–

मौलिग अनुक्रिया का अर्थ है, वह अनुक्रिया, जो प्रायः अधिकांश व्यक्तियों द्वारा किसी कार्ड के प्रति दी जाती है।

उदाहरण–

जैसे रोशार्क परीक्षण के प्रथम कार्ड को देखकर अक्सर लोग उसके प्रति ''चमगादड़'' या ''तितली'' के रूप में अनुक्रिया व्यक्त करते हैं। जो एक मौलिक अनुक्रिया का उदाहरण है। मौलिक अनुक्रिया को ही ''लोकप्रिय अनुक्रिया'' भी कहा जाता है।

मौलिक अनुक्रिया को अक्षर संकेत पी. के रूप में लिखा जाता है।

इस प्रकार पाठकों आप समझ गये होंगे कि मौलिक अनुक्रिया से क्या अभिप्राय है। अतः रोशार्क परीक्षण के प्रत्येक कार्ड के लिये कुछ अनुक्रियाओं को मौलिक या लोकप्रिय अनुक्रिया की श्रेणी में रखा गया है।

प्रिय विद्यार्थियों आपकी जानकारी के लिये एक बात और बता दी जाये कि कभी–कभी ऐसा भी होता है कि प्रयोज्य कुछ अनुक्रियाओं को एक साथ संगठित कर लेता है जिसे जेड अक्षर संकेत से व्यक्त किया जाता है।

प्रिय विद्यार्थियों, इस प्रकार आप जान गये हैं कि रोशार्क परीक्षण में प्रयोज्य द्वारा जो अनुक्रियायें दी जाती है, उनका विश्लेषण किस प्रकार से किया जाता है। विश्लेषण के बाद इनकी व्याख्या की जाती है।

तो आइये जानें कि किस प्रकार परीक्षणकर्ता इन विभिन्न अनुक्रियाओं की व्याख्या करता है।

उदाहरण–

W अनुक्रिया की अधिकता–

जैसे यदि किसी प्रयोज्य द्वारा दी गइ्र अनुक्रियाओं में **W** अनुक्रिया की अधिकता है, तो इससे उस व्यक्ति की तीव्र बुद्धि एवं अमूर्त चिन्तन की क्षमता का संकेत मिलता है।

D अनुक्रिया की अधिकता–

इस प्रकार की अनुक्रिया से यह बोध होता है कि उस व्यक्ति में किसी वस्तु को स्पष्ट रूप से देखने एवं समझने की क्षमता है।

Dd अनुक्रिया की अधिकता–

इस प्रकार की अनुक्रिया प्रायः कुल अनुक्रियाओं के 5 प्रतिशत से अधिक नहीं होती है। **Dd** अनुक्रिया से व्यक्ति के चिन्तन में अस्पष्टता का संकेत मिलता है किन्तु यदि **Dd**अनुक्रिया व्यक्ति द्वारा व्यक्त की गई कुल अनुक्रियाओं के 5 प्रतिशत से अधिक हो जाती है तो, यह एक मानसिक रोग, जिसे 'सिकोफ्रेनिया'' कहते हैं, की ओर संकेत है।

S अनुक्रिया की अधिकता–

इस प्रकार की अनुक्रियायें व्यक्ति की नकारात्मक प्रवृति एवं आत्म–हठधर्मिता का संकेत देती है।

F अनुक्रिया की अधिकता–

इससे एकाग्रता की क्षमता का बोध होता है।

C अनुक्रिया की अधिकता–

रंग–संबंधी अनुक्रियायें व्यक्तित्व के भावानात्मक पक्ष की ओर इशारा करती हैं जिन व्यक्तियों में सी. अनुक्रियायें नहीं होती है या कम होती है। तो यह भी मनोविदिलिा या सिकाफ्रोनिया के लक्षणों की ओर संकेत करती है।

F, Fm तथा **M** अनुक्रिया की अधिकता–

इस प्रकार की अनुक्रियायें व्यक्ति की कल्पना शक्ति का बोध कराती है।

P अनुक्रिया की अधिकता–

इसकी अधिकता होने पर रूढ़िगत चिन्तन तथा कमी होने पर व्यक्ति में सामाजिक अनुरूपता के शीलगुण की कमी का संकेत मिलता है।

एकसनर **(Exner, 1974)** के अनुसार–

''**P** अनुक्रियाओं से व्यक्ति में सर्जनात्मकता का भी बोध होता है।''

Z अनुक्रियाओं की अधिकता–

Z अनुक्रियाओं की अधिकता व्यक्ति में अनेक गुणों की ओर संकेत करती है, जैसे–

- उच्च बुद्धि
- सर्जनात्मकता
- निपुणता इत्यादि।

ग. होल्जमैन स्याही धब्बा परीक्षण–

प्रिय पाठकों, क्या आप जाने है कि रोशार्क के अलावा सन् 1961 में होल्जमैन द्वारा भी एक स्याही धब्बा परीक्षण का प्रतिपादन किया गया था, जिसे ''होल्जमैन स्याही–धब्बा परीक्षण'' कहा जाता है। इसकी प्रमुख विशेषतायें निम्न हैं–

- इस परीक्षण में दो फार्म होते हैं।
- प्रत्येक फार्म में 45 कार्ड होते हैं।
- प्रत्येक कार्ड पर रोशार्क परीक्षण के समान ही स्याही के धब्बे बने होते हैं।

- प्रत्येक कार्ड के प्रति प्रयोज्य को अधिक से अधिक एक अनुक्रिया व्यक्त करनी होती है।

किन्तु मनोवैज्ञानिक परीक्षणों में यह परीक्षण उतना लोकप्रिय नहीं है, जितना कि रोशार्क परीक्षण है।

2. **संरचना परीक्षण (Consruction test) –**

प्रिय पाठकों, मनोवैज्ञानिक परीक्षण की प्रक्षेपी विधियों में दूसरी महत्वपूर्ण विधि ''संरचना परीक्षण'' है। संरचना परीक्षण में व्यक्ति को परीक्षण उद्दीपकों के आधार पर एक कहानी अथवा अन्य समान चीजों की संरचना करनी होती है।

प्रिय पाठकों क्या आज जानते हैं कि संरचना परीक्षणों में सर्वाधिक लोकप्रिय परीक्षण कोनजर है? ''विषय आत्मबोध परीक्षण'' जिसको **TAT (Thematic Apperception Test)** के नाम से जाना जाता है। सबसे अधिक प्रसिद्ध संरचना परीक्षण है।

TAT का विस्तृत विवेचन निम्नानुसार है–

TAT (The matic Apperception Test) -

विद्यार्थियों, **TAT** का निर्माण मर्रे द्वारा सन् 1935 में हारवर्ड विश्वविद्यालय में किया गया था। इसके बाद सन् 1938 में मोर्गन के साथ मिलकर उन्होंने इस परीक्षण का संशोधन किया। **TAT** परीक्षण से संबंधित मुख्य बातें निम्नानुसार हैं–

- **TAT** में उद्दीपक या परिस्थितियों रोशार्क परीक्षण की तुलना में अधिक स्पष्ट होती है। अतः यह रोशार्क परीक्षण से थोड़ा भिन्न है।
- इस परीक्षण में कुल 31 कार्ड होते है, जिनमें से 30 कार्ड पर चित्र बने होते हैं तथा एक कार्ड साद होता है।
- **TAT** परीक्षण का प्रयोग करते समय, जिस व्यक्ति के व्यक्तित्व का परीक्षण किया जाता है। उसकी आयु तथा यौन के अनुसार 31 में से 20 कार्ड को चुन लिया जाता है।
- इन 20 कार्ड में 19 कार्ड पर चित्र होते हैं तथा एक कार्ड सादा होता है।
- किसी एक व्यक्ति को 20 कार्ड से अधिक नहीं दिये जाते हैं।
- प्रयोज्य को प्रत्येक कार्ड के चित्र को देखकर एक कहानी लिखने को कहा जाता है। इस कहानी में चित्र से संबंधित घटना के भूत, वर्तमान, एवं भविष्य तीनों कालों का वर्णन होता है।
- टैट का क्रियान्वयन परीक्षणकर्ता दो सत्रों में करता है।
- प्रथम सत्र में 10 कार्ड और द्वितीय सत्र में भी 10 कार्ड देकर प्रयोज्य को उन कार्ड के आधार पर कहानी लिखने को कहा जाता है।

- 19 कार्ड देने के बाद सबसे अन्त में सादा कार्ड दिया जाता है और उस कार्ड पर अपने मन से किसी चित्र को मानकर उस आधार पर कहानी लिखने को कहा जाता है।
- मर्रे का मत है कि **TAT** के इन दो सत्रों के बीच कम से कम 24 घंटे का अन्तर होना चाहिये।
- जब प्रयोज्य कहानी लिखने का कार्य पूरी कर लेता है तो परीक्षणकर्ता एक साक्षात्कार लेता है। इस साक्षात्कार का उद्देश्य यह जानना होता है कि कहानी लिखने में व्यक्ति की कल्पना शक्ति का स्रोत क्या हैं? कार्ड पर अंकित चित्र अथवा चित्र के अतिरिक्त अन्य कोई घटना अथवा परिस्थिति।

कहानी लेखन के उपरान्त परीक्षणकर्ता इन कहानियों का विश्लेषण करके उस व्यक्ति के व्यक्तित्व का आंकलन करता है।

मर्रे के मतानुसार इस परीक्षण का विश्लेषण निम्नांकित आधारों पर किया जाता है–

1. नायक
2. आवश्यकता
3. प्रेस
4. थीमा
5. परिणाम

1. नायक **(Hero)** –

सर्वप्रथम परीक्षणकर्ता प्रत्येक कहानी में नायक या नायिका कौन है, इस बात का पता लगाता है। कहानी में जिस पात्र की मुख्य भूमिका होती है उसको नायक या नायिका कहते हैं। ये भी संभव है कि कभी–कभी एक ही कहानी में एक से अधिक नायक या नायिका हो। इस परीक्षण में ऐसा माना जाता है कि प्रयोज्य नायक अथवा नायिका के साथ आत्मीकरण **(identification)** स्थापित कर लेता है और अपनी महत्वपूर्ण आवश्यकताओं को अभिव्यक्त करता है।

2. आवश्यकता **(Needs)**–

नायक या नायिका का पता लगाने के बाद यह जानने की कोशिश की जाती है कि उस नायक या नायिका का प्रमुख आवश्यकतायें क्या–क्या हैं क्योंकि अप्रत्यक्ष रूप से नायक–नायिका के माध्यम से उस व्यक्ति की आवश्यकतायें अभिव्यक्त होती है, जिसमें व्यक्तित्व का मापन किया जा रहा है।

मर्रे के अनुसार टैट द्वारा 28 प्रकार की आवश्यकताओं का मापन संभव है। कुछ प्रमुख आवश्यकतायें निम्न हैं–

- उपलब्धि की आवश्यकता
- प्रभुत्व की आवश्यकता
- संबंधन की आवश्यकता

3. प्रेस **(Press)** –

मर्रे के अनुसार प्रेस से यहाँ पर आशय वातावरण संबंधी बलों से है। इनके कारण कहानी के नायक या नायिका की आवश्यकतायें या तो पूरी हो जाती हैं अथवा पूरी होने से वंचित रह जाती है। मर्रे के अनुसार ऐसे वातावरण संबंधी बलों की संख्या 30 से भी ज्यादा है, जिनमें से कुछ प्रमुख निम्नानुसार हैं–

- शारीरिक खतरा
- आक्रमण या आक्रामकता– ये दो महत्वपूर्ण प्रेस हैं।

4. थीमा **(Thema)** –

प्रेस के निर्धारण के बाद टैअ के अगले चरण में थीमा का निर्धारण किया जाता है। थीमा से क्या आशय है? थीमा का तात्पर्य हैं– ''नायक या नायिका की आवश्यकता तथा प्रेस (वातावरण संबंधी बल) में हुयी अन्तःक्रिया से उत्पन्न घटना। मर्रे के अनुसार थीमा द्वारा व्यक्तित्व में निरन्तरता का ज्ञान होता है।

5. परिणाम **(Outcome)**–

TAT के अगले चरण में कहानी के परिणाम का पता लगाया जाता है अर्थात्– कहानी का समापन किस प्रकार से किया गया है, कहानी का निष्कर्ष किस प्रकार का है? निश्चित अथवा अनिश्चित। कहानी का परिणाम यदि निश्चित एवं स्पष्अ है तो इससे प्रयोज्य के व्यक्तित्व की परिपक्वता एवं वास्तविकता का ज्ञान होने की क्षमता का बोध होता है।

प्रिय पाठकों, आपकी जानकारी के लिये बता दें कि **TAT** का हिन्दी अनुकूलन कलकत्ता के प्रो, उमा चौधरी ने किया है। भारतीय संदर्भ में अधिकांशतः उसी का प्रयोग किया जा रहा है।

प्रिय विद्यार्थियों **TAT** के अतिरिक्त भी कुछ अन्य संरचना परीक्षण है, जो निम्न हैं–

1. बाल आत्मबोधन परीक्षण **(Children's Apperception Test or CAT)**
2. रोजेन विग तस्वीर–कुंठा अध्ययन **(Rosenwig picture–Frustrution study)**
3. रोबर्टस आत्मबोधन परीक्षण : बच्चों के लिए **(Roberts Apperception Test for Childrent or RATC)**

a) बाल आत्मबोधन परीक्षण **CAT** –

इस परीक्षण का निर्माण सन् 1954 में बेल्लाक द्वारा किया गया।

- **CAT** द्वारा बच्चों के व्यक्तित्व का मापन किया जाता है।
- **CAT** के कार्ड में सभी पात्र पशु हैं, मानव नहीं।
- **TAT** के समान ही **CAT** में भी बच्चों के व्यक्तित्व का मापन प्रत्येक कार्ड के आधार पर लिखी गई कहानी का विश्लेषण करके किया जाता है।

b) रोजेनविग तस्वीर–कुंठ अध्ययन –

- इस परीक्षण का निर्माण प्रख्यात मनोवैज्ञानिक रोजेन विग द्वारा किया जाने के कारण उन्हीं के नाम इसका नाम ''रोजेनविग तस्वीर–कुंठा गध्ययन'' रखा गया है।
- इस परीक्षण का निर्माण सन् 1949 में हुआ था।
- इस परीक्षण में कुल 24 कार्टून होते हैं, जिसके अन्तर्गत एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से इस प्रकार का व्यवहार करते हुये दिखालाया गया है कि दूसरे व्यक्ति में उस पहले वाले व्यक्ति के व्यवहार के कारण निश्चित तौर पर कुंठा की भावना उत्पन्न हो।
- इस परीक्षण में प्रयोज्य को प्रत्येक कार्टून को देखकर यह बताने के लिये कहा जाता है कि ऐसी परिस्थिति में कुंठित व्यक्ति किस प्रकार की प्रतिक्रिया व्यक्त करेगा।

c) रोबर्टस आत्मबोधन परीक्षण : बच्चों के लिये **(RATC)** –

- **RATC** का निर्माण सन् 1982 में मैकअर्थर तथा रोबर्टस ने किया था।
- इस परीक्षण में कुल 27 कार्ड होते हैं, जिनमें प्रत्येक कार्ड में कुछ बच्चे, अन्य बच्चों या कारकों के साथ अन्तःक्रिया करते हुये दिखाये जाते हैं।
- प्रयोज्य को प्रत्येक कार्ड को देखकर यह बताना होता है कि उस कार्ड के पात्र क्या कर रहे हैं अथवा क्या करेंगे।

तो प्रिय पाठकों, उपर्युक्त विवेचन के आधार पर आप समझ गये होंगे कि संरचना परीक्षण क्या है और किस प्रकार से इनको क्रियान्वित किया जाता है। इसके बाद अब हम चर्चा करते हैं। प्रक्षेपी विधियों में दी अगली विधि ''पूर्ति परीक्षण'' के विषय में।

iii) पूर्ति परीक्षण **(Completion Test)** –

प्रिय विद्यार्थियों ''पूर्ति परीक्षण'' का प्रक्षेपी विधियों में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। पूर्ति परीक्षण से संबंधित मुख्य बातें निम्नानुसार हैं–

- इस परीक्षण में प्रयोज्य को उद्दीपक अर्थात् वाक्य का एक हिस्सा दिखाया जाता है और भाग खाली होता है। इस खाली भाग की पूर्ति प्रयोज्य अपने अनुसार वाक्य बनाकर करता है।
- प्रयोज्य अधूरे वाक्य को जिस ढंग से पूरा करता है, परीक्षणकर्ता उस आधार पर उसके व्यक्तित्व का मापन करता है।
- सन् 1940 में रोहडे तथा हाइड्रोथ द्वारा तथा सन् 1950 में रौट्टर द्वारा पूर्ति परीक्षण का निर्माण किया गया।
- भारत में भी इस प्रकार के परीक्षणों का अनेक विद्वानों द्वारा निर्माण किया गया। जिनमें ''विश्वनाथ मुखर्जी'' का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। प्रिय पाठकों, वाक्यपूर्ति परीक्षण के एकांश के कतिपय उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं। जैसे कि–
- मेरे माता–पिता मुझसे प्रायः ....
- मेरी इच्छा है कि ....
- मैं प्रायः सोचता रहता हूँ कि ....

इत्यादि।

iv) चयन या क्रम परीक्षण (Choice or Ordering Test) –

प्रिय पाठकों, प्रक्षेपी परीक्षणों की अन्य विधि चयन या क्रम परीक्षण है। इस प्रकार के परीक्षणों में प्रयोज्य को परीक्षण उद्दीपकों को एक विशिष्ट क्रम में सुव्यवस्थित करना होता है अथवा दिये गये परीक्षण उद्दीपकों में से कुछ उद्दीपकों को अपनी पसंद, इच्छा या अन्य किसी आधार पर चुनना होता है। परीक्षणकर्ता, प्रयोज्य द्वारा चुने गये उद्दीपकों या उन उद्दीपकों को प्रयोज्य द्वारा जिस क्रम में सुव्यवस्थित किया जाता है, के आधार पर उसके व्यक्तित्व के शीलगुणों का मापन करता है।

उद्दीपकों को एक खास क्रम में सुव्यवस्थित करने तथा बहुत सारे उद्दीपकों में से प्रयोज्य द्वारा कुछ उद्दीपकों का चयन करने के कारण ही इस परीक्षण का नाम क्रम या चयन परीक्षण रखा गया है।

इस श्रेणी में आने वाले कुछ प्रमुख परीक्षण निम्न हैं–

क. जोन्डी परीक्षण, 1947

ख. काहन टेस्ट ऑफ सिम्बोल अरेन्जमेन्ट, 1955

क. जोन्डी परीक्षण–

- इस परीक्षण का निर्माण सन् 1947 में जोन्डी द्वारा किया गया था।
- इसमें प्रयोज्य को अनेक फोटोग्राफ के छः समूह एक–एक करके दिखलाये जाते हैं।

- इन तस्वीरों में से प्रयोज्य को दो ऐसे तस्वीरें चुनने के लिये कहा जाता है, जिनको वह सबसे अधिक पसन्द करता है तथा दो तस्वीरें ऐसी चुननी होती हैं, जिन्हें वह सर्वाधिक नापसंद करता है।
- प्रयोज्य द्वारा चयनित तस्वीरों के आधार पर परीक्षणकर्ता द्वारा उसके व्यक्तित्व के शीलगुणों का मापन किया जाता है।

ख. काहन टेस्ट ऑफ सिम्बोल अरेन्जमेन्ट (1955)–

पाठकों, जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है कि इसका निर्माण महान् मनोवैज्ञानिक काहन द्वारा सन् 1955 में किया गया था।

- इस परीक्षण में प्रयोज्य को 16 प्लास्टिक से बनी हुयी वस्तुऐं दिखायी जाती है। जैसे कि– तारा, पशु, क्रास इत्यादि और इन्हें कई श्रेणियों में छाँटना होता है, जैसे घृणा, प्रेम, अच्छा, बुरा, जीवित मृत इत्यादि।
- इसके बाद प्रयोज्य से पूछा जाता है कि उसने जिन–जिन 16 वस्तुओं को देखा है। उन वस्तुओं से वह किस व्यक्ति, वस्तु या घटना को साहचर्चित कर रहा है अथवा वह वस्तु उसे जिसके समान दिखाई दे रही है।
- प्रयोज्य द्वारा जो अनुक्रिया व्यक्त की जाती है, उस आधार पर उसके व्यक्तित्व का मापन किया जाता है।

अभिव्यंजक परीक्षण (Expressive Test)–

प्रिय विद्यार्थियों, जैसा कि इस परीक्षण के नाम से ही आपको स्पष्ट हो रहा होगा कि यह एक ऐसा प्रक्षेपी परीक्षण है, जिसमें प्रयोज्य को स्वयं को अभिव्यक्त करने का मौका दिया जाता है। अब प्रश्न यह उठता है कि व्यक्ति स्वयं को इस परीक्षण में किस प्रकार से अभिव्यक्त करता है अर्थात् अभिव्यक्ति का आधार क्या होता है?

इस परीक्षण में प्रयोज्य एक तस्वीर बनाता है। प्रयोज्य द्वारा जिस प्रकार की तस्वीर या चित्र बनाया जाता है, उस आधार पर उसके व्यक्तित्व के शीलगुणों के विषय में अनुमान लगाना संभव हो पाता है।

अभिव्यंजक परीक्षणों की श्रेणी में आने वाले कुछ प्रमुख परीक्षण निम्न हैं–

a) ड्रा–ए–परसन–परीक्षण **(Draw-a-person test or DAP Test)**

b) घर–पेड व्यक्ति परीक्षण **(House–Tree-Person Test or H-T-P)**

c) वेण्डर–गेस्टाल्ट–परीक्षण

a) डा–ए–परसन परीक्षण **(DAP Test)**–

- इसका निर्माण मैकोवर ने किया था।

- इस परीक्षण में प्रयोज्य को एक व्यक्ति का चित्र बनाने के लिये कहा जाता है।
- इसके बाद कभी–कभी आवश्यकतानुसार विपरीत लिंग के व्यक्ति, माँ, आत्मन् या परिवार का चित्र बनाने के लिये भी कहा जाता है।
- मै कोवर का मत है कि व्यक्ति जिस प्रकार से चित्र बनाता है, उसके आधार पर उसके अचेतन मन की अनेक प्रक्रियाओं के बारे में अनुमान लगाना संभव हो पाता है।

b) घर–पेड–व्यक्ति परीक्षण (H-T-P test)–

- इस परीक्षण का निर्माण प्रसिद्ध विद्वान बक द्वारा सन् 1948 में किया गया था।
- इसमें व्यक्ति को एक पेड़ तथा एक व्यक्ति का चित्र बनाना होता है।
- इसके बाद इन चित्रों का विवेचन एक साक्षात्कार में करना होता है।
- व्यक्ति द्वारा जिस ढंग से चित्र का वर्णन किया जाता है, उसके आधार पर उसके व्यक्तित्व के शीलगुणों का विश्लेषण किया जाता है।

c) वेण्डर–गेस्टाल्ट–परीक्षण–

इस परीक्षण का निर्माण सन् 1938 में लिऊरेटा वेण्डर द्वारा किया गया था।

- व्यक्ति के बौद्धिक ह्रास की मात्रा जानने के लिए इस परीक्षण का प्रयोग किया जाता है।
- इसमें 9 अत्यधिक साधारण चित्र होते हैं।
- इन चित्रों को देखकर पहले व्यक्ति को उनकी नकल उतारने के लिये कहा जाता है।
- इसके बाद उसके सामने से चित्र हटा लिये जाते हैं और उसे अपनी स्मृति के आधार पर ही उस चित्र को बनाना होता है।
- चित्र बनाते समय प्रयोज्य द्वारा प्रायः अनेक गलतियाँ होती हैं। जिनमें से कुछ प्रमुख निम्न हैं, जैसे कि–

  समन्वय में कमी

  पुनरावृत्ति

  चित्र घूर्णन इत्यादि।

- वेण्डर का मत है कि चित्र को बनाते समय की गई गलतियों के आधार पर व्यक्ति के व्यक्तित्व का विश्लेषण किया जाता है।

10.4.6 प्रक्षेपी विधि की सीमायें–

प्रिय पाठकों, इस बात में कोई संदेह नहीं है कि मनोवैज्ञानिक परीक्षण के क्षेत्र में प्रक्षेपी विधियों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। और खासकर व्यक्तित्व के मापन में, फिर भी कुछ विद्वानों ने कतिपय आधारों पर प्रक्षेपी विधियों की आलोचना की है।

आइजेन्क ने निम्न आधारों पर प्रक्षेपण परीक्षण की आलोचना की है–

i) अर्थपूर्ण तथा परीक्षणीय सिद्धान्त का अभाव–

आइजेन्क का कहना है कि प्रक्षेपी विधियों का कोई परीक्षणीय तथा अर्थपूर्ण सिद्धान्त नहीं है। अतः इनके द्वारा जो व्यक्तित्व का मापन किया जाता है, उससे व्यक्तित्व के बारे में कोइ ठोस निष्कर्ष नहीं निकलता है।

ii) आत्मनिष्ठ प्राप्तांक लेखन–

प्रक्षेपण परीक्षण की आलोचना इस आधार पर भी की गई है कि इन परीक्षणों का प्राप्तांक लेखन एवं व्याख्या अत्यधिक आत्मनिष्ठ है, जिसके कारण तक ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का मापन यदि अलग–अलग व्यक्तियों द्वारा किया जाता है तो उस व्यक्तित्व के बारे में उनके निष्कर्षो में भी भिन्नता पाई जाती है, जो किसी भी प्रकार से अर्थपूर्ण नहीं होता है।

iii) उच्च वैधता का अभाव–

आलोचकों का यह भी मत है कि प्रक्षेपी विधियों में पर्याप्त वैधता का अभाव पाया जाता है।

iv) प्रक्षेपीय परीक्षण के सूचकों तथा शीलगुणों के बीच प्रत्याशित संबंध का वैज्ञानिक आधार नहीं–

आइजेन्क ने प्रक्षेपण परीक्षण की आलोचना इस आधार पर भी की है कि प्रक्षेपीय परीक्षण के सूचकों तथा शीलगुणों के बीच प्रत्याशित संबंध का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है।

इस प्रकार अनेक आधारों पर प्रक्षेपी विधियों की आलोचना की गई है।

प्रिय पाठकों, उपर्युक्त विवरण से आप जान चुके हैं कि प्रक्षेपी विधि क्या है? प्रक्षेपण क्या हैं? प्रक्षेपी विधि में कौन–कौन से प्रमुख परीक्षण आते हैं और उनके क्रियान्वयन का तरीका क्या है। यद्यपि विद्वानों ने अनेक तर्क देकर प्रक्षेपी विधि की आलोचनायें की है तथापि मनोचिकित्सा की दृष्टि से व्यक्तित्व मापन में प्रक्षेपी विधियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न (खण्ड क)

प्रिय विद्यार्थियों, नीचे कुछ कथन दिये गये हैं। जो कथन सत्य है, उनके आगे सही का तथा जो गलत हो, उनके सामने क्रास का निशान लगायें–

1. प्रक्षेपण शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग सिगमण्ड फ्रायड द्वारा किया गया था। ( )
2. रोशार्क परीक्षण, साहचर्य परीक्षण के अन्तर्गत आता है। ( )
3. रोशार्क परीक्षण, प्रक्षेपी विधि के अन्तर्गत आता है। ( )
4. रोशार्क परीक्षण में कुल 20 कार्ड होते हैं। ( )
5. टी.ए.टी. की गणना पूर्ति परीक्षण के अन्तर्गत की जाती है। ( )
6. टी.ए.टी. में कुल 30 कार्ड होते है। ( )
7. प्रक्षेपी परीक्षण द्वारा व्यक्तित्व के अनेक पहलुओं का मापन संभव हो पाता है। ( )
8. प्रक्षेपी परीक्षण में तुलनात्मक रूप से स्पष्ट उद्दीपकों का प्रयोग किया जाता है। ( )
9. प्रक्षेपी परीक्षण में व्यक्ति अपने द्वारा की गई अनुक्रियाओं का अर्थ नहीं समझता है। ( )
10. रोशाक्र परीक्षण का प्रतिपादन सन् 1920 में किया गया था। ( )

प्रिय विद्यार्थियों प्रक्षेपी विधियों के बाद, अब हमारी चर्चा का अगला विषय है– मनोवैज्ञानिक परीक्षण की वस्तुनिष्ठ विधियाँ।

10.5 मनोवैज्ञानिक परीक्षण की वस्तुनिष्ठ विधियाँ।

10.5.1 वस्तुनिष्ठ विधियों का अर्थ–

प्रिय पाठकों, वस्तुनिष्ठ विधि से तात्पर्य ऐसी विधि से है, जिसमें उद्दीपक के रूप में या तो एक शब्द होता है अथवा एक वाक्य होता है। इस उद्दीपक के प्रति अनुक्रिया व्यक्त करने के लिये व्यक्ति को दिये गये विभिन्न उत्तरों में से किसी एक को चुनना होता है। मनोचिकित्सकों ने नैदानिक उपयोग की दृष्टि से वस्तुनिष्ठ परीक्षणों के निर्माण तथा

उनकी उपयोगिता एवं उत्कृष्टता को बनाये रखने के लिये कुछ मॉडलों का निर्माण किया और इन मॉडलों के आधार पर विभिन्न वस्तुनिष्ठ परीक्षणों का प्रतिपादन किया गया।

प्रिय विद्यार्थियों, अब आपके मन में यह प्रश्न उठ रहा होगा कि वे मॉडल कौन–कौन से हैं?

तो आइये, आपके इसी प्रश्न का समाधान करते हुये चर्चा करते है इन मॉडल के बारे में।

10.5.2 वस्तुनिष्ठ विधि से संबंधित प्रमुख मॉडल या उपागम–

मनोचिकित्सकों ने मुख्य रूप से निम्न चार मॉडलों का प्रतिपादन किया–

1. प्रत्यक्ष मूल्य मॉडल या तार्किक अथवा युक्तिसंगत उपागम

   (Face volume model or logical or rational approach)

2. अनुभवजन्य मॉडल या उपागम

   (Empirical model or approach)

3. कारक–वैश्लेषिक मॉडल या उपागम

   Factor-analytic model or approach)

4. सैद्धान्तिक मॉडल या उपागम

   (Theouritical model or approach)

a) प्रत्यक्ष मूल्य मॉडल (Face Volume Model) –

पाठकों, वस्तुनिष्ठ विधि के प्रथम मॉडल प्रत्यक्ष मूल्य मॉडल का विकास अमेरिका में प्रथम विश्व युद्ध के दौरान हुआ था। इस मॉडल को तार्किक या युक्तिसंगत उपागम के नाम से भी जाना जाता है। इस उपागम की प्रमुख विशेषत यह है कि इस पर आधारित परीक्षण के एकांशों का स्वरूप एकदम स्पष्ट एवं प्रत्यक्ष होता है। जिन्हें पढ़कर रोगी व्यक्ति भी एकांशों के उद्देश्य को भली–भाँति जान लेता है।

प्रत्यक्ष मूल्य मॉडल पर आधारित परीक्षण के कुछ एकांशों के उदाहरण निम्नानुसार हैं–

- क्या आपको सिरदर्द की शिकायत रहती हैं?
- क्या आप किसी पार्टी में जाने की बात से चिन्तित हो जाते हैं इत्यादि।

इस मॉडल में यह पूर्वकल्पना की जाती है कि व्यक्ति पूरी ईमानदारी के साथ अनुक्रिया व्यक्त करेगा तथा इसके साथ ही यह भी माना जाता है कि व्यक्ति स्वयं के शीलगुणों एवं विशेषताओं से पूरी तरह परिचित है।

प्रिय पाठकों, इस मॉडल पर आधारित सर्वप्रथम व्यक्तित्व परीक्षण का निर्माण सन् 1917 में वुडवर्थ द्वारा किया गया। यह प्रथम समायोजन आविष्कारिका थी। जिसका नाम ''वुडवर्थ पर्सनल डाटाशीट'' रखा गया।

जिज्ञासु विद्यार्थियों क्या आप जानते हैं कि इस आविष्कारिका का प्रयोजन क्या था? इसका उद्देश्य था, सांवेगिक रूप से क्षुब्ध व्यक्तियों की समायोजन करने की क्षमता को मापना और ऐसे व्यक्तियों को पहचानना।

यद्यपि प्रारंभ में इस उपागम पर आधारित अनेक परीक्षणों का निर्माण और उपयोग किया गया, किन्तु धीरे–धीरे सन् 1930 तक इस उपागम में अनेक खामियाँ नजर आने लगी। परिणामस्वरूप इस मॉडल का उपयोग नहीं के बराबर किया जाने लगा क्योंकि एकांशों की अत्यधिक स्पष्टता के कारण व्यक्ति प्रायः मनगढंत उत्तर देते थो। इस उपागम के विकल्प के रूप में अनुभवजन्य उपागम का विकास हुआ।

b) अनुभवजन्य मॉडल या उपागम (Empirical model or approach)–

प्रत्यक्ष मूल्य मॉडल की कमियों को दूर करने के उद्देश्य से अनुभवजन्य मॉडल का विकास हुआ। इस मॉडल की खास बात यह है कि इस पर आधारित परीक्षणों में केवल उन्हीं एकांशों को रखा गया है जो सामान्य व्यक्तियों के समूह एवं विशिष्ट नैदानिक समूह के मध्य स्पष्ट रूप से अन्तर कर सके। इस मॉडल पर आधारित कुछ प्रमुख परीक्षणों के नाम निम्न हैं–

क. माइनेसोटा मल्टीफेजिक व्यक्तित्व आविष्कारिका **(MMPI)**

ख. कैलिफोर्निया व्यक्तित्व आविष्कारिका **(CPI)**

c) कारक–वैश्लेषिक मॉडल (Factor analytic model)–

जिज्ञासु विद्यार्थियों, इस मॉडल की महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसके अन्तर्गत विभिन्न परीक्षणों से जो निष्कर्ष या परिणाम प्राप्त होते हैं, उन्हें परस्पर सहसंबंधित करते है।

कारक–विश्लेषण पर आधारित होने के कारण ही इसे कारक वैश्लेषिक मॉडल कहा जाता है। इस उपागम पर आधारित परीक्षणों के विकास में कैटेल, आइजेन्क तथा गिलफोर्ड का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनके द्वारा निर्मित व्यक्ति परीक्षणों को नैदानिक दृष्टि से अत्यधिक उपयोगी माना गया है।

iv) सैद्धान्तिक मॉडल या उपागम–

इस मॉडल पर आधारित परीक्षणों में मानव व्यक्तित्व के सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुये एकांशों का निर्माण किया जाता है। कहने का आशय यह है कि व्यक्तित्व के सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुये एकांशों का चयन किया जाता है।

उदाहरण–

जैसे कि व्यक्तित्व के किसी सिद्धान्त के अनुसार व्यक्तित्व तीन महत्वपूर्ण आयाम है– संवेग **(Emotion)**, चिन्तन **(Thoughts)** और व्यवहार **(Behaviour)**। तो इस स्थिति में सैद्धान्तिक मॉडल पर आधारित जिस परीक्षण का निर्माण किया जायेगा, उसेके एकांश ऐसे होंगे, जिससे संवेग, विचार एवं व्यवहार व्यक्तित्व की तीनों विभओं का मापन हो सकें।

प्रिय पाठकों, आपकी जानकारी के लिये बता दें कि सैद्धान्तिक मॉडल पर आधारित परीक्षणों के एकांशों का स्वरूप भी प्रत्यक्ष मूल्य मॉडल के अनुसार बनने वाले परीक्षणों के एकांशों के समान ही स्पष्ट एवं प्रत्यक्ष होते हैं। इस मॉडल पर आधारित सर्वाधिक लोकप्रिय परीक्षण हैं– ''एडवार्ड्स पर्सनल प्रेफरेन्स शेड्यूल'' **(Edwards personal preference schedule)**। इसका निर्माण एड्वार्डस ने किया था।

इस प्रकार प्रिय विद्यार्थियों, उपरोक्त विवरण से आप समझ गये होंगे कि वस्तुनिष्ठ विधि क्या है तथा इसके प्रमुख उपागम या मॉडल कौन–कौन से है तथा इन उपागमों की प्रमुख विशेषतायें क्या हैं अर्थात्– ये किन–किन सिद्धान्तों पर आधारित हैं।

प्रस्तुत ईकाई के अगले अनुच्छेद में हम चर्चा करेंगे प्रमुख वस्तुनिष्ठ परीक्षणों के बारे में।

10.5.3 प्रमुख वस्तुनिष्ठ विधियाँ–

प्रिय विद्यार्थियों कुछ प्रमुख वस्तुनिष्ठ विधियों का विवेचन हम निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत कर रहे हैं–

- **i)** माइनेसोटा मल्टीफेजिक पर्सनालिटी इन्वेंट्री–2 **(MMPI-2)**
- **ii)** कैलिफोर्निया साइकोलोजिकल आविष्कारिका
- **iii)** बेल समायोजन आविष्कारिका
- **iv)** कैटेल सोलह व्यक्तित्व–कारक प्रश्नावली

i) माइनेसोटा मल्टीफेजिक पर्सनालिटी इन्वेंट्र–2 **(MMPI-2)**

जिज्ञासु पाठकों, **MMPI** का प्रतिपादन मूल रूप से हाथावे एवं मैककिनले द्वारा सन् 1940में किया गया था। इसमें 550 एकांश थे और प्रत्येक एकांश के लिये निम्न तीन उत्तर थे।

a) **True** सत्य

b) **False** असत्य

c) **conn't say** कहा नहीं जा सकता

एम.एम.पी.आई. के मौलिक प्रारूप के दो प्रतिरूप उपलब्ध होते हैं– (1) वैयक्तिक कार्ड प्रतिरूप एवं (2) सामूहिक पुस्तिका प्रारूप। इसके मौलिक प्रारूप में नैदानिक नापनियों की संख्या दस तथा वैधता मापनियों की संख्या तीन है।

प्रिय पाठकों, एम.एम.पी.आई. का मूल उद्देश्य व्यक्तित्व के रोगात्मक शीलगुणों का मापन करना है। अतः इसकी 10 नैदानिक मापनियों 10 रोगात्मक शीलगुणों का मापन करती है और वैधता मापनियों पर हो। के प्राप्तांकों द्वारा व्यक्ति द्वारा जो अनुक्रिया व्यक्त की जाती है उसकी विश्वसनीयता एवं वैधता ज्ञात की जाती है।

मौलिक **MMPI** में समय परिस्थिति एवं आवश्यकता के अनुसार अनेक संशोधन हुये। इन सभी में जो सर्वाधिक नवीनतम संशोधन है, उसे **MMPI-2** नाम दिया गया। क्या आप जानते है, यह संशोधन किनके द्वारा किया गया? इस संशोधन में वुचर, डाहस्ट्रोम, ग्राहम, टेलेमन तथा केमर द्वारा महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया गया। **MMPI-2** की मुख्य विशेषतायें निम्नानुसार हैं–

1. 10 नैदानिक मापनी एवं तीन वैधता मापनी है।

2. इसमें कुल 567 एकांश है, जिनमें से प्रथम 370 एकांश मौलिक **MMPI** से ही लिये गये हैं और इनमें केवल सम्पादकीय परिवर्तन ही किये गये हैं। इन 370 एकांशों के माध्यम से 10 नैदानिक विभाओं का मापन किया जाता है और शेष 197 एकांशों द्वारा व्यक्तित्व के अन्य पक्षों का मापन किया जाता है। 197 एकांशों में से 107 सर्वथा नये है।

एम.एम.पी.आई–2 की नैदानिक एवं वैधता मापनियों का वर्णन निम्नानुसार है–

नैदानिक मापनी **(Clinical scale)** –

1. रोगभ्रम–

- इस मापनी द्वारा व्यक्ति की उस प्रवृत्ति का मापन होता है, जिसमें वह शारीरिक स्वास्थ्य एवं शारीरिक कार्यो के प्रति आवश्यकता से अधिक चिंतित रहता है।
- इस मापनी में कुल 32 एकांश होते हैं।

2. विषाद–

- इस मापनी द्वारा भावनात्मक विकृतियों जैसे कि उदासी, अकेलापन, अभिप्रेरण एवं ऊर्जा में कमी, असमर्यता इत्यादि का मापन किया जाता है।
- इसमें 57 एकांश होते हैं।

3. रूपान्तर हिस्टीरिया–

- इसमें व्यक्ति की ऐसी स्नायुविकृत प्रवृत्ति का मापन किया जाता है, जिसके अन्तर्गत रोगी अपनी मानसिक चिन्ताओं एवं संघर्षो से निजात पाने के लिये कुछ शारीरिक लक्षण विकसित कर लेता है।
- इसमें 60 एकांश पाये जाते हैं।

4. मनोविकृत विचलन–

- इसमें व्यक्ति की सामाजिक एवं नैतिक नियमों का उल्लंघन करने की प्रवृत्ति तथा दण्ड मिलने पर भी उससे कुछ भी शिक्षा न ग्रहण करने की प्रवृत्ति का मापन होता है।
- इसमें 50 एकांश होते हैं।

5. पुरूषत्व – नारीत्व–

- इस मापनी द्वारा व्यक्ति के सीमांतीय यौन भूमिका करने की प्रवृत्ति का मापन किया जाता है।
- इसमें कुल 56 एकांश होते हैं।

6. स्थिर व्यामोह–

- इसके द्वारा व्यक्ति की बिना किसी कारण या तर्क के शंका–सन्देह करने की प्रवृत्ति एवं दंडात्मक एवं उत्कृष्टता से संबंधित भ्रान्ति का मापन किया जाता है।
- इसमें कुल 40 एकांश होते हैं।

7. मनोदौर्बल्यता–

- इसके द्वारा व्यक्ति में अतार्किक एवं असामान्य डर, मनोग्रस्ति, बाध्यता इत्यादि प्रवृत्तियों का मापन किया जाता है।
- इसमें 48 एकांश है।

8. मनोविदालिता–

- व्यक्ति में असामान्य चिन्तन या व्यवहार करने की प्रवृत्ति का मापन इस मापनी द्वारा किया जाता है।
- इस मापनी में कुल 78 एकांश हैं।

9. अल्पोन्माद–

- इस मापनी द्वारा व्यक्ति के विचारों में बिखराव, सांवेगिक उत्तेजना, अतिक्रिया इत्यादि का मापन होता है।
- इसमें कुल 46 एकांश हैं।

10. सामाजिक अर्न्मुखता–

- इस मापनी द्वारा व्यक्ति की अर्न्मुखी प्रवृत्ति जैसे– सामाजिक अवसरों या समारोहों में शामिल न होने की प्रवृत्ति, लज्जाशीलता, स्वयं में खोये रहने या अकेले रहने की प्रवृत्ति असुरक्षा इत्यादि का मापन होता है।
- इसमें 69 एकांश होते हैं।

वैधता मापनी **(Validity Scales)** –

प्रिय विद्यार्थियों, नैदानिक मापनी के बाद अब वैधता मापनी का विवेचन निम्नानुसार है–

(Cannot say) -

- इस मापनी में वे एकांश आते हैं, जिनका उत्तर व्यक्ति नहीं दे पाता है।
- जब इस मापनी में एकांशों की संख्या अधिक हो जाती है तो इससे निम्न बातों का पता चलता है–

a) या तो व्यक्ति एकांशों को ठीक ढंग से नहीं समझ पा रहा है।

b) व्यक्ति परीक्षक के साथ सहयोग की प्रवृत्ति नहीं अपना रहा है अथवा

c) व्यक्ति ने रक्षात्मक मनोवृत्ति **(Defensive attitude)** अपना लिया है।

"Cannot say" वैधता मापनी के संबंध में मनोवैज्ञानिकों द्वारा कहा गया है कि–

''इन तीन वैधता मापनियों के अतिरिक्त एक और वैधता मापनी है, जिसे? या से संकेतिक किया जाता है तथा इसमें उन एकांशों को रखते हैं। जिनका उत्तर व्यक्ति नहीं दे पाता है।''

(निटजील, वर्नस्टीन तथा मिलिक, 1994)

L (Lie) -

- इस मापनी में कुल 15 एकांश है।
- इसके द्वारा व्यक्ति की झूठ बोलने या अपने आपको गलत ढंग से प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति का मापन किया जाता है।

F (Frequency or infrequency) -

- यदि प्रयोज्य द्वारा इस मापनी पर उच्च अंक प्राप्त किये गये हैं तो इससे उस व्यक्ति की निम्न प्रवृत्तियों का पता चलता है–

i) व्यक्ति ने एकांशों के प्रति अनुक्रिया व्यक्त करने में लापरवाही की है। या

ii) अपने रोगात्मक लक्षणों को जान बूझकर अधिक बढ़ा–चढ़ाकर पेश किया है।

- इसमें कुल 60 एकांश है।

K (Correction) -

- इस मापनी द्वारा व्यक्ति के अपनी समस्या के बारे में आवश्यकता से अधिक कहने अथवा अपनी परेशानी या समस्या के विषय में अत्यधिक सुरक्षात्मक दृष्टिकोण अपनाने की प्रवृत्ति का मापन किया जाता है।
- इसमें कुल 30 एकांश है।

प्रिय विद्यार्थियों उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त एम.एम.पी.आई–2 की कुछ अन्य विशेषतायें भी है, जो निम्नानुसार हैं–

क. **MMPI-2** में एकांशों का समूहन करके कुल अन्तर्वस्तु मापनियाँ बनायी गयी हैं, जिनकी संख्या 15 है। इन मानियों द्वारा व्यक्तित्व के 15 ऐसे कारकों का मापन करना संभव हो पाया है, जिनका मापन 10 नैदानिक मापनियों द्वारा नहीं किया जाता है। इन कारकों में डर, दुश्चिन्ता, क्रोध, पारिवारिक समस्यायें इत्यादि प्रमुख है।

ख. **MMPI-2** में 4 वर्धता मापनियों के अतिरिक्त दो और नयी वैधता मापनियों को शामिल किया गया है। इनका उपयोग उन चार वैधता मापनियों के साथ ही करना होता है। ये दो वैधता मापनियाँ हैं–

i) **VRIN – The variable Response Inconsitency**

ii) **TRIN – The True Resonse Inconsistency**

उपर्युक्त दोनों मापनियों के माध्यम से व्यक्ति के एकांशों के प्रति असंगत ढंग से प्रतिक्रिया व्यक्त करने की प्रवृत्ति का मापन होता है।

इस प्रकार प्रिय विद्यार्थियों आप जान चुके है कि एम.एम.पी.आई.–2 परीक्षण क्या है? यद्यपि अनेक मनोवैज्ञानिकों ने कुछ आधारों पर इस परीक्षण की आलोचना की है। लेकिन फिर भी व्यक्तित्व के मापन में एम.एम.पी.आई का जो महत्व है उसे हम नकार नहीं सकते।

कैलिफोर्निया साइकोलॉजिकल आविष्कारिका–

- इस परीक्षण का निर्माण सन् 1957 में हुआ और सन् 1987 में गफ ने इसमें कई संशोधन किये।
- इस परीक्षण द्वारा व्यक्तित्व के सामान्य शीलगुणों को मापा जाता है।
- इसमें कुल 462 एकांश है। जिनमें से आधे एकांश एम.एम.पी.–1 से ही लिये गये है।
- इन एकांशों के प्रति व्यक्ति को सही–गलत के रूप में अनुक्रिया व्यक्त करनी होती है।
- इस परीक्षण में भी तीन वैधता मापनियाँ है।
- इस परीक्षण की वैधता एवं विश्वसनीयता अत्यधिक है।

बेल समायोजन आविष्कारिका–

- इस परीक्षण का उद्देश्य यह जानना होता है कि एक व्यक्ति को समायोजन करने में किन–किन समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है अर्थात् उसकी समयोजान संबंधी परेशानियाँ क्या–क्या है?
- जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है महान् मनोवैज्ञानिक बेल द्वारा इसका निर्माण किये जाने के कारण ही इसका नाम ''बेल समायोजान आविष्कारिका है।
- इसका प्रतिपादन सन् 1934 में किया गया था।
- इस परीक्षण के दो रूप या फार्म हैं–

1. विद्यार्थी फार्म **(Student Form)**
2. व्यावसायिक फार्म **(Occupational Form)**

1. विद्यार्थी फार्म–

- इसमें कुल 140 एकांश होते हैं।
- ये एकांश चार क्षेत्रों –

अ. घर

ब. स्वास्थ्य

स. सामाजिक अवस्था

द. सांवेगिक अवस्था–से संबंधित समायोजन समस्याओं को जानने में समायक होते हैं।

2. व्यावसायिक फार्म–

- इसमें कुल 160 एकांश होते हैं। 140 एकांश विद्यार्थी फार्म के तथा इनमें 20 एकांश और जोड़ दिये जाते हैं।
- इसमें कुल 5 क्षेत्र आते है।
- इससे व्यस्कों की समायोजन क्षमता का मापन होता है।

कैटेल सोलह व्यक्तित्व – कारक प्रश्नावली–

- यह परीक्षण वस्तुनिष्ठ विधि के ''कारक वैश्लेषिक मॉडल'' पर आधारित है।
- इसका निर्माण कैटेल द्वारा किया गया।
- इसके द्वारा ऐसे व्यक्तियों के 16 शीलगुणों का मापन किया जाता है, जिनकी आयु 17 साल से ज्यादा हो।
- इस परीक्षण के कई फार्म हैं।

प्रिय विद्यार्थियों, उपर्युक्त वस्तुनिष्ठ परीक्षणों के अतिरिक्त भी अनेक दूसरे वस्तुनिष्ठ परीक्षण है।

जैसे कि–

i) Eysenck personality questionnaire (EPQ)

ii) Personality research form (PRF)

iii) Basic personality inventory **इत्यादि**

10.5.4 वस्तुनिष्ठ विधि के गुण एवं दोष–

प्रिय पाठकों, वस्तुनिष्ठ विधि के गुण–दोष का विवेचन हम निम्न प्रकार से कर सकते हैं–

गुण–

1. शीघ्रगामी माप–

मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि वस्तुनिष्ठ विधियों का क्रियान्वयन करना अपेक्षाकृत अधिक सरल एवं सुविधाजनक है।

इनके द्वारा एक साथ अर्थात् एक समय में ही अनेक व्यक्तियों के व्यक्तित्व का मापन आसानी से किया जा सकता है।

2. नैदानिक एवं सामान्य दोनों ही परिस्थितियों में प्रयोग–

इन परीक्षणों का प्रयोग नैदानिक एवं सामान्य दोनों ही परिस्थितियों में समान रूप से किया जा सकता है।

दोष–

उच्च वैधता का अभाव–

आलोचकों का मत है कि वस्तुनिष्ठ विधियों में पर्याप्त वैधता का अभाव होता है।

एकांशों का अत्यधिक प्रत्यक्ष एवं स्पष्ट होना–

वस्तुनिष्ठ विधियों में एकांश इतने अधिक स्पष्ट एवं प्रत्यक्ष होते हैं कि व्यक्ति को बहुत आसानी से पता चल जाता है कि उससे क्या पूछा जा रहा है। इसका परिणाम यह होता है कि वह पूरी ईमानदारी के साथ अनुक्रिया व्यक्त नहीं करता है। इन परीक्षणों में बहुत बार ऐसी संभावना होती है कि व्यक्ति एकांश का सही उत्तर न देकर अपने मन से उसका कोई दूसरा उत्तर दे दें। तो ऐसी स्थिति में परीक्षण के परिणामों की वैधता एवं विश्वसनीयता संदिग्ध हो जाता है।

अनपढ़ छोटे बच्चों पर क्रियान्वयन संभव नहीं–

वस्तुनिष्ठ परीक्षणों के एकांशों में भाषा का प्रयोग किया जाता है अर्थात् इनका स्वरूप शाब्दिक होता है। अतः इनका प्रयोग केवल उन्हीं व्यक्तियों पर किया जाता है। जो शिक्षित हो। अनपढ़, छोटे बच्चों जिनको भाषा की समझ नहीं है। उन पर इनका क्रियान्वयन नहीं किया जा सकता। अतः इन परीक्षणों की उपयोगिता यहाँ पर सीमित हो जाती है।

व्यक्तित्व का मापन अलग–अलग शीलगुणों द्वारा–

आलोचकों के अनुसार वस्तुनिष्ठ विधियों में व्यक्तित्व का मापन अलग–अलग शीलगुणों के रूप में होता है। किन्तु इस प्रकार से व्यक्तित्व की ठीक–ठीक व्याख्या नहीं हो पाती है।

''चूँकि व्यक्तित्व आविष्कारिका में व्यक्तित्व का मापन सम्पूर्ण रूप से नहीं होता है। अतः इस विधि को बहुत वैज्ञानिक नहीं माना जा सकता है।'' (फ्रीमैन, 1962)

तो प्रिय पाठकों, उपरोक्त विवरण से आप समझ गये होंगे कि मनोवैज्ञानिक परीक्षण की वस्तुनिष्ठ विधियाँ क्या हैं? ये किस प्रकार से प्रक्षेपी विधियों से भिन्न हैं? प्रमुख वस्तुनिष्ठ परीक्षण कौन–कौन से हैं और किस प्रकार से इनका उपयोग किया जाता है। इत्यादि।

प्रत्येक विधि, प्रत्येक तकनीक की अपनी उपयोगिता एवं सीमायें होती है। समय एवं आवश्यकता के अनुसार अलग–अलग प्रकार की विधियों की आवश्यकता होती है। इसलिये चाहे परीक्षण किसी भी प्रकार का हो का अपना–अपना महत्व है। जिससे किसी भी प्रकार से नकारा नहीं जा सकता।

अभ्यासार्थ प्रश्न (खण्ड ख)

प्रिय पाठकों, नीचे कुछ कथन दिये गये हैं। जो कथन सही हो, उसके सामने सही का तथा जो गलत हो उसके आगे गलत का निशान लगायें–

1. वस्तुनिष्ठ परीक्षणों में व्यक्ति अनुक्रिया के लिये दिये गये उत्तरों में से किसी एक का चयन करता है। ( )
2. प्रत्यक्ष मूल्य मॉडल का विकास द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान हुआ था। ( )
3. प्रत्यक्ष मूल्य मॉडल का विकास अमेरिका में हुआ था। ( )
4. प्रत्यक्ष मूल्य मॉडल पर आधारित प्रथम परीक्षण का निर्माण कैटेल द्वारा किया गया। ( )
5. MMPI अनुभवजन्य मॉडल पर आधारित परीक्षण है। ( )
6. MMPI प्रक्षेपी परीक्षण है। ( )
7. MMPI में 10 नैदानिक मापनी है। ( )
8. प्रत्यक्ष मूल्य उपागम पर आधारित परीक्षण के एकांशों का स्वरूप अस्पष्ट होता है।( )
9. सैद्धान्ति मॉडल पर आधारित परीक्षण के एकांशों का स्वरूप स्पष्ट होता है। ( )
10. पहली समायोजन आविष्कारिका का निर्माण वुडवर्थ द्वारा किया गया। ()

10.6 सारांश–

प्रिय विद्यार्थियों, इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आधार पर आप समझ गये होंगे कि मनोवैज्ञानिक परीक्षण की प्रक्षेपी एवं वस्तुनिष्ठ विधियाँ क्या हैं? इनके अन्तर्गत कौन–कौन से परीक्षण आते है और किस प्रकार से इनका प्रयोग किया जाता है। प्रक्षेपी विधियाँ व्यक्ति के अचेतन मन में छिपी हुयी इच्छाओं, भावनाओं, प्रक्रियाओं को चेतन स्तर पर लाने एवं व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं को समझने में अत्यधिक उपयोगी है। वहीं दूसरी ओर

वस्तुनिष्ठ विधियों का भी अपना महत्व है। वस्तुतः दोनों प्रकार की विधियाँ ही परिस्थिति एवं आवश्यकता के अनुसार नैदानिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रखती है। कोई भी एक विधि अपने आप में सम्पूर्ण नहीं है। प्रत्येक विधि की अपनी उपयोगिता एवं सीमायें है। अतः मनोविज्ञान एवं मनश्चिकित्सा के क्षेत्र में प्रक्षेपी एवं वस्तुनिष्ठ दोनों ही विधियों का महत्वपूर्ण स्थान है।

10.7 शब्दावली–

प्रक्षेपण– अपनी इच्छाओं प्रेरणाओं एवं भावनाओं का दूसरों पर आरोपण करना।

प्रयोज्य– जिन पर प्रयोग किया जाता है।

उद्दीपक – जो अनुक्रिया करने के लिये उत्तेजित करे।

मनोवैज्ञानिक परीक्षण– एक मापक जिसके द्वारा किसी मानसिक योग्यता (बुद्धि, अभिवृत्ति, रचनात्मकता इत्यादि) का मात्रात्मक मापन किया जाता है।

साहचर्य– संबंध

अनुक्रिया– प्रतिक्रिया

अभिव्यंजक– अभिव्यक्त करने वाला

अनुभवजन्य– अनुभव से उत्पन्न होने वाला

10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(खण्ड क)

1.सत्य 2.सत्य 3.सत्य 4.असत्य 5.असत्य 6.असत्य 7.सत्य 8.असत्य 9. सत्य 10.असत्य

(खण्ड ख)

1.सत्य 2.असत्य 3.सत्य 4.असत्य 5.सत्य 6.असत्य 7.सत्य 8.असत्य 9.सत्य 10.सत्य

10.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह, अरूण कुमार। (2006) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।

2. सुलेमान, मुहम्मद एवं तरन्नुम, रिजवाना। (2009) मनोविज्ञान में प्रयोग एवं परीक्षण। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।

3. सिंह, अरूण कुमार। (2006) व्यक्तित्व मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।

4. सिंह, अरूण कुमार। (2006) उच्चतर नैदानिक मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।

10.10 निबंधात्मक प्रश्न

प्र.5 ''प्रक्षेपण'' शब्द के अर्थ को स्पष्ट करते हुये प्रक्षेपी विधियों का विस्तार से विवेचन कीजिए।

प्र.2 वस्तुनिष्ठ विधि से आप क्या समझते हैं? वस्तुनिष्ठ विधि के प्रमुख मॉडलों का वर्णन कीजिए।

प्र.3 प्रमुख वस्तुनिष्ठ परीक्षणों का विवेचन कीजिए।

प्र.4 निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये–

1. रोशार्क परीक्षण
2. MMPI
3. प्रक्षेपी विधि की प्रमुख विशेषतायें।

इकाई–11 बुद्धि : प्रकृति परिभाषाएं एवं सिद्धान्त

इकाई की संरचना

11.1 प्रस्तावना

11. 2 उद्देश्य :

11.3 प्रकृति एवं स्वरूप

11.4 परिभाषाए

11.5 बुद्धि के सिद्धान्त

11.5.1 बिने का एक कारक सिद्धान्त

11.5.2 द्वितत्व या द्विकारक सिद्धान्त

11.5.3 त्रिकारक बुद्धि सिद्धान्त

11.5.4 थार्नडाइक का बहुकारक बुद्धि सिद्धान्त

11.5.5 थर्स्टन का समूह कारक बुद्धि सिद्धान्त

11.5.6 थॉमसन का प्रतिदर्श सिद्धान्त

11.5.7. बर्ट तथा वर्नन का पदानुक्रमित बुद्धि सिद्धान्त

11.5.8. गिलफोर्ड का त्रि–आयाम बुद्धि सिद्धान्त

11.5.9. कैटल का बुद्धि सिद्धान्त

11.6 बुद्धि –लब्धि

11.7 सारांश

11.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

11.9 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

हमारे भीतर कई ऐसी शक्तियॅा हैं जो दिखती तो नहीं है परन्तु उनका प्रभाव हम पर सदा बना रहता है।इन शक्तियों मे एक शक्ति बुद्धि भी है।मनोविज्ञान क्षेत्र में बुद्धि ज्ञानात्मक क्रियाओं में विशेष रूचि का विषय रहा है। इसी के कारण ही मानव अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ माना जाता है। जिसमें बुद्धि है वही बलवान है। बुद्धि के आधार पर ही व्यक्तियों को अलग–अलग वर्गों में बांटा जा सकता है। कुछ व्यक्ति बुद्धिमान कहलाते हैं, कुछ सामान्य बुद्धि के, कुछ मन्द बुद्धि के तो कुछ जड़ बुद्धि के कहलाते हैं। परन्तु बुद्धि का स्वरूप बड़ा व्यापक है। बुद्धि के स्वरूप पर प्राचीन काल से ही विभिन्न मत चले आ रहे हैं तथा आज भी मनोवैज्ञानिकों तथा शिक्षाविदों के लिए भी बुद्धि वाद–विवाद का विषय बना हुआ है। 19वींसदी के पूर्वार्द्ध से बुद्धि के स्वरूप को समझने हेतु मनोवैज्ञानिकों ने प्रयास प्रारम्भ किए।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ.नें के बाद आप–

- बुद्धि की प्रकृति एवं स्वरूप के बारें में जान पाएगें।
- बुद्धि की विभिन्न परिभाषाओं को समझ पाएगें।
- बुद्धि के विभ्भिन्न सिद्धान्तों की जानकारी प्राप्त करेगें ।
- बुद्धि–लब्धि के प्रत्यय को समझ पाएगें।

11.3 प्रकृति एवं स्वरूप (Nature and scope)

प्राचीन काल से ही बुद्धि ज्ञानात्मक क्रियाओं में विशेष रूचि का विषय रहा है। बुद्धि के कारण ही मानव अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ माना जाता है। प्रायः यह कहा जाता है कि 'बुद्धिर्यस्य बलंतस्य' अर्थात् जिसमें बुद्धि है वही बलवान है। मनोविज्ञान के क्षेत्र में भी बुद्धि एक चर्चा का विषय रहा है। व्यक्तियों को बुद्धि के आधार पर अलग–अलग वर्गों में बांटा जाता है। कुछ व्यक्ति बुद्धिमान कहलाते हैं, कुछ सामान्य बुद्धि के, कुछ मन्द बुद्धि के तो कुछ जड़ बुद्धि के कहलाते हैं। परन्तु बुद्धि के स्वरूप को समझना बड़ा कठिन है। बुद्धि के स्वरूप पर प्राचीन काल से ही विभ्भिन्न मत चले आ रहे हैं तथा आज भी मनोवैज्ञानिकों तथा शिक्षाविदों के लिए भी बुद्धि वाद–विवाद का विषय बना हुआ है। 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध से बुद्धि के स्वरूप को समझने हेतु मनोवैज्ञानिकों ने प्रयास प्रारम्भ किए परन्तु वे भी इसमें सर्वसम्मत परिभाषा न दे सके। वर्तमान में भी बुद्धि के स्वरूप के सम्बंध में मनोवैज्ञानिकों के विचारों में असमानता है।

11.4 परिभाषाऐ (Definitions)

मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि के स्वरूप को तीन वर्गों में रखा है और बुद्धि की परिभाषाओं को वर्गों के अनुसार अलग–अलग ढंग से पारिभाषित किया हैं। ये वर्ग

(i) वर्ग 1. बुद्धि सामान्य योग्यता है

(ii) वर्ग 2. बुद्धि दो या तीन योग्यताओं का योग है।

(iii) वर्ग 3. बुद्धि समस्त विशिष्ट योग्यताओं का योग है।

उपरोक्त तीन वर्गों के अन्तर्गत बुद्धि को जिस प्रकार से पारिभाषित किया गया उनका वर्णन इस प्रकार है– (i) बुद्धि एक सामान्य योग्यता है 2. टर्मन, एम्बिगास, स्टाऊट, बर्ट गॉल्टन स्टर्न आदि मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि को एक सामान्य योग्यता माना हैं। इन मनोवैज्ञानिकों के अनुसार बुद्धि व्यक्ति की सामान्य योग्यता है, जो उसकी हर क्रिया में पायी जाती है। इन मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि की परिभाषाएं इस प्रकार प्रस्तुत की है–

टर्मन (Termn) के अनुसार "अमूर्त वस्तुओं के सम्बंध में विचार करने की योग्यता ही बुद्धि है।" "Intelligence is the ability to carry out abstract thinking." उनके अनुसार बुद्धि समस्या को हल करने की एक सामान्य योग्यता है।

एबिंगास (Ebbinghous) के अनुसार 'बुद्धि विभिन्न भागों को मिलाने की शक्ति है।

"Intelligence is the power of combining parts."

स्टाऊट (Stout)– **ने बुद्धि को अवधान की शक्ति के रूप में माना है।**

"Intelligence is regarded as the power of attention."

बर्ट (Burt) के मतानुसार 'बुद्धि जन्मजात व्यापक मानसिक क्षमता है।'

"Intelligence is an innate all round pervading mental efficiency."

गाल्टन (Galton)- के अनुसार 'बुद्धि विभेद एवं चयन करने की शक्ति है।'

"Intelligence is the power of discrimination and sellection."

स्टर्न (Stern) – के मतानुसार 'नई परिस्थितियों के साथ समायोजन करने की योग्यता ही बुद्धि है।'

"Intelligence is the ability to adjust oneself to a new situation."

(ii) बुद्धि दो या तीन योग्यताओं का योग है— इस प्रकार की विचार धारा को मानने वाले मनोवैज्ञानिक स्टेनफोर्ड बिने है।

बिने (Binet) के अनुसार 'बुद्धि तर्क, निर्णय एवं आत्म आलोचन की योग्यता एवं क्षमता है।'

"Intelligence is the ability and capacity to reason well. to judge well and to be self-critical."

(iii) बुद्धि समस्त विशिष्ट योग्यताओं का योग है–

बुद्धि के इस वर्ग की परिभाषाओं के अन्तर्गत मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न प्रकार की विशिष्ट योग्यताओं के योग को बुद्धि की संज्ञा दी है। इन विचारों को मानने वाले थार्नडाइक, थर्स्टन, थॉमसन, वेस्लर तथा स्टोडार्ड हैं।

थार्नडाइक (Thorndike) – महोदय के अनुसार "उत्तम क्रिया करने तथा नई परिस्थितियों के साथ समायोजन करने की योग्यता को बुद्धि कहते हैं।"

"Intelligence is the ability to make good responses and is demonstrated by the capacity to deal affectivity with new situations." यहॉ थार्नडाइक नें समायोजन को योग्यता के रूप में लिया है।

थॉमसन (Thomson) के अनुसार– "बुद्धि वंशपरम्परागत प्राप्त विभिन्न गुणों का योग है।"

"Intelligence is the essence of inherited abilities." यहॉ थॉमसन नें बुद्धि को पैतृक गुणों के रूप में लिया है।

वेस्लर (Wechsler) के मत में "बुद्धि व्यक्ति की क्षमताओं का वह समुच्चय है जो उसकी ध्येयात्मक क्रिया, विवेकशील चिंतन तथा पर्यावरण के प्रभाव से समायोजन कराने में सहायक होती है।"

"Intelligence is the aggregate capacity of the individual to act purposefully to think rationally and to deal effectively with his environment."

स्टोडार्ड (Stoddard) के मतानुसार "बुद्धि (क) कठिनता (ख) जटिलता (ग) अमूर्तता (ड.) आर्थिकता (च) उद्देश्य प्राप्यता (छ) सामाजिक मूल्य तथा (ज)मौलिकता से सम्बंधित समस्याओं को समझने की योग्यता है।"

"Intelligence is the ability to understand problems that are characterised by (a) difficulty (b) complexity (c) abstractness (d) economy (e) adaptations to a goal (f) social value and (g) commergence of originals under such conditions that demand a concentration of energy and resistance to emotional forces."

उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि सभी मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि को भिन्न–भिन्न प्रकारों से समझा है। इन्ही पारिभाषाओं को आधार मानते हुए डॉ. भार्गव ने बुद्धि को इस प्रकार पारिभाषित किया है, "बुद्धि सामान्य, मानसिक एवं जन्मजात योग्यताओं का वह समन्वय है जिसकी सहायता से व्यक्ति को उसके प्रत्येक कार्य करने में सफलता प्राप्त करने का अवसर

मिलता है। यह नवीनतम परिस्थितियों में व्यक्ति का समायोजन बनाए रखने में विशेष रूप से क्रियाशील होती है। इसका सम्बंध अनुभवों के विश्लेषण एवं आवश्यकताओं के नियोजन तथा पुनर्संगठन से होता है। अतएवं योग्यता का हमारे दैनिक व्यावहारिक जीवन में भी विशेष महत्व है।

11.5 बुद्धि के सिद्धान्त (Theories of Intelligence)

पूर्व में हमने बुद्धि की प्रकृति एवं इसके स्वरूप को समझने हेतु कुछ विचार एवं परिभाषाएं प्रस्तुत की। बुद्धि के स्वरूप को अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिए इसके सिद्धान्तों को भी समझना अति आवश्यक है। बुद्धि के कुछ विशेष सिद्धान्तों हम आगे प्रस्तुत कर रहे हैं। यहॉ यह प्रश्न स्वाभाविक है कि बुद्धि के स्वरूप एवं सिद्धान्त में मूलरूप से क्या अंतर है? वैसे तो दोनों ही बुद्धि के विषय के बारे में विचार प्रकट करते हैं परन्तु फिर भी दोनों में भिन्नता दृष्टिगत होती है। बुद्धि के सिद्धान्त उसकी संरचना को स्पष्ट करते हैं जबकि स्वरूप उसके कार्यों पर प्रकाश डालते हैं। गत शताब्दी के प्रथम दशक से ही विभिन्न देशों के मनोवैज्ञानिकों में इस बात की रूचि बढ़ी की बुद्धि की संरचना कैसी है तथा इसमें किन–किन कारकों का समावेश है। इन्हीं प्रश्नों के परिणाम स्वरूप विभिन्न कारकों के आधार पर बुद्धि की संरचना की व्याख्या होने लगी। अमेरिका के थार्सटन, थार्नडाईक, थॉमसन आदि मनोवैज्ञानिकों ने कारकों (factors) के आधार पर 'बुद्धि के स्वरूप' विषय में अपने–अपने विचार व्यक्त किये। इसी तरह फ्रांस में अल्फ्रेड बिने, ब्रिटेन में स्पीयरमेन ने भी बुद्धि के स्वरूप के बारे में अपने विचार प्रस्तुत किये। बुद्धि के विभिन्न सिद्धान्तों की व्याख्या विस्तार में हम आगे कर रहे हैं—

11.5.1 बिने का एक कारक सिद्धान्त– इस सिद्धान्त का प्रतिपादन फ्रांस के मनोवैज्ञानिक अल्फ्रेड बिने ने 1905 में किया। अमेरिका के मनोवैज्ञानिक टर्मन तथा जर्मनी के मनोवैज्ञानिक एंबिगास ने इस सिद्धान्त का समर्थन किया। इस सिद्धान्त के अनुसार "बुद्धि वह शक्ति है जो समस्त मानसिक कार्यों को प्रभावित करती है।" इस सिद्धान्त के अनुयाइयों ने बुद्धि को समस्त मानसिक कार्यों को प्रभावित करने वाली एक शक्ति के रूप में माना है। उन्होंने यह भी माना है कि बुद्धि समग्र रूप वाली होती है और व्यक्ति को एक विशेष कार्य करने के लिये अग्रसित करती है। इस सिद्धान्त के अनुसार बुद्धि एक एकत्व का खंड है जिसका विभाजन नहीं किया जा सकता है। इस सिद्धान्त के अनुसार यदि व्यक्ति किसी एक विशेष क्षेत्र में निपुण है तो वह अन्य क्षेत्रों में भी निपुण रहेगा। इसी एक कारकीय सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए बिने ने बुद्धि को व्याख्या–निर्णय की योग्यता माना है। टर्मन ने इसे विचार करने की योग्यता माना है तथा स्टर्न ने इसे नवीन परिस्थितियों के साथ समायोजन करने की योग्यता के रूप में माना है।

11.5.2 द्वितत्व या द्विकारक सिद्धान्त– इस सिद्धान्त के प्रवर्तक ब्रिटेन के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक स्पीयर मेन हैं। उन्होंने अपने प्रयोगात्मक अध्ययनों तथा अनुभवों के आधार पर बुद्धि के इस द्वि–तत्व सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उनके मतानुसार बुद्धि दो

शक्तियों के रूप में है या बुद्धि की संरचना में दो कारक हैं जिनमें एक को उन्होंने सामान्य बुद्धि (General or G- factor) तथा दूसरे कारक को विशिष्ट बुद्धि (Specific S-factor) कहा है। सामान्य कारक या G-factor से उनका तात्पर्य यह है कि सभी व्यक्तियों में कार्य करने की एक सामान्य योग्यता होती है। अतः प्रत्येक व्यक्ति कुछ सीमा तक प्रत्येक कार्य कर सकता है। ये कार्य उसकी सामान्य बुद्धि के कारण ही होते हैं। सामान्य कारक व्यक्ति की सम्पूर्ण मानसिक एवं बौद्धिक क्रियाओं में पाया जाता है परन्तु यह विभिन्न मात्राओं में होता है। बुद्धि का यह सामान्य कारक जन्मजात होता है तथा व्यक्तियों को सफलता की ओर इंगित करता है।

व्यक्ति की विशेष क्रियाएं बुद्धि के एक विशेष कारक द्वारा होती है। यह कारक बुद्धि का विशिष्ट कारक (specific factor) कहलाता है। एक प्रकार की विशिष्ट क्रिया में बुद्धि का एक विशिष्ट कारक कार्य करता है तो दूसरी क्रिया में दूसरा विशिष्ट कारक अतः भिन्न–भिन्न प्रकार की विशिष्ट क्रियाओं में भिन्न–भिन्न प्रकार के विशिष्ट कारकों की आवश्यकता होती है। ये विशिष्ट कारक भिन्न–भिन्न व्यक्तियों

में भिन्न–भिन्न प्रकार के होते हैं। इसी कारण वैयक्तिक भिन्नताएं पाई जाती हैं। बुद्धि के सामान्य कारक जन्मजात होते हैं जबकि विशिष्ट कारक अधिकांशतः अर्जित होते हैं।

बुद्धि के इस दो–कारक सिद्धान्त के अनुसार सभी प्रकार की मानसिक क्रियाओं में बुद्धि के सामान्य कारक (G- factor) कार्य करते हैं। जबकि विशिष्ट मानसिक क्रियाओं में विशिष्ट कारकों (S-factor) को स्वतंत्र रूप से काम में लिया जाता है। व्यक्ति के एक ही क्रिया में एक या कई विशिष्ट कारकों की आवश्यकता होती है। परन्तु प्रत्येक मानसिक क्रिया में उस क्रिया से संबंधित विशिष्ट कारक के साथ–साथ सामान्य कारक भी आवश्यक होते हैं। जैसे– सामान्य विज्ञान, सामाजिक अध्ययन, दर्शन एवं शास्त्र अध्ययन जैसे विषयों को जानने और समझने के लिए सामान्य कारक महत्वपूर्ण समझे जाते हैं वहीं यांत्रिक, हस्तकला, कला, संगीत कला जैसे विशिष्ट विषयों को जानने ओर समझने के लिए विशिष्ट कारकों की प्रमुख रूप से आवश्यकता होती है। अतः इससे स्पष्ट है कि किसी विशेष विषय या कला को सीखने के लिए दोनों कारकों का होना अत्यन्त अनिवार्य है। व्यक्ति की किसी विशेष विषय में दक्षता उसकी विशिष्ट योग्यताओं के अतिरिक्त सामान्य योग्यताओं पर निर्भर है। स्पीयर मेन के अनुसार 'विषयों का स्थानान्तरण केवल सामान्य कारकों द्वारा ही संभव हो सकता है। इस सिद्धान्त को चित्र संख्या एक के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। जिसमें यह स्पष्ट किया गया है कि किसी भी मानसिक क्रिया में विशिष्ट कारकों के साथ सामान्य कारक भी आवश्यक है।

11.5.3 त्रिकारक बुद्धि सिद्धान्त (Three factors theory of Intelligence)

स्पीयरमेन ने 1911 में अपने पूर्व बुद्धि के द्विकारक सिद्धान्त में संशोधन करते हुए एक कारक और जोड़कर बुद्धि के त्रिकारक या तीन कारक बुद्धि सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। बुद्धि के जिस तीसरे कारक को उन्होंने अपने सिद्धान्त में जोड़ा उसे उन्होंने समूह कारक या ग्रुप फेक्टर ;ळतवनच बिजवतद्ध कहा। अतः बुद्धि के इस सिद्धान्त में तीन कारक—1. सामान्य कारक (G-factor), 2. विशिष्ट कारक (S-factor) तथा 3. समूह कारक (Group factor) सम्मिलित

किये गये हैं। स्पीयरमेन के विचार में सामान्य तथा विशिष्ट कारकों के अतिरिक्त समूह कारक भी समस्त मानसिक क्रियाओं में साथ रहता है। कुछ विशेष योग्यताएं जैसे— यांत्रिक योग्यता, आंकिक योग्यता, शाब्दिक योग्यता, संगीत योग्यता, स्मृति योग्यता, तार्किक योग्यता तथा बौद्धिक योग्यता आदि के संचालन में समूह कारक भी विशेष भूमिका निभाते हैं। समूह कारक स्वयं अपने आप में कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रखता बल्कि विभिन्न विशिष्ट कारकों तथा सामान्य कारक के मिश्रण से यह अपना समूह बनाता है। इसीलिए इसे समूह कारक कहा गया है।

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार इस सिद्धान्त में किसी प्रकार की नवीनता नहीं है। थार्नडाइक जैसे मनोवैज्ञानिकों ने इस सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहा है कि समूह कारक कोई नवीन कारक नहीं है अपितु यह सामान्य एवं विशिष्ट कारकों का मिश्रण मात्र है।

11..5.4 थार्नडाइक का बहुकारक बुद्धि सिद्धान्त (Throndike's Multifactors Theory of Intelligence)

थार्नडाइक ने अपने सिद्धान्त में बुद्धि को विभिन्न कारकों का मिश्रण माना है। जिसमें कई योग्यताएं निहित होती हैं। उनके अनुसार किसी भी मानसिक कार्य के लिए, विभिन्न कारक एक साथ मिलकर कार्य करते हैं। थार्नडाइक ने पूर्व सिद्धान्तों में प्रस्तुत सामान्य कारकों (G-factors) की आलोचना की और अपने सिद्धान्त में सामान्य कारकों की जगह मूल कारकों (Primary factors) तथा उभयनिष्ठ कारकों (Common factors) का उल्लेख किया। मूल कारकों में मूल मानसिक योग्यताओं (Primary Mental abilities) को सम्मिलित किया है। ये योग्यताएं जैसे—शाब्दिक योग्यता, आंकिक योग्यता, यांत्रिक योग्यता, स्मृति योग्यता, तार्किक योग्यता तथा भाषण देने की योग्यता आदि हैं। उनके अनुसार ये योग्यताएं व्यक्ति के समस्त मानसिक कार्यों को प्रभावित करती है।

थार्नडाइक इस बात को भी मानते हैं कि व्यक्ति में कोई न कोई विशिष्ट योग्यता अवश्य पायी जाती है। परन्तु उनका यह भी मानना है कि व्यक्ति की एक विषय की योग्यता से दूसरे

विषय में योग्यता का अनुमान लगाना कठिन है। जैसे कि एक व्यक्ति यांत्रिक कला में प्रवीण है तो यह आवश्यक नहीं कि वह संगीत में भी निपुण होगा। उनके अनुसार जब दो मानसिक क्रियाओं के प्रतिपादन में यदि

धनात्मक सहसंबंध पाया जाता है तो उसका अर्थ यह है कि व्यक्ति में उभयनिष्ठ कारक (Common factors) भी हैं। ये उभयनिष्ठ कारक कितनी मात्रा में हैं यह सहसंबंध की मात्रा से ज्ञात हो सकता है।

जैसे उदाहरण के लिए किसी विद्यालय के 100 छात्रों को दो परीक्षण A तथा B दिये गये और उनका सहसंबंध ज्ञात किया। फिर उन्हें । तथा C परीक्षण देकर उनका सहसंबंध ज्ञात किया।

पहले दो परीक्षणों में । तथा B में अधिक सहसंबंध पाया गया जो इस बात को प्रमाणित करता है कि । तथा C परीक्षणों की अपेक्षाकृत । तथा B परीक्षणों मानसिक योग्यताओं में उभयनिष्ठ कारक (Common factor) अधिक निहित है। उनके अनुसार ये उभयनिष्ठ कुछ अंशों में समस्त मानसिक क्रियाओं में पाए जाते हैं। जैसा कि चित्र स.. 2 में स्पष्ट है।

11.5.5 थर्स्टन का समूह कारक बुद्धि सिद्धान्त (Thurston's Group factors Intelligence Theory) थर्स्टन के समूह कारक सिद्धान्त के अनुसार बुद्धि न तो सामान्य कारकों का प्रदर्शन है न ही विभिन्न विशिष्ट कारकों का, अपितु इसमें कुछ ऐसी निश्चित मानसिक क्रियाएं होती हैं जो सामान्य रूप से मूल कारकों में सम्मिलित होती है। ये मानसिक क्रियाएं समूह का निर्माण करती हैं जो मनोवैज्ञानिक एवं क्रियात्मक एकता प्रदान करते हैं। थर्स्टन ने अपने सिद्धान्त को कारक विश्लेषण (Factor Analysis) के आधार पर प्रस्तुत किया। उनके अनुसार बुद्धि की संरचना कुछ मौलिक कारकों के समूह से होती है। दो या अधिक मूल कारक मिलकर एक समूह का निर्माण कर लेते हैं जो व्यक्ति के किसी क्षेत्र में उसकी बुद्धि का प्रदर्शन करते हैं। इन मौलिक कारकों में उन्होंने आंकिक योग्यता (Numerical ability) प्रत्यक्षीकरण की योग्यता (Perceptual ability) शाब्दिक योग्यता (Verbal ability) दैशिक योग्यता (Spatial ability) शब्द प्रवाह (Word fluency) तर्क शक्ति (Reasonign power) और स्मृति शक्ति (Memory power) को मुख्य माना।

थर्सटन ने यह स्पष्ट किया कि बुद्धि कई प्रकार की योग्यताओं का मिश्रण है जो विभिन्न समूहों में पाई जाती है। उनके अनुसार मानसिक योग्यताएं क्रियात्मक रूप से स्वतंत्र है फिर भी जब ये समूह में कार्य करती है तो उनमें परस्पर संबंध या समानता पाई जाती है। कुछ विशिष्ट योग्यताएं एक ही समूह की होती हैं और उनमें आपस में सह–संबंध पाया जाता है। जैसे— विज्ञान विषयों के समूह में भौतिक, रसायन, गणित तथा जीव–विज्ञान भौतिकी एवं रसायन आदि। इसी प्रकार संगीत कला को प्रदर्शित करने के लिए तबला, हारमोनियम, सितार आदि बजाने में परस्पर सह–संबंध रहता है।

बुद्धि के अनेक प्रकार की योग्यताओं के मिश्रण को प्रस्तुत किया है। इन योग्यताओं का संकेतीकरण इस प्रकार है—

1.	आंकिक योग्यता	(Numerical ability)	=	N-factor
2.	वाचिक योग्यता	(Verbal ability)	=	V-factor
3.	स्थान सम्बंधी योग्यता	(Spatital ability)	=	S-factor
4-	स्मरण शक्ति योग्यता	(Memory ability)	=	M-factor
5-	शब्द प्रवाह योग्यता	(Word fluency ability)	=	W-factor
6.	तर्क शक्ति योग्यता	(Reasoning ability)	=	R-factor

11..5.6 थॉमसन का प्रतिदर्श सिद्धान्त G.S. Thomson's Sampling Theory of Intelligence

थॉमसन ने बुद्धि के प्रतिदर्श सिद्धान्त (sampling Theory) को प्रस्तुत किया। उनके मतानुसार व्यक्ति का प्रत्येक कार्य निश्चित योग्यताओं का प्रतिदर्श होता है। किसी भी विशेष कार्य को करने में व्यक्ति अपनी समस्त मानसिक योग्यताओं में से कुछ का प्रतिदर्श के रूप में चुनाव कर लेता है। इस सिद्धान्त में उन्होंने सामान्य कारकों (G-factors) की व्यावहारिकता को महत्व दिया है। थॉमसन के अनुसार व्यक्ति का बौद्धिक व्यवहार अनेक स्वतंत्र योग्यताओं पर निर्भर करता है परन्तु परीक्षा करते समय उनका प्रतिदर्श ही सामने आता है।

11.5.7. बर्ट तथा वर्नन का पदानुक्रमित बुद्धि सिद्धान्त (Burt and Vernon's Hirarchical Theory of Infelligence) बर्ट एवं वर्नन (1965) ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। बुद्धि सिद्धान्तों के क्षेत्र में यह नवीन सिद्धान्त माना जाता है। इस सिद्धान्त में बर्ट एवं वर्नन ने मानसिक योग्यताओं को क्रमिक महत्व प्रदान किया है। उन्होंने मानसिक योग्यताओं को दो स्तरों पर विभिक्त किया—1. सामान्य मानसिक योग्यता (General Mental Ability)

2. विशिष्ट मानसिक योग्यता (Special Mental Ability) सामान्य मानसिक योग्यताओं में भी योग्यताओं को उन्होंने स्तरों के आधार पर दो वर्गों में विभाजित किया। पहले वर्ग में उन्होंने क्रियात्मक (Practical) यांत्रिक (Machenical) दैशिक (Spatialद्ध एवं शारीरिक (Physical) योग्यताओं को रखा है। इस मुख्य वर्ग को उन्होंने k.m. नाम दिया। योग्यताओं के दूसरे समूह में उन्होंने शाब्दिक (Verbal), आंकिक (Numerical) तथा शैक्षिक (Educational) योग्यताओं को रखा है और इस समूह को उन्होंने v.ed. नाम दिया है। अंतिम स्तर पर उन्होंने विशिष्ट मानसिक योग्यताओं को रखा जिनका सम्बंध विभिन्न ज्ञानात्मक क्रियाओं से है। इस सिद्धान्त की नवीनता एवं अपनी विशेष योग्यताओं के कारण कई मनोवैज्ञानिकों का ध्यान इसकी ओर आकर्षित हुआ है। चित्र संख्या 4 में इन समूहों और स्तरों को स्पष्ट किया गया है।

11.5.8. गिलफोर्ड का त्रि–आयाम बुद्धि सिद्धान्त (Guilford's Three Dimentional Theory of Intelligence)

गिलफोर्ड (1959, 1961, 1967) तथा उसके सहयोगियों ने तीन मानसिक योग्यताओं के आधार पर बुद्धि संरचना की व्याख्या प्रस्तुत की। गिलफोर्ड का यह बुद्धि संरचना सिद्धान्त त्रि–पक्षिय बौद्धिक मॉडल कहलाता है। उन्होंने बुद्धि कारकों को तीन श्रेणियों में बांटा है। अर्थात् मानसिक योग्यताओं को तीन विमाओं (Dimentions) में बांटा है। ये हैं–संक्रिया (Operations), विषय–वस्तु (Contents) तथा उत्पादन (Products)। कारक विश्लेषण (Factor Analysis) के द्वारा बुद्धि की ये तीनों विमाएं पर्याप्त रूप से भिन्न है। इन विमाओं में मानसिक योग्यताओं के जो–जो कारक आते हैं वे इस प्रकार हैं—

(i) **विषय वस्तु** (Contents)–

इस विमा में बुद्धि के जो विशेष कारक है वे विषय वस्तु के होते हैं। जैसे– आकृतिक (Figural), सांकेतिक (Symbolic) , शाब्दिक (Semantic) तथा व्यावहारिक (Behavioural)।

आकृतिक (Figural) विषय वस्तु को दृष्टि द्वारा ही देखा जा सकता है तथा ये आकार और रंग–रूप के द्वारा निर्मित होती है। सांकेतिक (Symbolic) विषय–वस्तु में संकेत, अंक तथा शब्द होते है जो विशेष पद्धति के रूप में व्यवस्थित होते हैं। शाब्दिक (Semantic) विषय–वस्तु में शब्दों का अर्थ या विचार होते हैं। व्यावहारिक (Behavioural) विषय–वस्तु में व्यवहार संबंधी विषय निहित होते हैं।

(ii) उत्पादन (Prouducts)

ये छः प्रकार के माने गए हैं – इकाइयां (Units), वर्ग (Classes), सम्बंध (Relations), पद्धतियां (Systems), स्थानान्तरण (Transformation) तथा अपादान(Implications)।

(iii) संक्रिया (Operation)

इस विमा में मानसिक योग्यताओं के पांच मुख्य समूह माने हैं। 1. संज्ञान (Congnition) 2. मूल्यांकन (Evaluation) 3. अभिसारी चिंतन Convergent Thinking) 4. अपसारी चिंतन (Divergent

11.5.9. कैटल का बुद्धि सिद्धान्त (Cattell's Theory of Intelligence)

रेमण्ड वी. केटल (1971) ने दो प्रकार की सामान्य बुद्धि का वर्णन किया है। ये हैं–फ्लूड (Flued) तथा क्रिस्टेलाईज्ड (Crystelized)। उनके अनुसार बुद्धि की फ्लूड सामान्य योग्यता वंशानुक्रम कारकों पर निर्भर करती है जबकि क्रिस्टलाईज्ड योग्यता अर्जित कारकों के रूप में होती है। फ्लूड सामान्य योग्यता मुख्य रूप से संस्कृति युक्त, गति–स्थितियों तथा नई स्थितियों के अनुकूलता वाले परीक्षणों में पाई जाती है। क्रिस्टेलाईज्ड सामान्य योग्यता अर्जित सांस्कृतिक उपलब्धियों, कौशलताओं तथा नई स्थिति से सम्बंधित वाले परीक्षणों में एक कारक के रूप में मापी जाती है। फ्लूड सामान्य योग्यता (gf) को शरीर की वंशानुक्रम विभक्ता के रूप में लिया जा सकता है। जो जैव रासायनिक प्रतिक्रियाओं द्वारा संचालित होती है। जबकि क्रिस्टेलाईज्ड सामान्य योग्यता (gc) सामाजिक अधिगम एवं पर्यावरण प्रभावों से संचालित होती है। केटल के अनुसार फ्लुड सामान्य बुद्धि वंशाानुक्रम से सम्बधित है तथा जन्मजात होती है जबकि क्रिस्टेलाईज्ड सामान्य बुद्धि अर्जित है।

11.6 बुद्धि –लब्धि (Intelligence Quotient-I.Q.)

टर्मन तथा स्टर्न ने बुद्धि–लब्धि का प्रत्यय दिया। बुद्धि–लब्धि को मानसिक आयु तथा वास्तविक आयु के अनुपात से ज्ञात किया जाता है तथा इसको एक अंक में प्रस्तुत किया

जाता है । बुद्धिमापन की प्रक्रिया में मानसिक आयु का विचार सर्वप्रथम बिने ने प्रस्तुत किया। मानसिक आयु व्यक्ति के विकास की वह अभिव्यक्ति है जो उसके उन कार्यों द्वारा ज्ञात की जा सकती है जिनकी उसकी आयु विशेष में अपेक्षा है। इस तरह किसी व्यक्ति की मानसिक आयु से हमारा आशय उस आयु से है जिस आयु के प्रश्नों या समस्याओं को वह हल कर लेता है। अर्थात् व्यक्ति जितनी आयु स्तर के प्रश्नों या समस्याओं को हल कर लेता है, उसकी मानसिक आयु भी उतनी ही होगी। जैसे एक आठ वर्ष का बालक दस वर्ष की आयु स्तर के प्रश्नों और समस्याओं को हल कर लेता है तो उसकी मानसिक आयु दस वर्ष मानी जाएगी। यदि आठ वर्ष का बालक अपनी आयु स्तर के प्रश्नों और समस्याओं को हल नहीं कर सकता और वह केवल छः वर्ष आयु स्तर के प्रश्नों और समस्याओं को हल करता है तो उसकी मानसिक आयु छः वर्ष मानी जाएगी। बुद्धि परीक्षणों से व्यक्ति की इस मानसिक आयु को ज्ञात किया जाता है। शारीरिक आयु का अभिप्राय व्यक्ति की वास्तविक आयु से अर्थात् उसकी जन्म तिथि से वर्तमान समयावधि तक की आयु।

बाल्यावस्था से किशोरावस्था तक बुद्धि में वृद्धि होती रहती है अतः इस अवस्था तक बुद्धि स्थिर नहीं रहती परन्तु बाद में एक अवस्था ऐसी आती है जब बुद्धि स्थिर हो जाती है। बुद्धि–लब्धि को निम्न सूत्र द्वारा प्राप्त किया जा सकता है:

बुद्धि–लब्धि प्राप्त करने के लिए पहले बुद्धि परीक्षण से मानसिक आयु ज्ञात की जाती है तथा फिर उसमें व्यक्ति की वास्तविक आयु का भाग दे दिया जाता है तथा संख्या को पूर्ण बनाने के लिए इस अनुपात को 100 से गुणा कर दिया जाता है। उदाहरण के लिए किसी बालक की मानसिक आयु 14 वर्ष है और शारीरिक आयु 10 वर्ष है तो उसकी बुद्धि–लब्धि होगी–

$$\text{बुद्धि लब्धि} = \frac{\text{मनसिक आयु}}{\text{वस्तविक आयु}} \times 100$$

$$\text{Intelligence Quotient (I.Q.)} = \frac{\text{Mental Age (M.A.)}}{\text{Chronological Age (C.A.)}} \times 100$$

जब मानसिक आयु वास्तविक आयु से अधिक होती है तो व्यक्ति प्रखर बुद्धि वाला माना जाता है। जब मानसिक आयु वास्तविक के समान होती है तो व्यक्ति औसत बुद्धि वाला माना जाता है और मानसिक आयु वास्तविक आयु से कम होती है तो व्यक्ति मंद बुद्धि वाला माना जाता है। बुद्धि–लब्धि के आधार पर व्यक्ति को अलग–अलग श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है। नीचे दी गई सारणी में बुद्धि–लब्धि के आधार पर व्यक्तियों का वर्गीकरण किया गया है :

सारणी 1 : बुद्धि–लब्धि के आधार पर व्यक्तियों का वर्गीकरण

क्र. सं.	बुद्धि–लब्धि	व्यक्तियों की श्रेणी
1.	140 तथा इसके ऊपर	प्रतिभाशाली (Genius)
2.	120–140	प्रखर बुद्धि (Superior)
3.	110–120	तीव्र बुद्धि (Above average)
4.	90–110	सामान्य बुद्धि (Average)
5.	80–90	बुद्धि–दौर्बल्य (Feeble- minded)
6.	70–80	बुद्धू (Dull)
7.	50–70	मूढ़ (Morone)
8.	25–50	हीन (Imbecile)
9.	0–25	जड़ (Idiot)

अभ्यास प्रश्न

I वस्तुनिष्ठ प्रश्नः–

1. बुद्धि–लब्धि का सूत्र लिखें।
2. मानसिक आयु क्या है ?

II लघूत्तरीय प्रश्नः–

1. बुद्धि के एक कारक एवं द्वितत्व सिद्धान्त को समझाइये।
2. बुद्धि क्या है इसकी विभिन्न परिभाषाएं देते हुए इसे समझाइये।

11.7 सारांश

बुद्धि ज्ञानात्मक क्रियाओं में एक विशेष शक्ति के रूप में जानी जाती है। जैसा कि आपने पढ़ा बुद्धि को विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया गया है। इसकी परिभाषाओं को तीन वर्गों मे रखा गया है। मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि के विभिन्न सिद्धान्तों एवं उसकी संरचना को विभिन्न प्रकार से प्रस्तुत किया है। बुद्धि के नौं सिद्धान्तों को इस अध्याय में समझाया गया है जिनको आप नें समझ लिया है।आपने यह भी समझा है कि मानसिक आयु वास्तविक आयु क्या हैं और इससे बुद्धि–लब्धि किस प्रकार प्राप्त की जासकती है। बुद्धि–लब्धि के आधार पर व्यक्तियों का वर्गीकरण किस प्रकार किया गया है।

11.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह, अरूण कुमार। (2006) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।
2. सुलेमान, मुहम्मद एवं तरन्नुम, रिजवाना। (2009) मनोविज्ञान में प्रयोग एवं परीक्षण। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।
3. सिंह, अरूण कुमार। (2006) व्यक्तित्व मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।

3\. सिंह, अरूण कुमार। (2006) उच्चतर नैदानिक मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।

11.9 निबंधात्मक प्रश्नः–

1. थार्नडाइक के बहुकारक सिद्धान्त को समझाइये।
2. थर्स्टन के समूह कारक सिद्धान्त को समझाइये।
3. बुद्धि–लब्धि के आधार पर व्यक्तियों का वर्गीकरण कीजिये।

इकाई–12 बुद्धि का मापन

इकाई की संरचना

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 बुद्धि परीक्षण एवं मापन

12.4 बुद्धि परीक्षण का तात्पर्य

12.5 बुद्धि–लब्धि

12.6 बुद्धि परीक्षण

12.6.1 कुछ मुख्य व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण

12.6.2 कुछ मुख्य सामूहिक बुद्धि परीक्षण

12.6.3 भारत में बुद्धि परीक्षणों का विकास

12.6.4 बुद्धि परीक्षणों के प्रकार

12.7 बुद्धि परीक्षणों का उपयोग

12.8 बुद्धि का मापन

12.9 कुछ भारतीय अनुकूलित बुद्धि परीक्षण

12.10 सारांश

12.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

12.12 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

बुद्धि परीक्षणों का उपयोग परोक्ष या अपरोक्ष रूप से कई सदियों से चला आरहा है। परन्तु इसका मनोवैज्ञानिक रूप से विकास अठारवींसदी के अन्त एवं उन्निसवीसदी के पूर्व में प्रारम्भ

हुआ। बुद्धि– परीक्षणों के विकास कई मनोवैज्ञानिकों ने योगदान दिया। इटॉर्ड, सेग्युन, अल्फ्रेड बिने एवं साईमन जैसे मनोवैज्ञानिको ने बुद्धि परीक्षणों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। मैरिल–पामर, गुड एनफ, रेवन एवं वेश्लर ने भी नये बुद्धि परीक्षणों का निर्माण कर अपना अपना योगदान दिया।

भारत में भी सर्वप्रथम बुद्धि परीक्षण का निर्माण राईस ने सन् 1922 में बिने की मापनी का भारतीय अनुकूलन किया। इस परीक्षण का नाम था 'हिन्दुस्तानी बिने परफोरमेंस पाइन्ट स्केल'। जलोटा (1951) ने एक सामूहिक बुद्धि परीक्षण का निर्माण किया। सन् 1953 में भाटिया ने एक निष्पादन बुद्धि परीक्षण (Performance Intelligence Test) का निर्माण किया। इनके अतिरिक्त देश के कई मनोवैज्ञानिक जैसे शाह, झा, मोहसिन, मनरी, सोहनलाल, जलोटा, प्रो. एम. सी. जोशी, प्रयाग मेहता, टण्डन, कपूर, शैरी, रायचौधरी, मलहोत्रा, ओझा एवं लाभसिंह ने भी बुद्धि परीक्षणों के निर्माण में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

बुद्धि परीक्षण का आशय उन परीक्षणों से है जो बुद्धि–लब्धि (I.Q.) के रुप में केवल एक अंक के माध्यम से व्यक्ति के सामान्य बौद्धिक एवं उसमें विद्यमान विभिन्न विशिष्ट योग्यताओं के सम्बंध को इंगित करता है। बुद्धि–लब्धि को प्राप्त करने के लिए बुद्धि परीक्षणों का उपयोग किया जाता है। बुद्धि परीक्षणों का उपयोग मानव जीवन के कई क्षेत्रों में भी किया जाता है जिनका उल्लेख आगे किया जारहा है। बुद्धि परीक्षण विभिन्न प्रकार के होतें जिनका भी वर्णन आगे किया जारहा है।

12.2 उद्देश्य :

इस इकाई को पढ.नें के बाद आप -

5. बुद्धि मापन की पृष्ट भूमि को समझ पायेगें
6. बुद्धि परीक्षणों का तात्पर्य एवं विकास के बारे में समझ पायेगें
7. भारत में बुद्धि परीक्षणों के विकास के बारे में जान पायेगें
8. बुद्धि–लब्धि का तात्पर्य को समझ पायेगें
9. बुद्धि परीक्षणों की उपयोगिताओं एवं प्रकारों के बारे में जान पायेगें
10. कुछ मुख्य बुद्धि परीक्षणों के बारे में विस्तार में जानकारी प्राप्त कर पायेगें

12.3. बुद्धि परीक्षण एवं मापन

व्यक्तियों में वैयक्तिक भिन्नताएं होती हैं। वे केवल शारीरिक गुणों से ही एक दूसरे से भिन्न नहीं होते परन्तु मानसिक एवं बौद्धिक गुणों से भी एक दूसरे से भिन्न होते हैं। कई बौद्धिक गुणों की भिन्नताऐं जन्मजात भी होती हैं। कुछ व्यक्ति जन्म से ही प्रखर बुद्धि के तो कुछ मन्द बुद्धि व्यवहार वाले होते हैं। उन्नीसवीं सदी में मंद बुद्धि वाले बालकों एवं व्यक्तियों के प्रति बहुत ही बुरा व्यवहार होता था। लोगों की यह मान्यता थी कि इनमें दुरात्माओं का प्रवेश हो गया है। इन कथित दुरात्माओं को निकालने हेतु मंद बुद्धि बालकों के साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता

था। उनको जंजीरों में बांधकर रखा जाता था एवं उन्हें नाना प्रकार के कष्ट दिये जाते थे। अतः मन्द बुद्धि बालकों के लिए समस्या यह थी कि उनकी बुद्धि के स्तर के बारे में उस समय तक कोई मापन विधि विकसित नहीं हुई थी। फ्रांस में बुद्धि–दौर्बल्य या मन्दबुद्धि बालकों की इस समस्या ने गम्भीर रूप धारण कर लिया था। तब वहां की सरकार और मनोवैज्ञानिकों का ध्यान इस समस्या पर गया। इस समस्या का समाधान करने हेतु फ्रांस के सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक इटॉर्ड (Itord) तथा उनके पश्चात् सेग्युन (Seguin) जैसे मनोवैज्ञानिको ने मंद बुद्धि बालकों की बुद्धि एवं योग्यताओं के मापन एवं अध्ययन करने हेतु विभिन्न विधियों का प्रयोग प्रारम्भ किया। इस अध्ययन के अन्तर्गत उन्होंने कुछ बुद्धि परीक्षणों का निर्माण किया।

मंद बुद्धि बालकों के विकास के लिए कई विद्यालयों की स्थापना हुई जहां मंद बुद्धि बालकों का परीक्षण किया जाता था तथा उनकी बुद्धि विकास हेतु उन्हें प्रशिक्षण प्रदान किया जाता था। इस प्रकार के प्रयत्न जर्मनी, इंग्लैंड तथा अमेरिका में हुए। परन्तु बुद्धि परीक्षण के सही मापन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य का श्रेय फ्रांस को ही जाता है। फ्रांस में मद बुद्धि बालकों को सही प्रशिक्षण देने के लिए एवं उनकी शिक्षा का समुचित प्रबंध करने हेतु एक समिति बनाई गई और उसका अध्यक्ष सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक अल्फ्रेड बिने (Alfred Binet) को बनाया गया। बिने पहले वो मनोवैज्ञानिक थे जिन्होंने बुद्धि को वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित रूप में समझने का प्रयास किया। उनको बुद्धि मापन क्षेत्र का जन्मदाता माना जाता है। बिने ने यह स्पष्ट किया कि बुद्धि केवल एक कारक नहीं है जिसको कि हम एक विशेष परीक्षण द्वारा माप सकें अपितु यह विभिन्न योग्यताओं की वह जटिल प्रक्रिया है जो समग्र रूप से क्रियान्वित होती है।

बिने ने साईमन के सहयोग से सन् 1905 में प्रथम बुद्धि मापनी अर्थात् बुद्धि परीक्षण का निर्माण किया जिसे बिने–साईमन बुद्धि परीक्षण का नाम दिया। ये बुद्धि परीक्षण तीन से सोलह वर्ष की आयु के बच्चों की बुद्धि का मापन करता है। इस परीक्षण में सरलता से कठिनता के क्रम में तीस पदों का प्रयोग किया गया। इस परीक्षण से व्यक्तियों के बुद्धि के स्तरों का पता लगाया जा सकता है। बिने–साईमन बुद्धि परीक्षण की सहायता से मंद बुद्धि बालकों को तीन समूह में बांटा गया है–

1. जड़बुद्धि (Idiots) **2**.. हीन बुद्धि (Imbeciles) **3**. मूढ़ बुद्धि (Morons) ।

सन् 1908 में बिने ने अपने बुद्धि परीक्षण में पर्याप्त संशोधन किया और संशोधित बुद्धि परीक्षण का प्रकाशन किया। इस परीक्षण में 59 पद रखे। ये पद अलग–अलग समूहों में हैं, जो अलग–अलग आयु के बालकों से संबंधित हैं। इस परीक्षण में सर्वप्रथम मानसिक आयु, (Mental Age) कारक को समझा गया।

सन् 1911 में बिने ने अपने 1908 में बने बुद्धि परीक्षण में पुनः संशोधन किया। जब बिने का बिने–साईमन बुद्धि परीक्षण 1908 में विभिन्न देशों जैसे बेल्जियम, इंग्लैण्ड, अमेरिका, इटली, जर्मनी में गया तो मनोवैज्ञानिकों की रूचि इस परीक्षण की ओर बढ़ी। कालान्तर में इस परीक्षण की आलोचना भी हुई क्योंकि यह परीक्षण निम्न आयुस्तर वालों के लिए तो ठीक था, परन्तु उच्च आयुवर्ग के बालकों के लिए सही नहीं था। अतः इस कमी का सुधार करने हेतु बिने ने अपने परीक्षण में पुनः पर्याप्त सुधार किया। उन्होंने अपने परीक्षण के फलांकन पद्धति में

भी सुधार एवं संशोधन किया तथा 1911 में अपनी संशोधित बिने–साईमन मापनी या परीक्षण का पुनः प्रकाशन किया। उन्होंने इस परीक्षण के मानसिक आयु और बालक की वास्तविक आयु के बीच सम्बन्ध स्थापित किया और इसके आधारपर उन्होंने बालकों को तीन वर्गों में बांटा ये वर्ग हैं– सामान्य बुद्धि (Regular Intelligent) वाले, श्रेष्ठ बुद्धि (Advanced Intelligent) वाले एवं मदं बुद्धि (Retarded Intelligent) वाले बालकों का वर्ग। बिने के अनुसार जो बालक अपनी आयु समूह से उच्च आयु समूह वाले बालकों के प्रश्नों का हल कर लेते हैं तो वे श्रेष्ठ बुद्धि वाले कहलाते हैं और यदि बालक अपनी आयु समूह से कम आयु समूह वाले बालकों के प्रश्नों का ही हल कर पाते हैं तो वे मन्द बुद्धि बालक होते हैं।

फ्रांस देश के अतिरिक्त अन्य देशों में भी बिने–साईमन के बुद्धि परीक्षण का उपयोग होने लगा। अमेरिका में 1910 में गोडार्ड महोदय ने बिने के 1908 वाले प्रथम संशोधित बुद्धि परीक्षण को कुछ संशोधनों के साथ प्रकाशन किया। इसके अतिरिक्त 1916 में अमेरिकन मनोवैज्ञानिक टर्मेन ने बिने के बुद्धि परीक्षण को अपने देश की परिस्थितियों के अनुकूल बनाकर इसका प्रकाशन किया। चूंकि इस परीक्षण का संशोधन स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर टर्मेन ने किया, इस आधार पर इस परीक्षण को 'स्टेनफोर्ड–बिने परीक्षण' कहा गया। 1937 में प्रो. एम.एम. मेरिल के सहयोग से 1916 के स्टेनफोर्ड बिने परीक्षण में संशोधन कर**के** इसमें कुछ अंकगणित के प्रश्नों को भी रखा। 1960 में स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय से इस परीक्षण का नवीन संशोधन प्रकाशित किया गया।

इसके अतिरिक्त बोबर टागा ने 1913 में इसका जर्मन संशोधन (German Rivison of Binet Simon Test) प्रकाशित किया। लंदन में बर्ट **(1922)** ने इसका संशोधन कर इसे लंदन **संशोधन** (London Rivison) के नाम से प्रकाशित किया। इसके अतिरिक्त इटली में सेफियोट तथा भारत में उत्तर प्रदेश मनोविज्ञान शाला (U.P. Psychological Bureau) ने इस परीक्षण को अपने अपने देश के अनुसार अनुकूल एवं संशोधन कर इसका प्रकाशन किया।

बिने–साईमन बुद्धि परीक्षण के संशोधनों के अतिरिक्त भी कई प्रकार के बुद्धिपरीक्षणों का निर्माण हुआ जिनमें व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण एवं सामूहिक बुद्धि परीक्षण, वाचिक एवं अवाचिक बुद्धि परीक्षण भी सम्मिलित हैं।

12.4 बुद्धि परीक्षण का तात्पर्य Meaning of Intelligence Test

पूर्व में हमने विश्वभर में हुए बुद्धि परीक्षणों के विकास के बारे में चर्चा की। बुद्धि परीक्षण का क्या तात्पर्य है? इसको समझाना भी बहुत आवश्यक है। डॉ. महेश भार्गव के अनुसार बुद्धि परीक्षण का आशय उन परीक्षणों से है जो बुद्धि–लब्धि (I.Q.) के रुप में केवल एक अंक के माध्यम से व्यक्ति के सामान्य बौद्धिक एवं उसमें विद्यमान विभिन्न विशिष्ट योग्यताओं के सम्बंध को इंगित करता है। इन परीक्षणों द्वारा व्यक्ति के सम्मुख विभिन्न कार्यों

को प्रस्तुत किया जाता है। यह आशा की जाती है कि इनके माध्यम से बौद्धिक कार्यों को जाना जा सकता है। इनकी परिभाषा निम्न शब्दों में दी जा सकती हैं[1] :

"Intelligence test is designed for use in a wide veriety of situations and is validated against relatively broad criteria. It characteristically provides a single score such as I.Q. indicating individual's general intellectual level and presence of various specific abilities. In such a test a wide variety of tasks is presented to the subject in the expecatation that an adequate sampling of all important intellected functions will be covered[1]."

कौन व्यक्ति कितना बुद्धिमान है यह जानने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने काफी प्रयत्न किए। बिने के अनुसार बुद्धि बाल्यावस्था से किशोरावस्था तक बढ़ती रहती है परन्तु एक अवस्था ऐसी भी आती है जहां यह स्थिर हो जाती है। बुद्धि को मापने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने मानसिक आयु (M.A.) और शारीरिक आयु (C.A.) कारक प्रस्तुत किये और इनके आधार पर व्यक्ति की वास्तविक बुद्धि–लब्धि ज्ञात की जाती है।

12.5 बुद्धि–लब्धि Intelligence Quotient (I.Q.)

बुद्धि–लब्धि का प्रत्यय टर्मन तथा स्टर्न ने दिया। बुद्धि–लब्धि को मानसिक आयु तथा वास्तविक आयु के अनुपात से ज्ञात किया जाता है। बुद्धि–लब्धि प्राप्त करने के लिए पहले बुद्धि परीक्षण से मानसिक आयु ज्ञात की जाती है तथा फिर उसमें व्यक्ति की वास्तविक आयु का भाग दे दिया जाता है तथा संख्या को पूर्ण बनाने के लिए इस अनुपात को 100 से गुणा कर दिया जाता है। उदाहरण के लिए किसी बालक की मानसिक आयु 14 वर्ष है और शारीरिक आयु 10 वर्ष है तो उसकी बुद्धि–लब्धि होगी–

$$\text{Intelligence Quotient (I.Q.)} = \frac{14}{10} \times 100 = 140$$

बुद्धि मापन की प्रक्रिया में मानसिक आयु का विचार सर्वप्रथम बिने ने प्रस्तुत किया। मानसिक आयु व्यक्ति के विकास की वह अभिव्यक्ति है जो उसके उन कार्यों द्वारा ज्ञात की जा सकती है जिनकी उसकी आयु विशेष में अपेक्षा है। इस तरह किसी व्यक्ति की मानसिक आयु से हमारा आशय उस आयु से है जिस आयु के प्रश्न या समस्याओं को वह हल कर लेता है। अर्थात् व्यक्ति जितनी आयु स्तर के प्रश्नों या समस्याओं को हल कर लेता है, उसकी मानसिक

आयु भी उतनी ही होगी। जैसे एक छः वर्ष का बालक दस वर्ष की आयु स्तर के प्रश्नों और समस्याओं को हल कर लेता है तो उसकी मानसिक आयु दस वर्ष मानी जाएगी। यदि छः वर्ष का बालक अपनी आयु स्तर के प्रश्नों और समस्याओं को हल नहीं कर सकता और वह केवल पॉच वर्ष आयु स्तर के प्रश्नों और समस्याओं को हल करता है तो उसकी मानसिक आयु पॉच वर्ष मानी जाएगी। बुद्धि परीक्षणों से व्यक्ति की मानसिक आयु को ज्ञात किया जाता है। शारीरिक आयु का अभिप्राय व्यक्ति की वास्तविक आयु से है। बाल्यावस्था से किशोरावस्था तक बुद्धि में वृद्धि होती रहती है परन्तु बाद में एक अवस्था ऐसी आती है जब बुद्धि स्थिर हो जाती है। जब मानसिक आयु वास्तविक आयु से अधिक होती है तो व्यक्ति प्रखर बुद्धि वाला माना जाता है। जब मानसिक आयु वास्तविक के समान होती है तो व्यक्ति औसत बुद्धि वाला माना जाता है और मानसिक आयु वास्तविक आयु से कम होती है तो व्यक्ति मंद बुद्धि वाला माना जाता है। बुद्धि–लब्धि के आधार पर व्यक्ति को अलग–अलग श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है। नीचे दी गई सारणी में बुद्धि–लब्धि के आधार पर व्यक्तियों का वर्गीकरण किया गया है –

सारणी 1 : बुद्धि–लब्धि के आधार पर व्यक्तियों का वर्गीकरण

क्र. सं.	बुद्धि–लब्धि	व्यक्तियों की श्रेणी
1.	140 तथा इसके ऊपर	प्रतिभाशाली (Genius)
2.	120–140	प्रखर बुद्धि (Superior)
3.	110–120	तीव्र बुद्धि (Above average)
4.	90–110	सामान्य बुद्धि (Average)
5.	80–90	बुद्धि–दौर्बल्य (Feeble-minded)
6.	70–80	बुद्धू (Dull)
7.	50–70	मूढ़ (Morone)
8.	25–50	हीन (Imbecile)
9.	0–25	जड़ (Idiot)

12.6 बुद्धि परीक्षण Intelligence Tests

5.6.1 कुछ मुख्य व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण Some important Individual Intelligence Tests

(1). **मैरिल–पामर मापनी (Merrill Palmer Scale)** इस बुद्धि परीक्षण है में 38 उपपरीक्षण हैं। इसका उपयोग डेढ़ वर्ष से पांच छः वर्ष की आयु के बच्चों पर उनकी बुद्धि मापनें के लिए किया जाता है।

(2). **मिनोसोटा पूर्व–विद्यालय मापनी (Menosota Pre-School Scale)** यह भी एक महत्वपूर्ण बुद्धि परीक्षण है। इसका उपयोग भी डेढ़ वर्ष से पांच वर्ष तक की आयु के बच्चों पर किया जाता है।

(3). मनोवैज्ञानिक **गुड एनफ (Good Enough)** ने **ड्राविग ए मेंन परीक्षण (Drawing a man)** का बालकों के विद्यालय प्रवेश के समय उनकी बुद्धि मापनें में इसका प्रयोग किया जाता है।

(4). रेवन (Reven) ने 1938 में **प्रोग्रेसिव मैट्रिक्स (Progressive Matrics)** परीक्षणों का निर्माण किया। इस परीक्षण में दो उप–परीक्षण है। एक बालकों की बुद्धि मापनें के लिए रंगीन प्रोग्रेसिव मैट्रिक्स (Colour Progressve Matrics) तथा वयस्कों के लिए मानक प्रोग्रेसिव मैट्रिक्स (Standard Progressve Matrics)

(5). वेश्लर ने 1949 में बालकों एवं वयस्कों हेतु बुद्धि मापनी का निर्माण किया। ये सभी व्यक्तिगत या वैयक्तिक परीक्षण हैं तथा इनका उपयोग एक बार में एक ही विषय या प्रयोज्य (व्यक्ति) पर किया जाता है।

12.6.2 कुछ मुख्य सामूहिक बुद्धि परीक्षण Some important Group Intelligence Tests

बुद्धि परीक्षणों का विकास काल और देशीय आवश्यकता के अनुसार होता रहा है। सन् 1914 में प्रथम विश्व युद्ध के समय अमेरिका में सेना में भर्ती हेतु व्यक्तियों का सही ढ़ंग से चुनाव करने के लिए बुद्धि परीक्षणों का निर्माण हुआ। चूंकि हजारों व्यक्तियों पर व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षणों का प्रशासन एक समय पर एक साथ असंभव था इसलिए सामूहिक बुद्धि परीक्षणों का निर्माण हुआ। सेना में अंग्रेजी पढ़े लिखे एवं अधिकारी वर्ग के सैनिकों के चयन हेतु आर्मी एल्फा (Army Alpha) सामूहिक बुद्धि परीक्षण का निर्माण हुआ। जबकि अनपढ़ एवं अंग्रेजी भाषा से अनिभिज्ञ व्यक्तियों के लिए आर्मी बीटा (Army Beta) सामूहिक परीक्षणों का निर्माण हुआ। इन बुद्धि परीक्षणों के आधार पर सेना में सैनिकों की भर्ती की गई। इसी तरह द्वितीय विश्व महायुद्ध में भी इसी प्रकार के बुद्धि परीक्षणों द्वारा सेना में भर्ती हुई। इसी समय आर्मी जनरल क्लासीफिकेशन टैस्ट (Army General Classification Test) का भी निर्माण हुआ। इस प्रकार समय–समय पर समय की आवश्यकता के अनुसार विभिन्न बुद्धि परीक्षणों का निर्माण होता रहा।

12.6.3 भारत में बुद्धि परीक्षणों का विकास

सन् 1922 में भारत में सर्वप्रथम बुद्धि परीक्षण का निर्माण एफ. जी. कॉलेज, लाहौर के प्राचार्य डॉ. सी. एच. राईस (Dr. C. H. Rice) ने किया। इन्होंने बिने की मापनी का भारतीय अनुकूलन किया। इस परीक्षण का नाम था 'हिन्दुस्तानी बिने परफोरमेंस पाइन्ट स्केल'। इसके पश्चात् 1927 में डॉ. जे. मनरी ने हिन्दी, उर्दू एवं अंग्रेजी भाषा में शाब्दिक समूह बुद्धि परीक्षण (Verbal Group Intelligence Test) का निर्माण किया। डॉ. लज्जाशंकर झा (1933) ने सामूहिक बुद्धि परीक्षण का निर्माण किया जो 10 से 18 वर्षों के बालकों के लिए उपयोगी है। सन् 1943 में डॉ. सोहनलाल ने 11 वर्ष तथा इससे अधिक आयु वाले बालकों के लिए सामूहिक बुद्धि परीक्षण का निर्माण किया। पंजाब विश्व विद्यालय के प्रोफेसर डॉ. जलोटा (1951) ने एक सामूहिक परीक्षण का निर्माण किया। यह परीक्षण हिन्दी, उर्दू एवं आंग्ल भाषा में तथा विद्यालीय छात्रों के लिए था। सन् 1953 में प्रोफेसर सी. एम. भाटिया ने एक निष्पादन बुद्धि परीक्षण (Performance Intelligence Test) का निर्माण किया। इसमें पांच प्रमुख बौद्धिक उपपरीक्षण हैं तथा यह भाटिया बैट्री ऑफ परफोरमेंस टेस्ट ऑफ इन्टेलीजेन्स (Bhatia Battery of Performance Test of Intelligence) कहलाता है। इस तरह उपरोक्त परीक्षण भारतीय अनुकूलन के प्रमुख बुद्धि परीक्षण हैं और इनका विकास समयानुसार हुआ। इन परीक्षणों के अतिरिक्त कई भारतीय मनोवैज्ञानिकों ने शाब्दिक एवं अशाब्दिक तथा वैयक्तिक एवं सामूहिक बुद्धि परीक्षणों का निर्माण किया। उपरोक्त परीक्षणों के निर्माण में जिन मनोवैज्ञानिकों ने अपना योगदान दिया उनके अतिरिक्त कई और भी मनोवैज्ञानिक हैं जिन्होंने बुद्धि परीक्षणों निर्माण में इसी प्रकार का अपना सहयोग दिया है। जिनमें से कुछ प्रमुख मनोवैज्ञानिकों के नाम इस प्रकार हैं—शाब्दिक बुद्धि परीक्षणों के निर्माण में बड़ौदा के डॉ. बी. एल. शाह, बम्बई के डॉ. सेठना, एन. एन. शुक्ला, ऐ. जे. जोशी तथा दवे, अहमदाबाद के डॉ. देसाई, बूच एवं भट्ट के नाम प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त देश के कई मनोवैज्ञानिक जैसे डॉ. शाह, झा, माहसिन, मनरी, सोहनलाल, जलोटा, प्रो. एम. सी. जोशी, प्रयाग मेहता, टण्डन, कपूर, शैरी, रायचौधरी, मलहोत्रा, ओझा एवं लाभसिंह ने भी बुद्धि परीक्षणों के निर्माण में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

अशाब्दिक परीक्षणों के निर्माण में जिन भरतीय मनोवैज्ञानिकों ने योगदान दिया उसमें प्रमुख हैं—

अहमदाबाद के प्रो. पटेल, प्रो. शाह, बड़ौदा के डॉ.प्रोमिला पाठक, बंगाल के विकरी एण्ड ड्रेपर, कलकत्ता विश्व विद्यालय के डॉ.रामनाथ कुन्दू, बलिया के डॉ.ए. एन. मिश्र तथा कलकत्ता के डॉ. एस. चटर्जी तथा मंजुला मुखर्जी।

निष्पादन बुद्धि परीक्षण (Performance Intelligence Tests) के निर्माण में भी अनेक मनोवैज्ञॊनिकों का योगदान रहा यथा– अहमदाबाद के डॉ. पटेल बड़ौदा के डॉ.एम. के पानवाल, उदयपुर डॉ. के. पी. एन. श्रीमाली, कलकत्ता के डॉ. मजूमदार नागपुर के डॉ. चन्द्रमोहन भाटिया का योगदान महत्वपूर्ण है। इनके अतिरिक्त प्रभारामलिंगास्वामी (1975) मुरादाबाद के टंडन, इम्फाल के चक्रवती मैसूर के भारतराज, चंडीगढ़ के वर्मा तथा द्वारकाप्रसाद ने इन परीक्षणों के निर्माण में अपना अमूल्य योगदान दिया।

12.6.4 बुद्धि परीक्षणों के प्रकार Types of Intelligence Tests

ऊपर हमने विश्व में तथा भारत में बुद्धि परीक्षणों के विकास के बारे में पढ़ा इसके अतिरिक्त बुद्धि परीक्षणों का तात्पर्य, मानसिक आयु, वास्तविक आयु, बुद्धिलब्धि एवं बुद्धिलब्धि के आधार पर व्यक्तियों का वर्गीकरण पढ़ा। अब हम बुद्धि परीक्षणों के प्रकारों के बारे में आगे चर्चा करेंगे। बुद्धि परीक्षणों का निर्माण विभिन्न स्थितियों, विषय वस्तु आदि को ध्यान में रखकर किया जाता है। जैसे बुद्धि परीक्षण का प्रशासन या उपयोग व्यक्तिगत तौर पर या सामूहिक तौर पर करना है अथवा इसका उपयोग पढ़े लिखे या अनपढ़ लोगों पर करना है तो ऐसी स्थितियों में अलग–अलग प्रकार के परीक्षणों का उपयोग होता है। इन सभी बातों के आधार पर हम बुद्धि परीक्षणों को मुख्य चार वर्गों में वर्गीकृत कर सकते हैं जैसा कि चित्र संख्या 1 में दर्शाया गया है–

चित्र संख्या 1 :

बुद्धि परीक्षणों के प्रकार (Type of Intelligence Test)

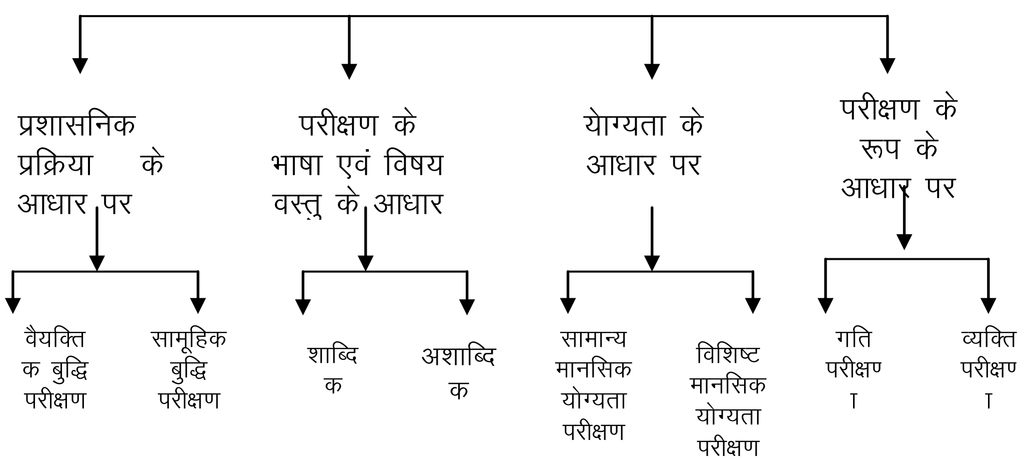

बुद्धि परीक्षणों का वर्गीकरण उनके प्रशाासन की प्रक्रिया, विषय वस्तु तथा उनके रूप आदि के आधार पर चार वर्गों में किया जा सकता है। जैसा कि उपरोक्त चित्र में बताया गया है।

1- प्रशासन प्रक्रिया के आधार पर (on basis of administration process)

इस प्रकार के बुद्धि परीक्षणों को प्रशासनिक प्रक्रिया के आधार पर दो भागों में बांटा जा सकता है। ऐसे परीक्षण, जिनका उपयोग एक समय में केवल एक ही व्यक्ति का परीक्षण करने में किया जाता है अर्थात् व्यक्तिगत रूप से उसको काम में लाया जाता है, व्यक्तिगत या वैयक्तिक परीक्षण कहलाते हैं। जिस बुद्धि परीक्षण से जब एक समय में कई व्यक्तियों की एम ही साथ बुद्धि परीक्षण किया जाए उसे सामूहिक बुद्धि परीक्षण कहा जाता है। अर्थात् प्रशासन प्रक्रिया के

अनुसार इस प्रकार के बुद्धि परीक्षणों को दो उप वर्गों में रखा जाता है (1) व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण (Indivisual Intelligence Test) एवं (2) सामूहिक बुद्धि परीक्षण (Group Intelligence Test)

2. **भाषा एवं विषय– वस्तु के आधार पर (on basis of language and contents)**

इन परीक्षणों को भी दो उपवर्गों में विभाजित कर सकते हैं।

1- शाब्दिक बुद्धि परीक्षण (Verbal Intelligence Test) एवं 2. अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण (Non Verbal Intelligence Test)

शाब्दिक बुद्धि परीक्षणों में शब्दों या भाषा का प्रयोग किया जाता है। अतः पढ़े–लिखे लोगों के लिए यह परीक्षण उपयोगी है। जबकि अशाब्दिक परीक्षणों में भाषा की जगह संकेतों, चित्रों, आकृतियों एवं चिन्हों का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार के परीक्षण अनपढ़ लोगों के लिए तथा उन लोगों के भी उपयोगी है जो किसी विशेष भाषा को नहीं जानते हैं।

3. **योग्यता मापन के आधार पर (on basis of abilities)**

ये परीक्षण भी दो प्रकार के होते हैं– (i) सामान्य योग्यताएं परीक्षण (General Abilities Test) (ii) विशेश मानसिक योग्यताएं परीक्षण (Special Mental Abilities Test) प्रथम प्रकार के परीक्षणों द्वारा व्यक्ति की सामान्य मानसिक योग्यताएं (General Abilities) मापी जाती हैं जबकि दूसरे प्रकार के परीक्षणों द्वारा व्यक्ति की विशेष मानसिक योग्यताएं मापी जाती है।

4. **परीक्षण के रूप के आधार पर (on basis of types)**

बुद्धि परीक्षणों को रुप के आधार पर भी दो भागों में बांटा जा सकता हैः—(i) गति बुद्धि परीक्षण (ii) शक्ति बुद्धि परीक्षण। जिन परीक्षणों में निश्चित समयावधि में कुछ निश्चित प्रश्नों को हल करना होता है ऐसे परीक्षणों को गति बुद्धि परीक्षण कहते हैं। जिन परीक्षणों में प्रश्नों को सरलतम् से कठिनतम स्तर में रखा जाता है ऐसे परीक्षणों को शक्ति बुद्धि परीक्षण कहते हैं।

कई मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि परीक्षणों को दो प्रमुख भागों में बांटा है—1. शाब्दिक एवं 2. अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण। इन दोनों प्रकार के बुद्धि परीक्षणों में ही वैयक्तिक एवं सामूहिक परीक्षणों को सम्मिलित किया है। अर्थात् शाब्दिक बुद्धि परीक्षण दो प्रकार के हैं—वैयक्तिक शाब्दिक बुद्धि परीक्षण एवं सामूहिक शाब्दिक बुद्धि परीक्षण। इसी प्रकार अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण भी दो प्रकार के हुए—वैयक्तिक अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण एवं सामूहिक अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण। अब हम इन वर्गों में आने वाले मुख्य परीक्षणों का वर्णन करेंगे।

1. शाब्दिक बुद्धि परीक्षण Verbal Intelligence Test

जैसा कि हमने पूर्व में लिखा है कि शाब्दिक बुद्धि परीक्षणों को भी दो वर्गों में विभक्त किया गया है—1. वैयक्तिक (Individual) तथा 2. समूह (Group) बुद्धि परीक्षण। इन वर्गों में आने वाले मुख्य परीक्षण इस प्रकार है—

(v) वैयक्तिक शाब्दिक बुद्धि परीक्षण Individual Verbal Intelligence Test

वैयक्तिक शाब्दिक बुद्धि परीक्षणों में शब्दों या भाषा का प्रयोग होता है। इन परीक्षणों में प्रश्नों के कई समूह होते हैं इन प्रश्नों को पढ़कर व्यक्ति को मौखिक या लिखित उत्तर देना होता है। चूंकि ऐसे परीक्षण एक समय में एक ही व्यक्ति को दिये जा सकते हैं इसलिए इनको वैयक्तिक शाब्दिक बुद्धि परीक्षण कहते हैं। इस प्रकार के परीक्षणों का प्रशासन केवल पढ़े–लिखे लोगों पर ही हो सकता है। बिने–साइमन के बुद्धि परीक्षण एवं इनके संशोधन एवं रूपान्तरण इसी वर्ग में आते हैं। इसके अतिरिक्त टर्मन–स्टैनफोर्ड का परीक्षण, वेश्लर की बुद्धि मापनी आदि इसी वर्ग में आते है।

(ब) सामूहिक शाब्दिक बुद्धि परीक्षण Group Verbal Intelligence Test

वैयक्तिक शाब्दिक बुद्धि–परीक्षण एक बार में एक ही व्यक्ति पर किया जा सकता है। अधिक संख्या में व्यक्तियों पर यह परीक्षण करने में समय बहुत अधिक लग जाता है और परिणाम भी दोषपूर्ण आते हैं। अतः इस दोष को दूर करने के लिए सामूहिक शाब्दिक बुद्धि परीक्षणों का निर्माण किया गया। इस प्रकार के बुद्धि परीक्षणों द्वारा एक साथ कई व्यक्तियों का बुद्धि परीक्षण किया जा सकता है। इस परीक्षण का सबसे पहले निर्माण प्रथम विश्व युद्ध के समय अमेरिका में हुआ। सेना में अधिकारी वर्ग की भतध के लिए शाब्दिक सामूहिक परीक्षण तैयार किये गये। इन परीक्षणों को आमध अल्फा परीक्षण ;।तउल ।सचीं ज्मेजेद्ध कहा गया। अमेरिका के बाद कई देशों में इस प्रकार के परीक्षणों का निर्माण हुआ। भारत में भी इस प्रकार के परीक्षणों का निर्माण हुआ जिनमें जलोटा एवं जोशी के समूह बुद्धि परीक्षण प्रसिद्ध है।

2. अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण Non Verbal Intelligence Tests

अशाब्दिक बुद्धि परीक्षणों को भी शाब्दिक बुद्धि परीक्षणों की भांति दो वर्गों में विभाजित किया गया है—(अ) वैयक्तिक अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण (ब) सामूहिक अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण।

(अ) वैयक्तिक अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण Individual Non-Verbal Intelligence Tests

इस प्रकार के परीक्षणों में शब्दों या भाषा का प्रयोग नहीं होता। इनके स्थान पर संकेत चिन्ह, आकृतियों का प्रयोग होता हे। अर्थात् इनमें भाषा या पुस्तकीय ज्ञान का कम से कम प्रयोग होता है। इस प्रकार के परीक्षणों को निष्पादन बुद्धि परीक्षण (Performance Intelligence Tests) भी कहा जाता है। इस प्रकार का परीक्षण एक बार में एक व्यक्ति पर ही किया जा सकता है। इस प्रकार के वर्ग के परीक्षणों में कुछ मुख्य परीक्षण निम्नलिखित हैं—

(1) कोह ब्लॉक आकृति परीक्षण (Koh's Block Design Test)
(2) ऐलेक्जेण्डर का पास एलोंग परीक्षण (Alexander's pass-along Test)
(3) पिन्टर–पैटर्सन बुद्धि परीक्षण (Pinter Patterson Intelligence Test)
(4) आकार फलक परीक्षण (Form Board Test)
(5) रेवेन्स प्रोग्रेसिव मैट्रिक्स (Raven's Progressive Matrics Test)
(6) चित्र–पूर्ति परीक्षण (Picture Completion Test)
(7) भाटिया निष्पादन परीक्षण (Bhatia's Bettery of Intelligence Performance Test)

(ब) समूह अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण Group Non-verbal Intelligence Test

इस प्रकार के परीक्षणों में शब्दों एवं भाषा का प्रयोग नहीं होता है या फिर बहुत ही कम मात्रा में होता है तथा इनका परीक्षण एक साथ कई लोगों पर किया जा सकता है। सर्वप्रथम इस प्रकार के परीक्षणों का निर्माण प्रथम विश्व युद्ध के समय अमेरिका में हुआ, जब सेना में कम पढ़े–लिखे या अनपढ़ या विदेशी लोगों की भर्ती की जानी थी। इस परीक्षण को आर्मी बीटा परीक्षण (Army beta Test) नाम दिया गया। द्वितीय विश्व युद्ध के समय आर्मी बीटा परीक्षण की तरह एक और परीक्षण तैयार किया गया जिसे आर्मी जनरल क्लासीफिकेशन परीक्षण (Army General Classification Test) नाम दिया गया। इसी प्रकार एक अन्य परीक्षण सेना के लिए तैयार किया गया जिसे आर्म्ड फोर्सेज क्वालीफिकेशन परीक्षण (Armed forces Qualification Test- AFQT) कहते हैं।

इस प्रकार परीक्षणों का प्रशासन एक ही समय में कई लोगों पर हो जाने से समय की बचत होती है। अधिकांश ऐसे परीक्षणों को किसी सेना भर्ती या रिकुरिटिंग करते समय उपयोग में लेते हैं।

12.7 बुद्धि परीक्षणों का उपयोग Applications of Intelligence Tests

बुद्धि परीक्षणों का उपयोग जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में होता है। जिस–जिस क्षेत्र में मानव कार्यरत है उस उस क्षेत्र में बुद्धि परीक्षणों का उपयोग अवश्यंभावी है। हम संक्षिप्त में कुछ विशेष क्षेत्रों का उल्लेख कर रहे हैं जहां बुद्धि परीक्षणों का उपयोग होता है।

1. **मानसिक योग्यता को ज्ञात करने हेतु**—बुद्धि परीक्षणों के आधार हम किसी भी व्यक्ति बालक की मानसिक योग्यता ज्ञात कर सकते हैं तथा उसकी मानसिक योग्यता के आधार पर उसको कार्य सौंपा जा सकता है। मानसिक योग्यता एवं बुद्धि–लब्धि के आधार पर बालकों एवं व्यक्तियों का वगध्करण किया जा सकता है।
2. **कक्षा में प्रवेश हेतु**—विद्यार्थियों के प्रवेश के समय विद्यालयों में बालकों का बुद्धि परीक्षण किया जाता है तथा बुद्धि–लब्धि प्राप्त कर उनके स्तर के अनुरूप उचित कक्षा में उनको प्रवेश दिया जाता है। जिससे कि वे अपने बुद्धि–स्तर के पाठ्यक्रमों का सुचारू रूप से अध्ययन कर सके।
3. **शिक्षा क्षेत्र–बुद्धि**—परीक्षणों का व्यापक उपयोग शिक्षा जगत को होता है। बालक के प्रवेश, उसका विषय निर्धारण करने, पाठ्यक्रमों एवं विषयों का चयन करने, प्रतिभाशाली एवं बुद्धि–दौर्बल्य छात्रों का पता लगाने, अपराधी प्रवृति वाले बालको का पता लगाने आदि में बुद्धि परीक्षणों का उपयोग बहुत ही महत्वपूर्ण है। इनके अतिरिक्त छात्रों की बौद्धिक क्षमताओं का पता लगाने, छात्रों का व्यवसायिक एवं ष्शैक्षिक निर्देशन प्रदान करने तथा उनके व्यक्तिव को समझने में बुद्धि–परीक्षणों का महत्वपूर्ण उपयोग है।
4. **वैयक्तिक भिन्नता का अध्ययन करने में**—व्यक्तियों में वैयक्तिक भिन्नता का सही ज्ञान व्यक्ति के मानसिक गुणों एवं बुद्धि–लब्धि के आधार पर ही सम्भव है। बुद्धि–लब्धि एवं मानसिक योग्यताएं बुद्धि–परीक्षणों से ही ज्ञात की जा सकती है।
5. **व्यावसायिक उपयोग**–बुद्धि परीक्षणों का सबसे अधिक उपयोग शिक्षा जगत में होता हैं परन्तु व्यावसायिक क्षेत्र में भी इसका उपयोग कम नही है। व्यवसाय के अनुरूप व्यक्ति की योग्यताओं एवं क्षमताओं को ज्ञात करने में, अधिकारियों एवं कर्मचारियों का चयन करने में इन परीक्षणों का बहुत उपयोग हैं। इनके अतिरिक्त कर्मचारियों का उनकी योग्यता के अनुसार अलग अलग वर्गो में वर्गीकृत करने तथा कर्मचारियों में आपसी उचित सम्बन्ध बनाये रखने में इन परीक्षणों का बहुत उपयोग होता है।
6. **निदान एवं चिकित्सा में उपयोगी**—बुद्धि परीक्षणों का उपयोग चिकित्सा क्षेत्र में भी होता है। असामान्य बालकों एवं मन्द बुद्धि बालकों की बुद्धि–लब्धि ज्ञात करने तथा उनके असामान्य व्यवहार के निदान में ये परीक्षण उपयोगी होते हैं। सीखने की समस्याओं एवं भूलने की समस्याओं के निदान के लिए भी ये परीक्षण सहायक है।
7. **सेना में उपयोग**—सेना में कर्मचारियों एवं अधिकारियों के चयन में ये परीक्षण बहुत उपयोगी है, सेना कर्मचारियों की पदोन्नति, वर्गीकरण आदि भी इन परीक्षणों से ही सम्भव हैं। पूर्व में प्रथम विश्व–युद्ध एवं द्वितीय विश्व–युद्ध में बुद्धि परीक्षणों का उपयोग व्यापक रूप में हुआ है। वर्तमान में भी इन परीक्षणों का उपयोग सेना के विभिन्न विभागों में कर्मचारियों के चयन के लिए होता है।
8. **कर्मचारी चयन में उपयोगी**—आजकल प्रायः सभी विभागों में कर्मचारियों का चयन मनोवैज्ञानिक परीक्षणों से होता है। जिसमें बुद्धि परीक्षणों का विशेश योगदान है। बुद्धि के आधार पर कर्मचारियों का विभिन्न पदों पर चयन किया जाता है।
9. **अनुसंधानिक उपयोग**—बुद्धि परीक्षणों का उपयोग अनुसन्धानिक कार्यों में बड़ा महत्वपूर्ण है। शैक्षिक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक अनुसंधानों के लिए आंकड़ों को एकत्र करने के लिए इन परीक्षणों का व्यापक उपयोग किया जाता है।

10. **व्यावहारिक उपयोग**—व्यक्ति की दिन प्रतिदिन की व्यावहारिक समस्याओं के निदान तथा उसकी मानसिक योग्यता के अध्ययन में भी बुद्धि परीक्षणों का उपयोग महत्वपूर्ण है।

12.8 बुद्धि का मापन Measurement of Intelligence

बुद्धि मापन के लिए मनोवैज्ञानिकों ने कई प्रकार के परीक्षणों का निर्माण किया। बुद्धि परीक्षणों का उद्देश्य अलग–अलग स्थितियों में तथा स्तरों पर बुद्धि का मापन करना होता है। शाब्दिक तथा अशाब्दिक परीक्षण क्रमशः पढ़े–लिखे लोगों पर तथा अनपढ़ या विशेष भाषा से अनभिज्ञ लोगों पर प्रशासित किए जाते हैं। इसी तरह इनका उपयोग या प्रशासन वैयक्तिक रूप से है या सामूहिक रूप से, उसके अनुसार परीक्षणों का चयन किया जाता है।

किसी भी प्रकार के परीक्षण का प्रशासन करने के लिए कुछ बातें ध्यान में रखनी जरूरी होती हैं। जैसे सही स्थान का चुनाव अर्थात् परीक्षण के लिए प्रयोगशाला का ही चुनाव किया जाए अथवा ऐसी जगह का चुनाव किया जाऐ जहॉ परीक्षण निर्विघ्न सम्पन्न हो सके। परीक्षण प्रारम्भ करने से पूर्व परीक्षणकर्ता यह सुनिश्चित कर ले कि परीक्षण के लिए सम्पूर्ण सामग्री उसके पास उपलब्ध है। परीक्षणकर्ता परीक्षण कार्य में दक्ष होना चाहिये। परीक्षणकर्ता प्रायोज्य से सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना चाहिये और उसे शांतिपूर्वक परीक्षण की समस्याओं को हल करने को कहना चाहिये। ।

परीक्षक यह सुनिश्चित करे कि उसे कौनसा परीक्षण करना है– शाब्दिक या अशाब्दिक, वैयक्तिक या सामूहिक। यह भी सुनिश्चित करे कि वह कौनसे मनोवैज्ञानिक के परीक्षणों को उपयोग में लेना चाहता है। तत्पश्चात विषयी या प्रायोज्य को उसके अनुसार परीक्षण देकर फलांकन ज्ञात किया जाता है तद्पश्चात उससे बुद्धि–लब्धि (IQ) प्राप्त की जाती है । बुद्धि–लब्धि प्राप्त करने के लिए प्रायः सभी परीक्षणों में मानसिक आयु निकाली जाती है और इस मानसिक आयु में वास्तविक आयु का भाग देकर बुद्धि–लब्धि (प्फ) प्राप्त की जाती है। जैसा कि निम्न सूत्र मे दर्शाया गया है –

$$\text{बुद्धि–लब्धि (I.Q.)} = \frac{\text{मनसिक आयु (M.A.)}}{\text{वस्तविक आयु (C.A.)}} \times 100$$

बुद्धि मापन हेतु मानक बुद्धि परीक्षणों का ही प्रयोग करना चाहिये। मानक बुद्धि परीक्षणों की वैधता तथा विश्वसनीयता उच्च स्तर की होती है। समय, देश एवं परिस्थितियों के अनुसार निर्मित आधुनिकतम परीक्षणों का ही प्रयोग किया जाना चाहिये। हम आगे कुछ चयनित विशेश परीक्षणों के बारे में जानकारी प्रस्तुत कर रहें है, जो भारत में बुद्धि मापन के लिए विशेष रूप से प्रयोग में लिए जाते है।

12.9 कुछ भारतीय अनुकूलित बुद्धि परीक्षण

बुद्धि मापन के लिए विश्व स्तर में कई प्रकार के बुद्धि परीक्षण उपयोग में लिए जाते हैं परन्तु यहाँ हम कुछ प्रमुख बुद्धि परीक्षणों का जो विशेष रूप से भारतीय अनुकूलन के अनुसार निर्मित किये गये है। इन परीक्षणों में शाब्दिक एवं अशााब्दिक दोनों प्रकार के परीक्षण सम्मिलित हैं।

1. शाब्दिक परीक्षण (Verbal Intelligence Test)

(i) वेश्लर का वयस्क बुद्धि परीक्षणः

वेश्लर का यह बुद्धि परीक्षण 1955 में प्रकाशित हुआ। इसके प्रकाशक है 'साइकोलॉजिकल कारपोरेशन 304 ईस्ट, 45 स्ट्रीट, न्यूयार्क। यह वैयक्तिक शाब्दिक परीक्षण है जिसका माध्यम अंग्रेजी है। इस परीक्षण के द्वारा किशोरों एवं वयस्कों की बुद्धि का मापन किया जाता है। अर्थात इसका उद्देश्य 16 से 64 वर्श की आयु वर्ग के व्यक्तियों का बुद्धि परीक्षण करना है।

वेश्लर के द्वारा प्रस्तुत इस परीक्षण की शाब्दिक मापनी (Verbal Scale) के द्वारा छः परीक्षण किये जाते है। ये हैः—सूचनाएँ (information), सामान्य बोध (general comprehension), गणितीय तर्क (arithmatical reasoning), समानता (similaritiè), शब्द भण्डार (vocabulary) तथा अंक विस्तृति (digit span) जबकि इसी परीक्षण की निष्पादन मापनी (performance scale) के द्वारा पॉच उप परीक्षण सम्पादित किये जाते है। ये हैं—चित्र व्यवस्था (picture arrangement), चित्र समापन (picture completion), खण्ड रचना (block design), वस्तु संग्रह (object assembly) तथा चिन्ह विस्तृति (digit symbol)।

(ii) जोशी की मानसिक योग्यता परीक्षा :

प्रोफेसर मोहन चन्द्र जोशी द्वारा 1960 में निर्मित बुद्धि परीक्षण 'मानसिक योग्यता परीक्षा' का प्रकाशन हुआ। यह परीक्षण 'रूपा साईकोलोजिकल कॉर्पोरेशन वाराणसी' के द्वारा प्रकाशित किया गया। इस परीक्षण का माध्यम हिन्दी है एवं इस परीक्षण के द्वारा कक्षा 8 से 12 के विद्यार्थियों अथवा 12 से 19 वर्ष तक के बालकों का सामूहिक रूप से बुद्धि या मानसिक योग्यता का परीक्षण किया जाता है। यद्यपि इस परीक्षण के लिए समय सीमा 20 मिनट की रखी गई है किन्तु समय सीमा का फलांकों पर प्रभाव नहीं होता है।

इस परीक्षण कुल 100 प्रश्न हैं जो सात विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित हैं। ये क्षेत्र हैं—पर्याय (Synonyms), विपर्याय (Antonyms), संख्यात्मक (Number series), वगध्करण (Classification), श्रेष्ठ उत्तर (Best answer), तर्क (reasoning) तथा सादृश्य (anologies)। कुल 100 प्रश्नों में से पर्याय, विपर्याय, श्रेष्ठ उत्तर तथा तर्क के 10–10 प्रश्न एवं संख्यात्मक वगध्करण तथा सादृश्य के 20–20 प्रश्न हैं।

(iii) प्रयाग मेहता : सामूहिक बुद्धि परीक्षण

प्रयाग मेहता का सामूहिक बुद्धि परीक्षण 1962 में 'मानसायन' नेताजी सुभाष मार्ग, देहली–6' द्वारा प्रकाशित किया गया। यह एक शाब्दिक बुद्धि परीक्षण है जिसका माध्यम हिन्दी है। इस परीक्षण के द्वारा सामूहिक रूप से 7वीं कक्षा एवं इससे अधिक कक्षा में पढ़ने वाले 12 से 14 वर्ष के बच्चों का बुद्धि परीक्षण किया जाता है। इस परीक्षण की समय सीमा 18 मिनट है।

इस परीक्षण में 10 प्रकार के 6–6 पद अर्थात् कुल 60 पद हैं। ये पद तार्किक चयन, संख्या श्रृंखला, वगध्करण, सादृश्य, श्रेष्ठ प्रत्युत्तर, सूचनाएं, अव्यवस्थित वाक्य, व्यर्थता, अनुमान तथा गणितीय तर्क से संबंधित हैं।

(iv) जलोटा का साधारण मानसिक योग्यता परीक्षण

साधारण मानसिक योग्यता परीक्षण के निर्माता एस.एस. जलोटा (1960) है। इसके प्रकाशक हैं 'साइका–सेटर, ग्रीन पार्क, न्यू देहली।' यह एक सामूहिक शाब्दिक परीक्षण है जिसका माध्यम हिन्दी है। इस परीक्षण के द्वारा 8 से 11वीं कक्षा या 11 से 16 वर्ष की आयु के बालकों की बुद्धि का परीक्षण किया जाता है।

इस परीक्षण में कुल 100 पद हैं जिनका प्रत्युत्तर 20 मिनट की अवधि में देना होता है। यह परीक्षण सात भागों में विभक्त है। ये हैं—शब्द भण्डार समान (Vocabulary similars)] शब्द भण्डार विपरीत (Vocabulary opposites)] संख्या श्रृंखला (Number series), वर्गीकरण (Classification)] श्रेष्ठ प्रत्युत्तर (Best answer), अनुमान (Inference) एवं सादृश्य (Anologies)।

इस परीक्षण में शब्द भण्डार समान, शब्द भण्डार विपरीत श्रेष्ठ प्रत्युत्तर एवं अनुमान के 10–10 पद तथा संख्या श्रृंखला, वर्गीकरण तथा सादृश्य के 20–20 पद हैं।

2. अशाब्दिक परीक्षण (Non-verbal Intelligence Tests)

(i) भाटिया : निष्पादन बुद्धि परीक्षणः

भाटिया, निष्पादन बुद्धि परीक्षण माला का निर्माण डॉ. चंद्र मोहन भाटिया के द्वारा सन् 1955 में किया गया। यह व्यक्तिगत तथा अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण है। इस परीक्षण का प्रकाशन 'पुरोहित पुरोहित पूना' के द्वारा किया गया। इस परीक्षण के द्वारा 11 से 16 वर्ष के भारतीय बच्चों, अशिक्षित एवं कम पढ़े–लिखे व्यक्तियों की बुद्धि का मापन किया जा सकता है।

इस परीक्षण में डॉ. भाटिया ने भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल 5 विदेशी तथा स्वयं निर्मित परीक्षणों की बैटरी को शामिल किया गया। ये हैं– कोह ब्लाक डिजायन परीक्षण, अलैजेंडर पास एलोंग परीक्षण, आकृति चित्रण परीक्षण, अंक तत्काल स्मृति परीक्षण तथा चित्र रचना परीक्षण। इस परीक्षण की समय सीमा एक घंटा रखी गई है। इस परीक्षण से व्यक्ति की मानसिक आयु ज्ञात की जाती है और उसके आधार पर बुद्धि–लब्धि ज्ञात की जाती है।

(ii) एलेक्जेण्डर पास एलोंग परीक्षण

यह परीक्षण एलेक्जेण्डर (1932) द्वारा निर्मित है। इस परीक्षण में ऊपर से खुली हुई चार मंजुषाएं (Boxes) होती हैं। ये सभी अलग–अलग माप की होती हैं। इनका एक किनारा लाल तथा दूसरा किनारा नीला होता है। इनके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के नीले तथा लाल रंग के तेरह आयताकार लकड़ी अथवा प्लास्टिक के गुटके होते हैं। इसमें आठ कार्ड होते हैं जिनमें गुटकों की अलग–अलग आकृति के चित्र होते हैं। आकृति चित्रों की रचना कठिनाई क्रम के अनुसार 1 से 9 क्रम तक होती है। मंजुषाओं में गुटके रखकर विषयी को 1 से 9 आकृति, जैसी कि कार्ड में होती है, बनाने को कहा जाता है। प्रत्येक आकृति बनाने के प्रयास में लगने वाले समय का अंकन किया जाता है। इस तरह प्रत्येक आकृति में लगने वाले समय के अनुसार विषयी को अंक प्रदान किये जाते हैं। इन अंकों से मानसिक आयु ज्ञात की जाती है। मानसिक आयु ज्ञात करने के बाद उसमें वास्तविक आयु का भाग देकर फलांकन को 100 से गुणित किया जाता है और इस तरह व्यक्ति की बुद्धि–लब्धि (I.Q.) ज्ञात की जाती है। इस परीक्षण का प्रयोग 7 से 18 वर्ष की आयु के बालकों पर तथा गूंगे–बहरे व्यक्तियों पर भी सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न

I. वस्तुनिष्ठ प्रश्नः–

1. सर्वप्रथम बुद्धि को वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित रूप में समझने का प्रयास किया–

(अ) इटॉर्ड **(व)** सेग्युन **(स)** अल्फ्रेड बिने **(द)** साईमन

2. सर्व प्रथम भारतीय अनुकूलन के बुद्धि परीक्षण का निर्माण किया –

(v) डॉ. सी. एच. राईस **(व)** डॉ. जे. मनरी **(स)** डॉ. लज्जाशंकर झा **(द)** डॉ. सी. एम. भाटिया

II. लघु उत्तरीय प्रश्नः–

1. बुद्धि–लब्धि का सूत्र लिखिये।
2. मानसिक आयु क्या है ?
3. बुद्धि परीक्षण का क्या अर्थ है?

12.10 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप बुद्धि परीक्षणों के विकास में विभिन्न मनोवैज्ञानिकों के योगदान के बारे में जान चुके हैं। बुद्धि परीक्षण का क्या अर्थ है यह भी आप जान चुके हैं। बुद्धि–लब्धि कैसे प्राप्त की जाती यह भी आप समझ चुके हैं। बुद्धि परीक्षणों के प्रकारों के बारे में भी आप अध्ययन कर चुके हैं। भारतीय अनुकूलन के बुद्धि परीक्षणों का संक्षेप वर्णन भी इस इकाई में आप पढ. चुके हैं।

12.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.सिंह, अरूण कुमार। (2006) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।

2.सुलेमान, मुहम्मद एवं तरन्नुम, रिजवाना। (2009) मनोविज्ञान में प्रयोग एवं परीक्षण। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।

3.सिंह, अरूण कुमार। (2006) व्यक्तित्व मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।

4.सिंह, अरूण कुमार। (2006) उच्चतर नैदानिक मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।

12.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. बुद्धि परीक्षणों के विकास पर प्रकाश डालिए।
2. बुद्धि–लब्धि से आप क्या समझते हैं? इसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है।
3. बुद्धि परीक्षण कितने प्रकार के होते हैं विस्तार से समझाइये।
4. भारतीय अनुकूलित किन्ही दो बुद्धि परीक्षणों का वर्णन कीजिये।

इकाई–13 चिन्तन की प्रकृति एवं प्रकार

इकाई की संरचना

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 चिन्तन का स्वरूप

13.4 चिन्तनकी परिभाषाएं

13.5 चिन्तन प्रक्रिया के तत्त्व

13.6 चिंतन, कल्पना और स्मरण

13.7 चिन्तन और स्मरण

13.8चिन्तनके साधन या चिंतनोपकरण

13.9 चिन्तनके आधार या चिन्तनके पीछे दृष्टिकोण

13.10चिन्तनकी आधारभूत दक्षताएं

13.11चिन्तनके प्रकार

13.12 ध्यान एवं योग द्वारा चिन्तनका विकास

13.13 सारांश

13.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

13.15 निबंधात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

इस अध्याय के अन्तर्गत हम चिंतन, चिन्तनके स्वरूप, चिन्तनकी परिभाषाओं का अध्ययन करगें। इनके अतिरिक्त चिन्तनके तत्त्व और चिन्तनके आधारों और चिन्तनप्रक्रिया के तत्त्वों

को भी समझेगें। चिन्तनकी आधारभूत दक्षताओं के बारे में भी विस्तार से इस अध्याय में करेगें। चिंतन, कल्पना और स्मरण में क्या सम्बन्ध हैं और क्या अन्तर हैं यह सभी इस अध्याय में समझाया गया है। चिन्तन कितने प्रकार के होते हैं इनका अध्ययन भी इस अध्याय में करेगें। ध्यान एवं योग द्वारा चिन्तनका विकास सम्भव है इसका भी वैज्ञानिक आधार इस इकाई में प्रस्तुत किया गया है।

13.2 उद्देश्य

- इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप चिन्तन क्या है, चिन्तन की परिभाषाओं, चिन्तनके आधार एवं इसकी मौलिक या आधारभूत दक्षताओं के बारे में जान पाएंगे।
- चिन्तन प्रक्रिया के तत्त्वों के बारे में भी जान पाएंगे।
- चिंतन, कल्पना और स्मरण के सम्बन्धों को समझ पाएंगे।
- चिन्तन के साधनों के बारे में जान पाएंगे।
- चिन्तनके प्रकारों के बारे में भी जान पाएंगे।
- चिन्तन क्षमता की अभिवृद्धि हेतु ध्यान और योग किस तरह उपयोगी सिद्ध हो सकते है इसके बारे में भी जानकारी प्राप्त कर पाएंगे।
- इस इकाई के अध्ययन के बाद आप चिन्तन प्रक्रिया संबंधी विभिन्न प्रकार के प्रश्नों के उत्तर दे पाएगे।

13.3 चिन्तन का स्वरूप

चिन्तन एक मानसिक प्रक्रिया है और ज्ञानात्मक व्यवहार का जटिल रूप है। यह शिक्षण, स्मरण, कल्पना आदि मानसिक क्षमताओं से जुड़ा रहता है। प्रायः सभी प्राणियों में सोचने समझने एवं चिन्तन करनें की क्षमता होती है परन्तु मनुष्य बुद्धिबल एवं चिन्तनसे अन्य प्राणियों से विकसित प्राणी है। मनुष्य की प्रगति मुख्यतः उसके चिन्तनपर आधारित है और वह इसके उपयोग से वह अपनी कई प्रकार की समस्याओं को हल करता है। सभी मनुष्यों में सोचने एवं समझने की क्षमता समान नहीं होती। किन्हीं में यह क्षमता निम्न स्तर पर होती है तो कई मनुष्यों में यह मध्यम से उच्च स्तरीय होती है। कुछ मनुष्यों में यह क्षमता उच्चतम स्तर तक भी होती है। विचारों के आदान – प्रदान में व्यक्ति चिन्तन का प्रयोग करता है। चिन्तनको इन क्षमताओं से पूर्णतया अलग नहीं किया जा सकता। कई लोगों के अनुसार चिन्तनप्रक्रिया में हमारा मस्तिष्क सक्रिय रहता है तो कई लोगों का यह मानना है कि मस्तिष्क के अतिरिक्त शरीर के अन्य भागों का भी चिन्तनसे संबंध है। अन्य मानसिक प्रक्रियाओं की अपेक्षा चिन्तन अधिक जटिल प्रक्रिया है और यह प्रायः अतीतानुभूतियों पर निर्भर करता है। अर्थात् चिन्तनव्यक्ति के ज्ञानात्मक व्यवहार का जटिल स्वरूप है। चिन्तनशक्ति के कारण ही व्यक्ति विज्ञान, तकनीकी तथा अन्य विधाओ का विकास करता है। यह एक ऐसी बौद्धिक क्षमता है जिसका महत्त्व व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में है। शिक्षा जगत् में भी इसका महत्त्व विशेष है।

चिन्तनको हम मानसिक विचार की अवस्था भी कह सकते है अर्थात् व्यक्ति की एक विचारशील अवस्था का नाम चिन्तनहै। विचार का अर्थ है कि विभिन्न दृष्टियों से एक बात को देखने अथवा समझने का प्रयत्न करना। चिन्तनके अंतर्गत हम विचार को जांचते है, समालोचना करते है, उसके प्रति जागरूक होते है, तुलना करते है, प्रश्न–प्रतिप्रश्न करते है, विश्लेषण करते है, बार–बार दोहराते है और संबंधित बातों को सामने लाने का प्रयत्न करते है, इत्यादि।

अतः चिन्तन एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है और यह हमारे मस्तिष्क में चलती रहती है। चिन्तनमें अनेक आन्तरिक क्षमताओं का उपयोग होता रहता है, जैसे–कल्पना, एकाग्रता, जागरूकता, स्मृति, समझ और अवलोकन आदि। ये सभी आन्तरिक क्षमताएं चिन्तनकी प्रक्रिया में सहभागी एवं सहयोगी बनती है। चिंतनशक्ति की स्पष्टता एवं विकास के लिए पृथकता से विचार करना अपेक्षित है।

अच्छे चिन्तन क्षमतावान व्यक्तियों में यह विशेषता होती है कि वे किसी भी घटना, स्थिति अथवा योजना को समझने एवं उनका विश्लेषण करने में दक्ष होते है। चिंतनशील व्यक्तियों में घटनाओं, स्थितियों एवं योजनाओं का विश्लेषण करने तथा अपने मत अथवा अपनी बात को संपुष्टता से एवं स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करने की क्षमता होती है। इनके तर्क सटीक एवं स्पष्ट होते है। वे दूसरों के तर्कों का प्रत्युत्तर सरलतासे दे सकते है। चिंतनशील व्यक्ति सरलता से उत्तेजित भी नहीं होते और हर स्थिति तथा परिस्थिति में धैर्यता से विचार करते है, वे कुछ विशेष सिद्धान्तों में विश्वास करने वाले होते है और उसी के आधार पर घटनाओं का आंकलन करते है तथा परिणामों पर विचार करते है। प्रायः उनके निर्णय व्यक्तिपरक न होकर वस्तुपरक, निष्पक्ष एवं सैद्धान्तिक होते है क्योंकि चिंतक का अपना मूल्य होता है। अच्छे चिंतक यह बताने में भी समर्थ होते है कि अनेक सम्भावित समाधानों में उचित समाधान क्या हो सकता है? परिणामों के प्रति उनका दृष्टिकोण प्रायः संतुलित होता है और वे किसी भी घटना के प्रति समभाव रखते है। वे घटनाओं को लेकर न तो अत्यधिक उत्साहित या उत्तेजना का प्रदर्शन करते है और न ही खिन्नता दिखाते है।

13.4 चिन्तन की परिभाषाएं (Definations of Thinking)

मनोवैज्ञानिकों ने चिन्तनको अनेक रूपों में परिभाषित किया है।

वुडवर्थ ने चिन्तन को बाधाओं के निवारण का एक साधन माना है उनके अनुसार ''चिन्तन बाधाओं के निवारण का एक साधन है।''

"Thinking is one way of overcoming an obstacle." Woodworth.

कॉलिन्ग तथा ड्रेवर के अनुसार ''चिन्तन प्राणी का परिस्थिति के प्रति चेतन समायोजन है।''

"Thinking may be described as conscious adjustment of an organism to a situation." Collins and Drever.

डॉ. एस.एन. शर्मा ने वारेन के द्वारा चिन्तनके संदर्भ में दी गई परिभाषा को अपने शब्दों में इस प्रकार अभिव्यक्त किया है– ''चिन्तनएक विचारात्मक प्रक्रिया है जिसका स्वरूप

प्रतिकात्मक है, इसका प्रारंभ व्यक्ति के समक्ष किसी समस्या अथवा क्रिया से होता है, परन्तु समस्या के प्रत्यक्ष प्रभाव से प्रभावित होकर अंतिम रूप से समस्या सुलझाने अथवा उसके निष्कर्ष की ओर ले जाती है।

"Thinking is an ideational activity, symbolic in character, initiated by a problem or a task the individual facing, involving some amount of trial, but under direct influence of his problem set and leading ultimately to a conclusion or solution of the problem." Warren, *Dictionary of Psychology*.

कागन एवं हैवमेन (1976) के अनुसार चिन्तनप्रतिमाओं, प्रतिकों, संप्रत्ययों, नियमों एवं मध्यस्थ इकाइयों का मानसिक परिचालन है।

"Thinking can best be described as the mental manipulation of images, symbols concepts rules and other mediation units." Kagan and Haveman (1976).

सिलवरमेन (1978) के अनुसार चिन्तन एक मानसिक प्रक्रिया है जो हमें उद्दीपकों एवं घटनाओं के प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व द्वारा किसी समस्या का समाधान करने में सहायता करती है।

"Thinking is a process that enables us to find the solutions to problems by using symbolic representations of stimuli and events." Silverman (1978).

बेरोन (1972) ने चिन्तनको संप्रत्ययों, विचारार्थ समस्याओं तथा प्रतिमाओं का मानसिक परिचालन माना है।

"Thinking involves mental manipulation of concepts, propositions and images." Baron (1972).

आइजनेक एवं उनके साथियों (1972) के अनुसार "कार्यात्मक परिभाषा के रूप में चिन्तन काल्पनिक जगत में व्यवस्था स्थापित करना है। यह व्यवस्था स्थापित करना वस्तुओं से सम्बन्धित होता है तथा साथ ही साथ वस्तुआ के जगत की प्रतिकात्मता से भी सम्बन्धित होता है। वस्तुओं में सम्बन्धों की व्यवस्था तथा वस्तुओं में प्रतिकात्मक सम्बन्धों की व्यवस्था भी चिन्तन है।"

"Thinking is defined operationally as the establishing of orders in apprehended world. This ordering relates to objects as well as to representations of world of objects. Thinking is also the ordering of relations between objects and ordering of relations between representations of objects." Eysenck and Associates (1972).

चिन्तन प्रक्रिया के बारे में मनोवैज्ञानिक हेम्फ्रे ने भी कुछ तथ्य प्रस्तुत किये है–

1. व्यक्ति समस्या के समाधान के लिए चिन्तनकरता है और इस क्रिया में वह पूर्व अनुभवों का प्रयोग करता है।
2. व्यक्ति की समस्या उसके उद्देश्य तक पहुंचने में बाधा उत्पन्न करती है अतः

समस्या के हल के लिए चिन्तनकी आवश्यकता पड़ती है। इसी परिस्थिति में चिन्तन क्रियाशील होता है।

3. चिन्तन उद्देश्यपूर्ण होता है और इसमें भाषा अति आवश्यक होती है।

4. समस्या के समाधान में जब चिन्तनप्रक्रिया प्रारंभ होती है तो उसमें प्रतिमाऐं, आन्तरिक भाषा तथा मांसपेशिय क्रियाएं भी होती है।

13.5 चिन्तन प्रक्रिया के तत्त्व (Factors of Thinking)

मनोवैज्ञानिकों ने चिन्तनके निम्न मुख्य तत्त्व माने है—

1. चिन्तनके लिए समस्या का उपस्थित होना आवश्यक है।
2. समस्या के हल के लिए एक दिशा निर्धारित करना।
3. उद्देश्यपूर्ण दिशा की ओर अग्रसर होना।
4. प्रयास एवं त्रुटि (Trial and error) विधि का प्रयोग करना।
5. व्यक्ति का क्रियाशील होना।
6. आन्तरिक भाषा का उपस्थित होना।

13.6 चिंतन, कल्पना और स्मरण (Thinking, Imagination and Memory)

चिंतन, कल्पना और स्मरण—तीनों मानसिक प्रक्रियाएं है और ये तीनों एक दूसरे की पूरक है। तीनों प्रक्रियाएं एक—दूसरे से गुंथी हुई (Inter wind) है। परन्तु ये तीनों क्रियाऐं एक नहीं है। चिन्तनएवं कल्पना दोनों ही ज्ञानात्मक एवं रचनात्मक प्रक्रियाएं है। परन्तु दोनों प्रक्रियाओं में काफी भेद है, जो निम्न प्रकार से है—

1. चिन्तनप्रक्रिया तार्किक (Logical) होती है जबकि कल्पना प्रक्रिया में तार्किकता का अभाव होता है।

2. चिन्तनप्रक्रिया किसी समस्या के आधार पर उत्पन्न होती है जबकि कल्पना प्रक्रिया अनायास भी हो सकती है।

3. चिन्तनप्रक्रिया में मुख्य रूप से समस्या का समाधान किया जाता है जबकि कल्पना प्रक्रिया में किसी परिस्थिति को नवीन रूप दिया जाता है।

4. चिन्तनप्रक्रिया चेतन मन से होती है जबकि कल्पना अचेतन रूप में होती है।

13.7 चिन्तनऔर स्मरण (Thinking and Memory)

चिन्तन और स्मरण दोनों मानसिक प्रक्रियाएं है और एक–दूसरे की पूरक है परन्तु इन दोनों प्रक्रियाओं में बहुत भेद भी है, जैसे–

1. चिन्तनप्रक्रिया नवीन बातों की ओर ले जाती है जबकि स्मरण प्रक्रिया में पूर्व अनुभवों की स्मृति उभर कर सामने आती है।

2. चिन्तनप्रक्रिया का उद्देश्य समस्या का समाधान होता है जबकि स्मरण का उद्देश्य पूर्व अनुभवों का पुनःस्मरण होता है।

3. चिन्तनप्रक्रिया में किसी समस्या का समाधान होता है जबकि स्मरण प्रक्रिया पूर्व अनुभवों या पूर्व घटनाओं से संबंधित होती है।

13.8 चिन्तनके साधन या चिंतनोपकरण

चिन्तन प्रक्रिया में तीन उपकरण मुख्य है, ये हैं –

1. पदार्थ (Object),

2. सम्प्रत्यय (Concept),

3. चिन्ह और प्रतीक (Symbols and Signs)।

1. पदार्थ (Object)–चिन्तनप्रक्रिया में पदार्थ का विशेष स्थान रहता है क्योंकि इसके आधार पर ही चिन्तनसंभव है। यह पदार्थ मुख्य रूप से वस्तुगत, विशेष अथवा सामान्य या गत्यात्मक गुण वाले हो सकते है। चिन्तनप्रक्रिया में ये हमारी आंखों के सामने उपस्थित होकर चिन्तनप्रक्रिया में सहायक होते है या उनका प्रत्यावाहन अथवा कल्पना करके हम उसे चिन्तनका उपकरण बना लेते है।

2. सम्प्रत्यय (Concept)–चिन्तनका दूसरा प्रमुख साधन सम्प्रत्यय है। चिन्तनप्रक्रिया का साधन शब्द का सार्थक रूप ही प्रत्यय होता है। किसी शब्द की व्याख्या वास्तव में प्रत्यय की अभिव्यक्ति है। जब हम किसी शब्द की व्याख्या करते है तो वह व्याख्या प्रत्यय ज्ञान के आधार पर ही होती है। जब शब्द के बारे में हमारा प्रत्यय ज्ञान सही नहीं है तो शब्द का अर्थ बताने में हम असमर्थ होते है। पदार्थ या वस्तु के संबंध में प्रत्यय निर्माण (Concept formation) एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में भिन्न–भिन्न हो सकता है। किसी पदार्थ का जो अर्थ हम लगाते है अर्थात् प्रत्यय निर्माण करते है वैसा ही दूसरे व्यक्ति में हो यह आवश्यक नहीं है। पदार्थ तथा उससे संबंधित क्रियाओं और गुणों के भी प्रत्यय होते है, जैसे पेड़–पौधे, फल–फूल, स्थान की दूरी, इत्यादि से संबंधित ज्ञान का रूप प्रत्यय निर्माण ही है। परस्पर वार्तालाप प्रत्यय निर्माण के आधार पर ही सफल संभव हो सकता है परन्तु कभी–कभी आवश्यक नहीं है कि जिस बात का प्रत्यय हमारे मस्तिष्क में हो वही प्रत्यय दूसरे व्यक्ति के मस्तिष्क में हो।

3. चिन्ह और प्रतीक (Symbols and Signs)–

प्रतीक और चिन्ह भी चिन्तनप्रक्रिया की मुख्य सामग्री है। चिन्तनके लिए ये दोनों आवश्यक है। प्रत्येक प्रतीक (Symbol), चिन्ह (Sign) का बोधक होता है और प्रत्येक चिन्ह (sign), प्रतीक (Symbol) का बोधक होता है अर्थात् ये एक–दूसरे के बोधक (Indicator) है। जैसे उदाहरण के लिए गणित में जोड़ का प्रतीक '+' के चिन्ह से तथा घटाने का प्रतीक '–' से प्रकट किया जाता है। व्यक्ति की भाषा भी एक प्रकार से प्रतीक है और इसकी कई प्रकार से अभिव्यक्ति होती है। मनुष्य ही नहीं अपितु पशु भी कई अंशों तक प्रत्यय के रूप में भाषा व्यवहार करते है। व्यक्ति शब्दों के सहारे चिन्तनकरता है क्योंकि प्रायः सभी शब्द प्रतीक होते है जिनका एक विशेष अर्थ होता है। शब्दों से भाषा का निर्माण होता है अतः भाषा, प्रतीक और चिन्ह–दोनों ही है और ये चिन्तनमें बहुत सहायक होते है।

13.9 चिन्तन के आधार या चिन्तन के पीछे दृष्टिकोण

प्रत्येक व्यक्ति में चिन्तनकरने या सोचने के विशेष तरीके या दृष्टिकोण होते है जिनको व्यक्ति सोचने के समय उपयोग में लाता है। यद्यपि व्यक्ति इसके बारे में ज्यादा सजग नहीं होता है तथापि कुछ तरीके जैसे–सिद्धान्त, प्रतिमान, संदर्भ, अपेक्षा, प्रारूप या मानचित्र, संस्कार एवं धारणाएं आदि ऐसे तरीके है, जिनसे ज्ञान एवं अनुभवों को संगठित स्वरूप दिया जाता है। पहली बार जब हम किसी स्थिति या व्यक्ति के संपर्क में आते है तब यह पहला अनुभव हमारे में एक संस्कार बन जाता है अर्थात् हम उस व्यक्ति के प्रति एक दृष्टिकोण बना लेते है और इसी दृष्टिकोण के आधार पर हम आगे की घटनाओं पर विचार करते है। यह दृष्टिकोण दुनिया को समझने या उसको जानने में एक आधार बन जाता है जैसे दूध का जला छाछ को भी सावधानीपूर्वक पीता है। यह दृष्टिकोण अथवा संस्कार हमारे विश्वास को बनाता है और यह दुनिया क्या है? कैसे कार्य करती है? इसके बारे में अनुभव प्रदान करता है।

दृष्टिकोण या संस्कार में हमारी आस्था निहित होती है, एक समझ पैदा होती है कि विश्व क्या है? कैसा है? कैसे यह कार्य करता है? इसके साथ–साथ एक मूल्यांकन भी सन्निहित होता है। अपने बारे में, विश्व के बारे में एवं दोनों के अन्तःसंबंधों के बारे में। हम उसी दृष्टिकोण के आधार पर सृष्टि की घटनाओं को समझते है, अनुमान लगाते है तथा भविष्यवाणी करते है। हमारे पुराने दृष्टिकोण या संस्कार बदलते भी है। जब हम नई बातों या तथ्यों को उस आधार या दृष्टिकोण पर समझने में सफल नहीं होते तब अधिकतर हमारी दृष्टि स्वतः ही आन्तरिक रूप में परिवर्तित होती रहती है अर्थात् अचेतन मन से ही परिवर्तित होती रहती है। इसका सामान्यतया हमें पता नहीं चलता है और इस दृष्टि परिवर्तन को भाषा में बांधा भी नहीं जा सकता। इस प्रकार जैसे–जैसे हमारी आयु बढ़ती है, अनुभव बढ़ते है, हमारी समझ भी बढ़ती चली जाती है। हमारी धारणाएं (संस्कार या दृष्टिकोण के ज्ञानात्मक पक्ष का एक अंश) सामान्य घटना चक्रों की एक समझ

होती है तथा सिद्धान्त, नियम, प्रारूप और मानचित्र आदि हमारे चिन्तनके उपयोगी साधन बनते है। इनकी उपयोगिता इस बात पर निर्भर करती है कि किसी बात का वर्णन करने, व्याख्या करने या भविष्यवाणी करने में ये कितने सहायक होते है। वर्णनात्मक प्रारूप या मानचित्र किसी वस्तु को पहचानने में सहायक होते है। व्याख्यात्मक प्रारूप या मानचित्र यह बताते है कि कोई वस्तु क्यों एवं कैसे है? भविष्य कथन में सहायक प्रारूप या मानचित्र एक निश्चित सीमा में भविष्यवाणी करने में सहायक सिद्ध होते है। इस प्रकार की भविष्यवाणी प्रारूप घटित घटना से लाभ उठाने व योजनाएं बनाने में सहायक होती है जिससे व्यक्ति घटनाओं से अधिकतम लाभ उठा सके।

13.10 चिन्तन की आधारभूत दक्षताएं

अच्छे चिंतक या विचारक जागरूकता से, सजगता से एवं स्वेच्छा से व्यापक स्तर पर सिद्धान्त, प्रारूप या मानचित्र, अवधारणाओं का उपयोग अपनी रुचि के क्षेत्र के चिन्तनमें करते है। अनेक सिद्धान्तों का उद्‌गम एवं उपयोग अनेक विषयों एवं विधाओं के विकास के साथ–साथ हुआ, जैसे–गणित, विज्ञान, भूगोल आदि। चिंतक अनेक विधाओं के क्षेत्र में अपने विषय में चिन्तनके लिए विशेष सिद्धान्त या प्रारूप का उपयोग करते है। हमें सामान्य जीवन की समस्याओं को समझने एवं सुलझाने के लिए उन विशेष सिद्धान्तों या प्रारूपों की अपेक्षा नहीं भी हो सकती है परन्तु फिर भी अपने विषय में चिन्तनकरने के लिए कुछ सैद्धान्तिक एवं अनुभव ज्ञान के साथ कुछ आधारभूत दक्षताओं की आवश्यकता होती है। हमारे सुदृढ़ चिन्तनके लिए मुख्य रूपसे निम्न मूल या आधारभूत दक्षताओं की आवश्यकता होगी–

1. परिभाषा– (Defination)
2. अनाग्रह–(Suspension of belief)
3. प्रश्न करना एवं समस्या को स्पष्ट करना–(Asking question and formulating problems)
4. वैचारिक प्रवाह को लिखना (Brain Storming)
5. वर्गीकरण एवं प्राथमिकता निर्धारण (Categorizing and prioritizing)
6. विश्लेषण (Analysis)
7. अनुमान (Infering)
8. तुलनात्मक (Comparing and Contrsting)
9. परिकल्पना निर्माण एवं असत्यकरण (Hypothesising and falsifying)

10. विशेषीकरण या सामान्यकरण (Particularizing or generalising)

11. समालोचनात्मक परीक्षण या कसौटी (Devil's Advocate)

12. समस्या समाधान चक्र (Problem solving Cycles)

उपरोक्त बिन्दुओं को विस्तारपूर्वक इस प्रकार समझा जासकता है–

1. परिभाषा (Defination) चिन्तनके केन्द्र बिन्दुओं में प्रयुक्त शब्दों को सम्मिलित प्रकार से परिभाषित करना। यह नहीं मानें कि शब्दों का जो अर्थ हम लगा रहे है वही अर्थ दूसरों के दिमाग में भी होगा।

2. अनाग्रह (Suspension of Belief)–नई अवधारणा या सिद्धान्त को खोजने के लिए चिन्तन प्रक्रिया में अपने आप को पूर्व अवधारणाओं व पूर्वाग्रहों से मुक्त रखें (चाहे अल्प समय के लिए ही सही)। जब तक नवीन अवधारणाएं स्पष्ट न हो तब तक धैर्य रखना चाहिए। असमंजसता की स्थिति हो तो घबराना नहीं चाहिए। अनेकांत दृष्टिकोण के रूप में इस क्षमता का विकास किया जा सकता है।

3. प्रश्न करना एवं समस्या को स्पष्ट करना (Asking question and formulating problems)– प्रभावशाली चिन्तनप्रश्न उठाने की कला पर निर्भर करता है। इसमें सही एवं सटीक प्रश्न उठाए जाते है अथवा समस्याको इस प्रकार उठाया जाता है जिससे उसको हल करना सरल हो जाए।

4. वैचारिक प्रवाह को लिखना (Brain Storming)–समस्या के बारे में स्वयं के पास उपलब्ध जानकारी को लिख लेना तदपुरान्त उनका न्यायदर्शन एवं मूल्यांकन करना।

5. वर्गीकरण एवं प्राथमिकता निर्धारण (Categorizing and Prioritizing)–चिंतनों, विचारों अथवा जानकारी के वर्गीकरण या प्राथमिकता निर्धारण से समस्या की स्पष्टता में अभिवृद्धि हो जाती है। इससे अनावश्यक विचारों की छटनी करने में भी सहायता प्राप्त होती है।

6. विश्लेषण (Analysis)–विश्लेषण सामान्यतया किसी सिद्धान्त विशेष के आधारपर किया जाता है। विश्लेषण करने से तथ्यों एवं पूर्वकल्पित धारणाओं में भेद करने में सहायता प्राप्त होती है। विश्लेषण प्रक्रिया के माध्यम से विचारों के सुक्ष्म स्तर तक पहुंचा जा सकता है।

7. अनुमान (Inferring)–इसमें किसी सूचना अथवा जानकारी के आधार पर अन्य बातों का पूर्वानुमान लगाया जासकता है।

8. तुलना करना (Comparing and Contrasting)–तुलना करने की क्षमता चिन्तनप्रक्रिया के निर्णय में सहायक होती है। इसकी विभिन्न संभावनाओं के आधार पर निर्णय किया जाता है।

9. परिकल्पना निर्माण एवं असत्यकरण (Hypothesising and

Falsifying)—इसके अन्तर्गत सिद्धान्त या प्रारूप का निर्माण करना उसकी सत्यताको परखना होता है। परिकल्पना एक अनुमानित सत्य है जब तक कि वह मिथ्या सिद्ध न हो जाए। इस प्रकार का चिन्तनकिसी सिद्धान्त को सत्यापित करने हेतु किया गया शोध या अन्वेषण होता है।

10. विशेषीकरण या सामान्यकरण (Particularizing or Generalizing)—इसके अन्तर्गत सिद्धान्त के प्रमाणों के आधार पर उसके परिणामों का सामान्यकरण या विशेषीकरण किया जाता है।

11. समालोचनात्मक परीक्षण या कसौटी (Devil's Advocate)—

इसके अन्तर्गत विभिन्न परिकल्पनाओं की संभावनाओं की समालोचना करना होता है। अन्य वैकल्पिक कारणों की उपस्थिति को कसौटी पर कसना होता है।

12. समस्या समाधान चक्र (Problem Solving Cycles)—

इसके अन्तर्गत सिद्धान्त का अथवा परिकल्पना का क्रमशः परीक्षण करना उसे कार्यकारण सिद्धान्त से देखना। कई विकल्पों में से किसी सही विकल्प पर पहुंचना।

13.11 चिन्तन के प्रकार

चिन्तन के स्वरूपका अध्ययन करने के लिए मनोवैज्ञानिकों इसे कई प्रकारों में बाटॉ हैं जैसे— वैयक्तिक एवं समूह चिन्तन (Individual and group thinking) तार्किक एवं अतार्किक चिन्तन (Logic and Illogic thinking), यथार्थवादी चिन्तन (Realistic thinking) , स्वली चिन्तन (Autistic thinking) अभिसारी चिन्तन (Convergent thinking), सृजनात्मक चिन्तन (Creative thinking) एवं आलोचनात्मक चिन्तन (Evaluative thinking)।

जम्बार्डो तथा रूक (Zambardo and Ruch, 1977) ने मूलरूप से चिन्तन के दो प्रकार बताए है — यथार्थवादी चिन्तन (Realistic thinking) , एवं स्वली चिन्तन (Autistic thinking) जिनका संक्षेप में वर्णन हम आगे कर रहे हैं।

1. यथार्थवादी चिन्तन (Realistic thinking)

इस प्रकार के चिन्तन का सम्बन्ध वास्तविकता से होता है और उसके आधार पर व्यक्ति अपनी समस्या का समाधान का करता है। जैसे कोई व्यक्ति वाहन से जारहा है और वाहन अचानक रूक गया है तो उस व्यक्ति में इस प्रकार का चिन्तन स्वभाविक है कि वाहन अचानक क्यों रूक गया है, क्या वाहन के ईन्जिन में खराबी आगई है या पेट्रोल खत्म होगया है या अन्य कोई और खराबी है इस पर वह समस्या को सुलझाने का चिन्तन करता है।

जम्बार्डो तथा रूक के अनुसार यथार्थवादी चिन्तन भी तीन प्रकार के होते हैं यथा—

i. अभिसारी चिन्तन (Convergent thinking),

ii. सृजनात्मक चिन्तन (Creative thinking)

iii. आलोचनात्मक चिन्तन (Evaluative thinking)

इन तीनों प्रकार के चिन्तनों को संक्षेप आगे वर्णन किया जारहा है।

i. **अभिसारी चिन्तन (Convergent thinking)**

इस प्रकार के चिन्तन में व्यक्ति अपनी समस्या पर किन्ही तथ्यों के आधार पर अपने अनुभवों का उपयोग करते हुए चिन्तन करता है। जैसे गणित का कोई सवाल हल करना हो यथा – पॉच गुणा पॉच कितने होते है तो इस समस्या का हल करने मे अभिसारी चिन्तन किया जाता है। इस प्रकार के चिन्तन को निगमनात्मक चिन्तन(deductive thinking) भी कहतें है।

ii. **सृजनात्मक चिन्तन (Creative thinking)**

इस प्रकार के चिन्तन में व्यक्ति कुछ नये तथ्यों एवं विचारों का सृजन करते हुए चिन्तन करता। जैसे किसी किसी वस्तु के साधारण उपयोग के अतिरिक्त उसके और क्या विशेष उपयोग हो सकते है इस पर जिस प्रकार का चिन्तन किया जाता है वह सृजनात्मक चिन्तन के अन्तर्गत आता है। इस प्रकार के चिन्तन को अगमनात्मक चिन्तन (inductive thinking) भी कहते हैं।

iii. **आलोचनात्मक चिन्तन (Evaluative thinking)**

इस प्रकार के चिन्तन में व्यक्ति किसी घटना, विषय–वस्तु तथा तथ्यों को स्वीकार करने पहले इनके गुण और दोषों के बारे में पारखी चिन्तन करता है तथा आलोचनात्मक विचार – मन्थन द्वारा इनको परखता है। बिना आलोचनात्मक विचार – मन्थन के इन घटना, विषय–वस्तु एवं तथ्यों को स्वीकार नही करता।

2. **स्वली चिन्तन (Autistic thinking)**

इस प्रकार के चिन्तन मे व्यक्ति अपने काल्पनिक विचारों से अपनी आवश्यकता एवं इच्छाओं की अभिव्यक्ति करता है। इसमे दिवा–स्वप्न एवं अभिलाषा के चिन्तन जैसे चिन्तन आते है। उदाहरणार्थ – कोई व्यक्ति यह सोचता है कि वह एक बहुत बड़ा अधिकारी बन जाएगा, उसके बड़ा घर होगा, सुन्दर सी पत्नि होगी, कार गाड़ी आदि होंगें। इस प्रकार के काल्पनिक विचार इस चिन्तन के अन्तर्गत आते हैं। इस प्रकार के चिन्तन की विशेषता यह है कि इसमें किसी भी प्रकार की समस्या का समाधान नहीं हो पाता है क्यों कि यह सब कुछ काल्पनिक होता है।

वैयक्तिक एवं समूह चिन्तन (Individual and group thinking)

व्यक्ति जब अपनी व्यक्तिगत समस्या को लेकर उसके हल के लिए व्यक्तिगत स्तर पर चिन्तन करता तो इस प्रकार का चिन्तन वैयक्तिक चिन्तन कहलाता है। परन्तु जब

समस्या कई व्यक्तियों से सम्बन्धित हो और उसके समाधान के लिए कई व्यक्ति एक साथ चिन्तन करते हों तो इस प्रकार के चिन्तन को समूह चिन्तन कहते हैं।

तार्किक एवं अतार्किक चिन्तन (Logic and Illogic thinking)

जब चिन्तनकर्ता अपनी समस्या का समाधान तार्किक विचारों के आधार पर करता तो ऐसा चिन्तन तार्किक चिन्तन कहलाता है। इस प्रकार के चिन्तन वैज्ञानिक समस्याओं समाधान के लिए किया जाता है तथा तर्कशास्त्र के आधार पर होती है। इसके विपरीत जो चिन्तन तर्कशास्त्र के आधार पर नहीं होतें है उनको अतार्किक चिन्तन कहते है।

13.12 ध्यान एवं योग द्वारा चिन्तन का विकास

वर्तमान में जीवन शैली में परिवर्तन होने से एवं पाश्चात सभ्यता के प्रभाव से लोगों की चिन्तन की प्रक्रिया में भी कई परिवर्तन देखने को मिलते हैं। चिन्तन की प्रक्रिया को प्रभावित करने के कई कारक हो सकते है परन्तु मानसिक तनाव, मानसिक अस्थिरता तथा संवेगात्मक अस्थिरता प्रमुख कारक है। व्यक्ति की अनावश्यक व्यस्तता, संघर्षमय जीवन के कारण तनाव की बहुलता उसकी चिन्तन प्रक्रिया को काफी हद तक प्रभावित करती है। वर्तमान में व्यक्ति का चिन्तन सटीक एवं अर्थपूर्ण नहीं हो पा रहा है। चिरकाल से हमारी भारतीय संस्कृति में कुछ ऐसी तकनीकियां एवं विधियां प्रचलन में है जो व्यक्ति को जीवन जीने की कला सिखाता है। जीवन जीने की कला में प्रभावशाली चिन्तन बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। चिन्तन प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाने के लिए योग एवं ध्यान का अभ्यास महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते है। योग के अध्ययन से जहां व्यक्ति जीवन जीने की सही कला सीखता है वहीं ध्यान के प्रयोगों के द्वारा अपना मानसिक एवं शारीरिक परिष्कार करता है। ये दोनों पक्ष व्यक्ति की चिन्तन प्रक्रिया को सुदृढ़ और सुव्यवस्थित रूप प्रदान करते है। ध्यान की प्रक्रिया से मानसिक उद्वेगों में कमी आती है वहीं शरीर के शिथिलीकरण से शारीरिक तनाव कम हो जाते है। कई शोधकार्यों द्वारा इस बात की पुष्टि हो चुकी है। प्राणायाम के नियमित अभ्यास से मानसिक एबं शारीरिक क्रियाओं का परिष्करण किया जा सकता है। कई शोध कार्यों में इस बात की पुष्टि हुई है।

अन्तर्दृष्टि चिन्तन प्रक्रिया को प्रभावित करती है। योग साधना द्वारा अन्तर्दृष्टि का विकास सहज ही किया जा सकता है। अष्टांग योग द्वारा अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है, मन के विकार समाप्त हो जाते है, मानसिक स्थिरता बढ़ जाती है जो अन्तर्दृष्टि, अन्तर्ज्ञान ज्ञान प्राप्ति में सहायक होती है। आसनों के अभ्यास से शरीर का लचीलापन बढ़ता है और कई प्रकार की व्याधियों से मुक्ति मिलती है। प्राणायाम से विवके ज्ञान का आवरण क्षीण हो जाता है और विवेक ज्ञान प्रस्फुटित होता है। पांतजली योग दर्यन के अनुसार—

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ।।

प्राणायाम से मन स्थिर होता है। प्रत्याहार से मन के अनावश्यक विचार दूर हो जाते हैं एवं इन्द्रियों का उत्कृष्ट वशीकरण हो जाता है। धारणा से मन स्थिर होता है साथ ही धैर्यता का भी विकास होता है। ध्यान के द्वारा मन के संकल्प विकल्प शान्त हो जाते हैं

और उसे अद्‌भुत चैतन्य की प्राप्ति होती है। जब ध्यान में ध्येय अर्थ मात्र से भासता है और उसका (ध्यान का) स्वरूप शून्य जैसा हो जाता है तो यह समाधि की अवस्था कहलाती है। तीनों (धारणा, ध्यान और समाधि) का एक विषय में होना संयम कहलाता है। इस स्थिति पर या इस स्थिति में व्यक्ति की अन्तर्दृष्टि, अन्तर्ज्ञान एवं अतीन्द्रिय ज्ञान सहज रूप से प्राप्त होता है, जिससे चिन्तन की प्रक्रिया सहज भाव से चलती रहती है।

गौड़ (1977, 80, 84, 86, 90, 94), नें अपने शोध कार्यों में इस बात की पुष्टि की है कि भवातीत ध्यान के नियमित अभ्यास से बौद्धिक क्षमता में वृद्धि संवेगात्मक स्थिरता में वृद्धि, स्वप्रत्यय निर्माण क्षमता में वृद्धि और शारीरिक एवं मानसिक तनाव (Ergic-tension) में कमी होती है। गौड़ (1997), गौड़ एवं बेताल (1999), ने अपने शोधकार्यों में भी ध्यान के कुछ अवयवों, जैसे–कायोत्सर्ग, दीर्घश्वास प्रेक्षा तथा ज्योतिकेन्द्र प्रेक्षा का नियमिति अभ्यास करने से उपरोक्त कारकों में सार्थक परिवर्तन होते है जो व्यक्ति की चिन्तनप्रक्रिया को सुदृढ़ बना सकते है। गौड़ एवं शर्मा (2000) द्वारा कैदियों पर किये गए एक लघु शोधकार्य में भी इसी प्रकार के परिणाम देखे गए तथा यह भी देखा गया कि ध्यान के अभ्यास से कैदियों के चिन्तनमें सकारात्मक परिवर्तन हुआ। इसी तरह गौड़ एवं सैनी (2000) ने कैदियों पर ध्यान का प्रभाव आठ क्षेत्रों के तनावों पर देखा। ध्यान के नियमित अभ्यास से आठ क्षेत्रों के तनावों में सार्थक कमी आई और उनकी सोच में सकारात्मक सार्थक परिवर्तन देखा गया। अतः उपरोक्त शोध कार्यों से यह स्पष्ट होता है कि ध्यान का अभ्यास शारीरिक एवं मानसिक तनावों को दूर करते हुए व्यक्ति की चिन्तन प्रक्रिया एवं चिन्तन संरचना को सुदृढ़ बनाती है। व्यक्ति में जितनी बौद्धिक क्षमता अधिक होगी, संवेगात्मक स्थिरता अधिक होगी, स्वप्रत्यय निर्माण की क्षमता अधिक होगी एवं शारीरिक एवं मानसिक तनाव जितने कम होंगे उतनी ही उनकी चिन्तन क्षमता बढ़ेगी।

अभ्यास प्रश्न

1. चिन्तनके उपकरण .... हैं।
2. चितन के मूल या आधारभूत दक्षताएं .... हैं।
3. जम्बार्डो तथा रूक के अनुसार चिन्तनके .... प्रकार हैं।

लघुउत्तरात्मक प्रश्न

1. चिन्तन क्या है?
2. चिन्तनकी कोई दो परिभाषाएं दीजिए।
3. चिन्तन एवं कल्पना में क्या अन्तर है?
4. चिन्तनएवं स्मरण में क्या अन्तर है?
5. यथार्थवादी चिन्तन को संक्षेप में समझाइये।

13.13 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप चिन्तनके स्वरूप, चिन्तनकी परिभाषाओं को समझ गये होगें । इनके अतिरिक्त आप चिन्तनके तत्त्व और चिन्तनके आधारों और चिन्तन प्रक्रिया के तत्त्वों के बारे में भी इस इकाई में समझ गयें है। चिन्तनकी आधारभूत दक्षताओं तथा चिंतन, कल्पना और स्मरण में क्या सम्बन्ध हैं क्या अन्तर हैं के बारे में भी विस्तार से इस अध्याय में अध्ययन कर चुके हैं। चिन्तन के प्रकार और ध्यान एवं योग द्वारा चिन्तनका विकास किस प्रकार सम्भव है इसका भी वैज्ञानिक आधार इस इकाई में समझाया गया है जिसे आप समझ गये हैं।

13.14 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.Gaur B. P., Personality and Transcendental Meditation, A *Jainsons Publication (1994),* East of Kailash, New Delhi

2.शर्मा, एस.एन. आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान (1990-91), *हरप्रसाद भार्गव, 4/230 कचहरी घाट,* आगरा।

3.वर्मा, प्रीति एवं श्रीवास्तव डी.एन. आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान (2001), *विनोद पुस्तक मन्दिर,* आगरा।

4.सिंह, अरूण कुमार संज्ञानात्मक मनोविज्ञान (2002), *मोतीलाल बनारसीदास* बंगलो रोड, दिल्ली।

13.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. चिन्तनकी विभिन्न परिभाषा देते हुए चिन्तन एवं कल्पना में अन्तर स्पष्ट करें।
2. चिन्तनके लिए मूल या आधारभूत दक्षताओं का वर्णन करें।
3. चिन्तनके विकास प्रेक्षाध्यान द्वारा किस प्रकार सम्भव है, स्पष्ट करें।
4. चिन्तनके उपकरण कौन–कौन से हैं ? विस्तार से समझाइये।
5. चिन्तनके प्रकारों को विस्तार से समझाइये।

इकाई–14 स्मृति : परिभाषा एवं प्रकार

इकाई की संरचना

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 स्मृति क्या है

14.4 स्मृति की परिभाषाएं

14.5 स्मृति के प्रकार

14.6 स्मरण की प्रक्रियाएं एवं स्मरण के तत्त्व

14.7 धारणा को प्रभावित करने वाले कारक

14.8 स्मृति प्रक्रिया को उत्तम बनाने के लिए कुछ अनुकूल दशाएं

14.9 मानसिक स्थिरता एवं स्मरण

14.9.1 स्मृति एवं ध्यान–योग

14.9.2 प्राणायाम एवं स्मृति

14.10 सारांश

14.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

14.12 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

गत अध्याय में हमने चिंतन, चिन्तनके स्वरूप, चिन्तनकी परिभाषाओं आदि का अध्ययन किया। इस इकाई में हम स्मृति क्या है, स्मृति के प्रकार एवं स्मरण की प्रक्रियाओं के बारें में अध्ययन करेगें। इनके अतिरिक्त स्मरण की प्रक्रियाएं एवं स्मरण के तत्वों के बारें में भी जानकारी प्राप्त करेगें। स्मृति प्रक्रिया को उत्तम बनाने के लिए अनुकूल दशाओं का वर्णन भी इस इकाई में प्रस्तुत किया गया है जिनको आप सरलता से समझ पाएगें। स्मृति को किस प्रकार उत्तम बनाए रखा जासकता है इसके लिए स्मृति का प्रशिक्षण का

भी वर्णन इस इकाई में किया गया है जिसको आप समझ पाएगें। मानसिक स्थिरता का स्मरण शक्ति पर क्या प्रभाव पड़ता यह भी इस अध्याय में बतलाया गया है। स्मरण या स्मृति को ध्यान योग एवं प्राणायाम द्वारा कैसे विकसित किया जा सकता है इसका भी वर्णन इस इकाई में प्रस्तुत किया गया है। इकाई के अन्त में अभ्यास के कुछ प्रश्न दिये गयें हैं जिनको इस इकाई के पढ़ने के बाद आप सरलता से हल कर लेगें।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़नें के बाद आप –

- स्मृति क्या है, इसके बारे में आप जान पायेंगे।
- स्मृति के प्रकारों के बारे में भी आप जान पायेंगे।
- स्मृति प्रक्रिया के लिए अनुकूल दशाओं का भी आप समझ पाएगें।
- स्मृति क्षमता के विकास में ध्यान –योग एवं प्राणायाम की क्या भूमिका हो सकती है इसके बारे में भी आप जान पायेंगे।
- इस इकाई का अध्ययन करने के बाद स्मृति संबंधित विभिन्न प्रश्नों के उत्तर दे पायेंगे।

14.3 स्मृति क्या है

प्रायः हम यह सुनते हैं कि अमुक व्यक्ति की स्मृति बहुत अच्छी है। अमुक व्यक्ति बार–बार भूल जाता है। कई व्यक्ति अपनी स्मृति में कई सूचनाओं को एक साथ रख लेते हैं। कई बार हम बचपन की बातों को स्मृति में ले आते हैं तो कई बार हम वर्तमान की बातों को भी भूल जाते हैं। कई घटनाओं को हम जीवनभर याद रखते हैं तो कई बार हम अपने निकटस्थ मित्रों के नाम भी भूल जाते हैं। यह सब स्मृति का खेल है।

स्मृति और विस्मृति हमारे दैनिक जीवन में नित्य प्रतिदिन होने वाले अनुभव के विषय हैं। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार स्मृति एक मानसिक प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत व्यक्ति सूचनाओं को संरक्षित रखता है। जब हम किसी विषय को समझ लेते हैं और सीख लेते हैं तब मस्तिष्क इनकी सूचनाओं का भण्डारण कर लेता है और इन सूचनाओं का पुनरूद्धार सामान्यतः प्रत्याह्नान (Recall) के रूप में होता है। एक प्रकार से सूचनाओं का पुनरूद्धार ही स्मृति है।

स्मरण या स्मृति चिंतन, कल्पना, संवेदना आदि की तरह एक मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम अपने किसी अतीतानुभव या शिक्षण को वर्तमान चेतना में लाते हैं और पहचानते हैं। अतः स्मरण प्रक्रिया के लिए पूर्व के अनुभव या पूर्व से सीखना आवश्यक है। कालान्तर में जब हम उन अनुभवों या शिक्षण को अपनी चेतना में लाते हैं या पुनर्व्यक्त करते हैं तो चेतना में लाने और पहचानने की मानसिक प्रक्रिया ही स्मरण कहलाती है। स्मरण एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है और इसे कल्पना, चिंतन, संवेदना,

प्रत्यक्षीकरण आदि प्रक्रियाओं से भिन्न करना सरल नहीं है। स्मरण क्रिया में चार प्रक्रियाएं होती हैं या चार तत्त्व विद्यमान रहते हैं–

1. स्थिरीकरण या अधिगम (Fixation or Learning)
2. धारणा (Retention)
3. प्रत्याह्वान या पुनः स्मरण (Recall)
4. प्रतिभिज्ञा (Recognition)।

स्थिरीकरण में किसी विषय का अनुभव और शिक्षण आवश्यक है। अतः अनुभव या शिक्षण स्मरण की पहली प्रक्रिया है जो स्थिरीकरण के अन्तर्गत आती है। अनुभव में आए हुए या सीखे हुए विषय को संजोने की प्रक्रिया धारणा में आती है जो कि स्मरण की दूसरी प्रक्रिया है। धारणा में संजोये विषय को चेतना में लाना प्रत्याह्वान (Recall) कहलाता है जो कि स्मरण की तीसरी प्रक्रिया है। जब हम प्रत्यावाहित अनुभव या शिक्षण को पहचानते हैं तो यह प्रतिभिज्ञा (Recognition) की प्रक्रिया कहलाती है जो कि स्मरण की चौथी प्रक्रिया है।

14.4 स्मृति की परिभाषाएं

कई मनोवैज्ञानिकों ने स्मृति या स्मरण को विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया है। इनमें विलियम जेम्स, वुडवर्थ और हिलगार्ड तथा ऐटकिन्सन एवं लेहमैन, लेहमैन एवं बटरफिल्ड प्रमुख है।

डॉ. एस.एन. शर्मा ने विलियम जेम्स की परिभाषा को इस प्रकार परिभाषित किया है ''स्मरण किसी घटना अथवा तथ्य का ज्ञान है जिसके अतिरिक्त किसी अन्य चेतना के बारे में विचार नहीं कर रहे हैं, जैसाकि हम पहले विचार अथवा अनुभव कर सके हैं।''

"Memory proper is the knowledge of an event or fact of which in the mean time we have not been thinking with the additional consciousness that we have thought or expeienced before". William James.

वुडवर्थ के अनुसार, ''पूर्व में एक बार सीखी गयी क्रिया का पुनः स्मरण ही स्मृति है।''

"Memory consits in remembering what has previouslybeen learned". Woodworth.

हिलगार्ड और ऐटकिन्सन के अनुसार, ''स्मृति का अर्थ है कि वर्तमान में उन अनुक्रियाओं या प्रतिक्रियाओं को प्रदर्शित करना जिनको हमने पहले सीखा था।''

"To remember means to show in present responses some signs of earlier learned responses". Hilgard and Atkisnson.

लेहमैन, लेहमैन एवं बटरफिल्ड के अनुसार विशेष कालावधि के लिये सूचनाओं को संपोषित रखना ही स्मृति है।

उपरोक्त तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि स्मृति का स्वरूप शारीरिक और मानसिक जटिल स्वरूप है जिसमें तीन प्रकार की मानसिक प्रक्रियाएं होती हैं। मनोविज्ञान में स्मृति के स्वरूप का विवेचन दो प्रकार से किया गया हैं– 1. कई मनोवैज्ञानिक स्मृति को एक ही स्थिति वाली ऐसी व्यवस्था मानते हैं जिसमें सूचनाओं की प्रक्रिया भिन्न–भिन्न स्तर पर होती है, 2. दूसरे अनेक मनोवैज्ञानिक स्मृति को बहु अवस्था प्रक्रिया की रचना के रूप में मानते हैं।

14.5 स्मृति के प्रकार

ऐटकिन्सन तथा शिफरिंग ने स्मृति के स्वरूप की व्याख्या करने के लिए एक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उन्होंने स्मृति को तीन वर्गों में रखा–

1. सांवेदिक स्मृति (Sensory Memory)
2. अल्पकालिक स्मृति (Short Termed Memory-S.T.M.)
3. दीर्घकालिक स्मृति (Long Termed Memory-L.T.M.)

1. सांवेदिक स्मृति (Sensory Memory)

इस प्रकार स्मृति ज्ञानेन्द्रियों के स्तर पर कुछ क्षणों के लिए भण्डारित रहती है। सांवेदिक स्मृति ज्ञानेन्द्रियों के अनुसार रहती है। जितनी ज्ञानेन्द्रियां हैं उतनी प्रकार की सांवेदिक स्मृतियों की कल्पना की जा सकती है। ज्ञानेन्द्रियां अपने स्तर पर किसी उद्दीपन या उत्तेजना की सूचनाओं को प्राप्त करती है और ये सूचनाएं कुछ क्षणों के लिए ही बनी रहती हैं। जैसे चक्षुओं से देखे गये कुछ दृश्यों के संवेदना की स्मृति, नाक से ली गई गंध के संवेदना की स्मृति, जिह्वा से प्राप्त रस संवेदना की स्मृति, श्रवणेन्द्रिय से शब्द संवेदना की स्मृति और त्वचा से स्पर्श संवेदना की स्मृति। यदि ज्ञानेन्द्रियों के समक्ष उद्दीपन तीव्र है तो सम्भवतः उसकी स्मृति अल्पकालिक या दीर्घकालिक भी हो सकती है।

मनोवैज्ञानिक स्पर्लिंग (1960) एवं नाइस्सेर (1967) ने चाक्षुष सांवेदिक स्मृति (Visual sensory memory) और श्रवणात्मक सांवेदिक (Auditory sensory memory) पर प्रयोगात्मक शोध अध्ययन किये हैं। उनके अनुसार नेत्रों के सामने से उपस्थित उद्दीपक हट जाने के बाद भी नेत्रों के अक्षपटल पर उद्दीपक का प्रतिचित्र कुछ क्षणों के लिए बना रहता है। अतः इससे यह स्पष्ट होता है कि उद्दीपक के हटने के बाद भी उद्दीपक का प्रतिचित्र नेत्रपटल में भण्डारित रहता है और स्मृति पटल पर लाया जा सकता है।

जिस प्रकार से चाक्षुष सांवेदिक स्मृति भण्डार होता है उसी प्रकार श्रवणात्मक सांवेदिक स्मृति भण्डार भी होता है और दूसरी अन्य ज्ञानेन्द्रियों से सम्बंधि सांवेदिक स्मृति भण्डार होते हैं।

2. अल्पकालिक स्मृति या स्मरण (Short Term Memory (S.T.M.)

इस प्रकार की स्मृति में प्राप्त सूचनाएं बहुत ही सीमित समय तक रहती है। इसमें प्रायः ऐसी सूचनाएं रहती हैं जो वर्तमान समय की होती हैं तथा तात्कालिक रूप से प्राप्त की गई है। मनोवैज्ञानिकों ने अल्पकालिक स्मृतियों को चार प्रकार की बताया है। ये हैं सक्रिय स्मृति (Active memory), कार्यकारी स्मृति (Working memory), प्राथमिक स्मृति (Primary memory) एवं तात्कालिक स्मृति (Immediate memory)। अधिगम या सीखने (Learning) प्रक्रिया के समय विशेषकर वाचिक अधिगम के क्षेत्र में इस प्रकार की स्मृति का उपयोग होता है।

अल्पकालिक स्मृति के बारे में मनोवैज्ञानिक हेब्ब (1949) का यह मानना है कि इसका आधार मस्तिष्क के कुछ स्नायु कोशिकाओं में क्रिया का एक जाल–सा है जिसमें एक कोशिका में होने वाली क्रिया दूसरी कोशिका को सक्रिय करती है जिससे एक अनुरणन वृत्त (Reverbratory Circuit) बन जाता है। पुनः अभ्यास के अभाव में या समय बीतने के कारण यह क्रियाएं मन्द पड़ जाती हैं और कुछ काल बाद समाप्त हो जाती हैं।

3. दीर्घकालिक स्मृति (Long Term Memory (LTM)

हम सभी का यह अनुभव है कि कई घटनाएं हमें जीवनभर याद रहती हैं और कई घटनाएं हम कुछ ही दिनों में भूल जाते हैं। प्रायः हर व्यक्ति में विशाल एवं अपेक्षाकृत रूप से स्थाई स्मृति होती है। जब शब्दों का अर्थ हम एक बार अच्छी तरह समझ लेते हैं या किसी घटना की क्रिया को एक बार ठीक से समझ लेते हैं तो प्रायः उसे भुलते नहीं। फिर भी कई बार हम कुछ महिनों या वर्षों में भुल भी जाते हैं, उनकी विस्मृति हो जाती है। टुलविंग (1972) ने दो प्रकार की दीर्घकालिक स्मृतियों का वर्णन किया है– 1. वृतात्मक स्मृति (Episodic memory) तथा 2. शब्दार्थ विषयक स्मृति (Semantic memory)।

प्रथम प्रकार की स्मृति अर्थात् वृतात्मक स्मृति (Episodic memory) में घटनाओं और उनके कालिक–स्थानिक (Temperal spatial) सम्बंधों को ग्रहण कर भण्डारित किया जाता है। जबकि दूसरी प्रकार की स्मृति अर्थात् शब्दार्थ विषयक स्मृति (Semantic memory) में भाषा का उपयोग होता है। इसमें व्यक्तिवाचिक प्रतीकों (Verbal symbols), शब्दों एवं उनके अर्थों तथा उनके पारस्परिक सम्बंधों और सूत्रों का भण्डारण करता है और इसी स्मृति के आधार पर वह प्रतीकों एवं उनके सम्बंधों का उपयोग करता है। इस प्रकार की स्मृति में व्यक्ति में अनेक प्रतिमाएं (Image), संज्ञानात्मक मानचित्र (Cognative map) तथा स्थानिक विशेषताओं (Spatial specialities) का भण्डारण होता है।

उक्त दोनों प्रकार की स्मृतियां एक दूसरे से सम्बंधित है तथा एक दूसरे के लिए पूरक होती है। टुलविंग ने अपने आगे के शोधकार्यों (1983, 1984, 1985) में इन दोनों प्रकार की स्मृतियों में सम्बंध पाया है।

वृतात्मक स्मृति (Episodic memory) एवं शब्दार्थ विषयक स्मृति (Semantic memory) में कुछ निम्न विशेषताएं होती हैं–

1. दोनों स्मृतियों के स्वरूप एवं संरचना में अन्तर है। वृतात्मक स्मृति (Episodic memory) का सम्बंध किसी अनुभव विशेष के भण्डारण से होता है जबकि शब्दार्थ विषयक (Semantic memory) का सम्बंध शब्दों और प्रतीकों के संगठित ज्ञान के भण्डारण से होता है।

2. विस्मरण के स्वरूप के आधार पर दोनों स्मृतियों में भिन्नता होती है। वृतात्मक स्मृति का विस्मरण शीघ्रता से होता है जबकि शब्दार्थ स्मृति का देरी से।

3. वृतात्मक स्मृति एवं शब्दार्थ विषय स्मृतियां एक दूसरे से भिन्न होते हुए भी परस्पर अन्तर्क्रिया करती हैं।

दीर्घकालिक स्मृति (Long Term Memory) में स्मृति का भण्डारण वाचिक कूट संकेतों (Verbal encoding) से ही होता है। मनोवैज्ञानिकों का यह मानना है कि मूर्त्त अथवा अमूर्त्त गुणधर्मों एवं सम्प्रत्ययों का दीर्घकालिक स्मृति में भण्डारण भाषा के रूप में ही होता है। व्यक्ति जो कुछ भी स्मरण करता है, जैसे परिचित लोगों के चेहरे, वस्तुओं का रंग–रूप या कोई घटना, उनके कूट संकेत वाचिक ही होते हैं।

14.6 स्मरण की प्रक्रियाएं एवं स्मरण के तत्त्व

जैसा कि आपनें पूर्व में पढ़ा है कि स्मरण में चार प्रक्रियाएं होती हैं–1. अधिगम या स्थिरीकरण (Learning or Fixation), 2. धारणा (Retention), 3. पुनःस्मरण या प्रत्याह्वान (Recall) तथा 4. प्रतिभिज्ञा (Recognition)। अब हम इन प्रक्रियाओं का संक्षेप में वर्णन करेंगे–

1. अधिगम या स्थिरीकरण (Learning or Fixation)

अधिगम या सीखना या स्थिरीकरण स्मरणक्रिया के अन्तर्गत प्रथम मानसिक प्रक्रिया है। बिना किसी विषय वस्तु के सीखे, उसके स्मरण का प्रश्न ही नहीं उठता। जब हम किसी विषय वस्तु का स्मरण करते हैं तो इससे यह स्पष्ट है कि हमने उस विषय वस्तु को सीखा है या उसके बारे में ज्ञान प्राप्त किया है। जब हम किसी विषय वस्तु को सीखते हैं तो यह कूट संकेतन (Encoding) की प्रक्रिया कहलाती है और इस प्रक्रिया से मस्तिष्क में स्मृति चिह्न बन जाते हैं जिनका कि निर्माण स्नायु पुंजों से होता है। इन्हीं पुंजों से सूचना संसाधन की प्रक्रिया पूर्ण होती है। अर्थात् बाह्यजगत् की सूचना या बाह्य जगत् का अधिगम कूट संकेतन की सरलता या जटिलता सूचनाओं की प्रकृति पर निर्भर करती है जो व्यक्ति को संवेदनीय मार्ग (Sensory means) से प्राप्त

होती है। ये सूचनाएं स्मृति भण्डार में भण्डारित हो जाती हैं। कूट संकेतन शब्दार्थ विषयक, श्रवण या ध्वनि सम्बंधी या दृष्टि सम्बंधी हो सकते हैं। स्मरण में कूट संकेतन ऐसी प्रक्रिया है जिसमें बाह्य जगत् या वातावरण से प्राप्त उत्तेजनाओं या उद्दीपकों की सूचनाओं का स्मृति चिह्नों के रूप में संकलन होता है। संवेदनीय मार्ग या सभी प्रकार की ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ग्रहण की गई सूचनाओं का पूर्ण कूट संकेतन नहीं होता अपितु सार्थक सूचनाओं का ही कूट संकेतन हो पाता है।

कूट संकेतन की प्रक्रिया के साथ ही मस्तिष्क में संकलन (Compilation) की प्रक्रिया शुरु हो जाती है। सूचनाओं के संकलन पुनः स्मरण की प्रक्रिया तक बने रहते हैं।

2. धारणा (Retention)

स्मरण क्रिया में दूसरी प्रक्रिया धारणा की होती है जो अधिगम या स्थिरीकरण की अगली प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में कूटसंकेतन की सामग्री या सूचनाएं स्मृति भण्डारण में एकत्रित हो जाती है। इसी प्रक्रिया को हम स्मृति भण्डारण या धारणा कहते हैं। जैसे कोई क्रिया या प्रक्रिया हम सीखते हैं या किसी दृश्य को देखते हैं, कोई संगीत सुनते हैं तो ये बातें हमें याद रहती हैं। जब हम इस प्रकार को सूचनाओं या अनुभवों को एकत्र कर लेते हैं तो इनका स्वरूप धारणा के रूप में बना रहता है। यही धारणा मस्तिष्क की स्मरण क्षमता कहलाती है। धारणा की प्रक्रिया अधिगम के तुरंत बाद प्रारंभ हो जाती है।

धारणा एक मनोशारीरिक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में शारीरिक रूप से मस्तिष्क के अग्रखण्ड (Frontal lobe) और पश्च–खण्ड (Occipital lobe) की बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इस बात की पुष्टि फ्रांज तथा लेश्लै जैसे शरीर शास्त्रियों की है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने भी धारणा के सम्बंध में विचार प्रस्तुत किये हैं। बैण्टले और उनके साथियों के अनुसार व्यक्ति जो कुछ भी सीखता है या सूचनाएं प्राप्त करता है तो उसके मस्तिष्क में स्मृति चिह्न (Memory traces) बन जाते हैं। ये चिह्न ही क्रियात्मक स्वरूप स्मृति है। मस्तिष्क से ये चिह्न जब लुप्त हो जाते हैं तो व्यक्ति सीखी हुई बातें या प्राप्त सूचनाओं को भूल जाता है।

कई मनोवैज्ञानिकों का यह विचार है कि धारणा शरीरिक प्रक्रिया न होकर एक मानसिक प्रक्रिया है। बार्टलेट एवं गिब्सन जैसे मनोवैज्ञानिकों के अनुसार धारणा अभिरूचि, प्रेरणाशक्ति एवं सांवेगिक अवस्थाओं पर निर्भर करती हैं। चूंकि इन अवस्थाओं का स्वरूप मानसिक है अतः धारणा प्रक्रिया भी मानसिक प्रक्रिया है।

मनोविश्लेषणवादी भी धारणा प्रक्रिया स्वरूप में इसे शारीरिक प्रक्रिया न मानकर मानसिक प्रक्रिया ही मानते हैं। इनके अनुसार किसी भी सीखी हुई प्रक्रिया या अर्जित अनुभवों को भुलाया नहीं जा सकता और धारणा समाप्त नहीं होती अपितु स्मृति चिह्न जब अचेतन मस्तिष्क या मन में चले जाते हैं तो विस्मृति होती है और इसे विस्मरण कहते हैं। इसका प्रमाण मनोविश्लेषणवादी इस बात से देते हैं कि हम विस्मृत विषय को सम्मोहन द्वारा पुनः स्मृति पटल पर ला सकते हैं।

उपरोक्त दोनों प्रकार की बातों से यह स्पष्ट होता है कि धारणा न केवल शारीरिक और मानसिक प्रक्रिया है बल्कि ये एक दूसरे की पूरक प्रक्रियाएं भी हैं। अतः यह मनोशारीरिक (Psycho-somatic) पूरक प्रक्रिया है।

धारणा को प्रभावित करने वाले कारक (Factors affecting retention)

धारणा को प्रभावित करने वाले मुख्य रूप से तीन कारक हैं–

i व्यक्ति से सम्बन्धित कारक (factors related to individual)

ii. विषयवस्तु सम्बन्धित क्रिया कारक(factors related to object)

iii. अधिगम सम्बन्धित कारक(factors related to learning)

i. **व्यक्ति से सम्बन्धित कारक (factors related to individual)–** इस प्रकार के कारकों में वे सभी कारक आते हैं जो स्मरण करने वाले व्यक्ति से सम्बंधित हैं, जैसे–आयु, लिंग, शारीरिक दशा, मानसिक दशा, अनुभव, रूचियां, अभिरूचियां, सांवेगिक स्थिति, बुद्धि और परिपक्वता आदिकारक महत्त्वपूर्ण हैं।

ii. **विषयवस्तु सम्बन्धित क्रिया कारक (factors related to object)–** इस प्रकार के कारकों में स्मरण के विषयवस्तु का स्वरूप, विषयवस्तु की सरलता, विषयवस्तु की कठिनाई आदि कारक आते हैं।

iii . **अधिगम सम्बन्धित कारक (factors related to learning)–** इस प्रकार के कारकों में सीखने की व्यवस्था, विधियां, क्रियाएं और प्रक्रियाएं आदि कारक आते हैं।

3. पुनःस्मरण या प्रत्याह्वान (Recall or Retrieval)

स्मृति या स्मरण क्रिया में पुनःस्मरण या प्रत्यावाहन तीसरी प्रक्रिया है। इस क्रिया में मस्तिष्क में स्थिर अधिगमों या अनुभवों को पुनः चेतना स्तर पर लाया जाता है। इस प्रक्रिया को पुनरुत्पादन (Reproduction) के रूप में जाना जाता है।

पुनःस्मरण की इंग्लिश तथा इंग्लिश की परिभाषा डॉ. एस.एन. शर्मा ने अपने शब्दों में इस प्रकार व्यक्त की है, ''वह प्रक्रिया जिसके द्वारा हम पूर्व अनुभवों की प्रतिमा उसके प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत करते हैं, उसे पुनः स्मरण कहते हैं।''[1]

पुनःस्मरण (Recall) के उदाहरण में हम यह कह सकते हैं कि पूर्व में किसी पढ़ी हुई कहानी को पुनः चेतना स्तर पर लाकर दूसरों को सुनाना या स्वयं के द्वारा ही पुनः उसका स्मरण करना। विद्यार्थी परीक्षा कक्ष में परीक्षा देते समय अपने पूर्व अध्ययन को पुनः स्मरण करते हुए उत्तर पुस्तिका में लिखता है। विद्यार्थी का पूर्व अध्ययन उसकी धारणा की प्रक्रिया है जिसे वह पुनः अपनी चेतना के स्तर पर लाता है। अतः पुनः स्मरण प्रक्रिया धारणा पर निर्भर होती है। धारणा ही सूचनाओं या अधिगम का भण्डारण है और उसी के आधार पर पुनः स्मरण या प्रत्याह्वान की प्रक्रिया होती है।

पुनःस्मरण धारणा पर निर्भर होते हुए भी धारणा से निश्चित नहीं होता। धारणा के अच्छा होने पर प्रत्याह्वान या पुनः स्मरण भी अच्छा हो यह आवश्यक नहीं है। प्रत्याह्वान

प्रक्रिया में पहले याद किये या देखे गये तथ्यों को ज्यों का त्यों उपस्थित कर देना प्रायः सम्भव नहीं होता। स्मरण करने वाला व्यक्ति से उसमें कुछ हेरफेर अवश्य ही हो जाता है। कभी–कभी वह तथ्यों को ज्यों का त्यों प्रस्तुत कर देता है। इन्हीं आधारों पर प्रत्यास्मरण दो प्रकार से हो सकता है– **1 पुनरूत्पादक (Reproductive recall) 2 रचनात्मक प्रत्यास्मरण (Creative recall)**–में स्मरण करने वाला तथ्यों में अपनी ओर से कुछ हेरफेर कर देता है। प्रत्यास्मरण में शब्दशः पुनरुत्पादन बहुत ही कम मिलता है कहीं कोई अपवाद हो सकता है। बार्ट लेट और उसके साथियों ने कई प्रयोगों से परिणाम निकाला है कि स्मृति प्रक्रिया में प्रत्यास्मरण पुनरुत्पादक न होकर रचनात्मक होता है।

लेविस, क्रॉसलैण्ड तथा हण्डरसंग ने भी इसी प्रकार के विचार प्रत्यास्मरण के बारे में व्यक्त किए हैं। उनके अनुसार पुनः स्मरण चार प्रकार का होता है–

1. प्रत्यक्ष पुनः स्मरण (Direct recall)–जब व्यक्ति बिना किसी सहायता या संकेत के अपने पूर्व अनुभव चेतना पर ले आता है और उसको उनका पुनः स्मरण हो आता है तब उसे प्रत्यक्ष पुनःस्मरण कहा जाता है।

2. अप्रत्यक्ष पुनःस्मरण (Indirect recall)–इस प्रकार के पुनः स्मरण में व्यक्ति किसी संकेत की सहायता से अपने पूर्व अनुभवों को चेतना के स्तर पर ले आता है तब उसे अप्रत्यक्ष पुनः स्मरण कहते हैं।

3. प्रयासपूर्ण पुनःस्मरण (Deliberate recall)–जब व्यक्ति अपने अनुभवों, घटनाओं अथवा तथ्यों को प्रयास या बल पूर्वक चेतना के स्तर पर लाकर स्मरण करता है तब उसे प्रयास पूर्ण पुनः स्मरण कहा जाता है।

4. स्वतः पुनः स्मरण (Spontaneous recall)–जब घटना, अनुभव अथवा तथ्य बिना किसी प्रयास या सहायता के चेतना स्तर पर स्वतः आ जाती है तो इसे स्वतः पुनः स्मरण कहा जाता है।

4. प्रत्यभिज्ञा (Recognition)

प्रत्यभिज्ञा स्मृति क्रिया का चतुर्थ तत्व या पद है अर्थात् प्रत्यस्मरण प्रक्रिया के बाद स्मरण क्रिया में प्रत्यभिज्ञा की प्रक्रिया होती है। प्रत्यभिज्ञा का शाब्दिक अर्थ है पुनः जाना जाना या पहचाना जाना। अतः प्रत्यभिज्ञा पहचान की क्रिया है। स्मृति क्रिया में पहचान की क्रिया के आधार पर पुनः स्मरण के अनुभवों को सही रूप से चेतना स्तर पर लाया जाता है और यही क्रिया प्रत्यभिज्ञा कहलाती है। पुनः स्मरण तथा प्रत्यभिज्ञा में मुख्य अन्तर यह है कि पुनः स्मरण में वस्तु उपस्थित नहीं रहती जबकि पहचान में या प्रत्यभिज्ञा क्रिया में पहचानी जाने वाली वस्तु उपस्थित रहती है अर्थात् प्रत्यभिज्ञा में वस्तुओं के साथ पूर्ण पहचान होती है। प्रत्यभिज्ञा पुनः स्मरण की अपेक्षा सरल होती है। किसी घटना को या व्यक्ति को सरलता से पहचाना जा सकता है किंतु उसका पुनः स्मरण कठिन हो सकता है उदहारण के लिए जैसे किसी गद्य या पद्य की पंक्तियों को हम भूल जाते हैं और समय पर पुनः स्मरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत याद नहीं आ पाती किंतु उन पंक्तियों के सामने आने पर हम उन्हें तत्काल पहचान लेते हैं और समझ जाते

हैं कि इन्हीं पंक्तियों को हमने याद किया पुनः स्मरण था। प्रत्यभिज्ञा और पर समय के मध्यांतर का बढ़ा प्रभाव पड़ता है। जैसे–जैसे समय बीतता जाता है किसी वस्तु की पहचान का भी ह्रास होता जाता है परन्तु इससे भी कहीं अधिक ह्रास पुनः स्मरण की प्रक्रिया में होता है। अतः समय अन्तराल का प्रभाव प्रत्यभिज्ञा अथवा पहचान की प्रक्रिया की अपेक्षाकृत पुनः स्मरण पर भी पड़ता है। प्रत्यभिज्ञा दो प्रकार से होती है।

1. **अनिश्चित प्रत्यभिज्ञा (Indefinite recognition)**–इसके अन्तर्गत व्यक्ति जब किसी घटना या तथ्य को पूर्ण विवरण के साथ चेतन पटल पर न पहचान पाए तो इस प्रकार की प्रक्रिया को अनिश्चित प्रत्यभिज्ञा या अनिश्चित पहचान कहते हैं।

2. **निश्चित प्रत्यभिज्ञा (Definite recognition)**–व्यक्ति जब किसी घटना अथवा तथ्य को पूर्ण विवरण के साथ चेतना स्तर या पटल पर लाकर पहचान ले तो इस प्रकार की प्रक्रिया को निश्चित प्रत्यभिज्ञा या निश्चित पहचान कहते हैं।

3.

14.7 स्मृति प्रक्रिया को उत्तम बनाने के लिए कुछ अनुकूल दशाएं

स्मृति प्रक्रिया को उत्तम बनाने के लिए पूर्वोक्त चारों तत्त्वों का अनुकूल होना अति आवश्यक है। अर्थात् अधिगम या स्थिरीकरण उत्तम प्रकार का हो, उत्तम धारण शक्ति हो, पुनः स्मरण शीघ्र हो और प्रत्यभिज्ञा शीघ्र एवं स्पष्ट हों। इन अनुकूल दशाओं का संक्षेप में आगे वर्णन कर रहे हैं–

1. अनुकूल अधिगम विधि–

यदि अधिगम या सूचनाओं का कूट संकेतन (Encoding) उचित विधि के आधार पर है तो विषय वस्तु का या घटना का ज्ञान अच्छी स्मृति की ओर ले जा सकता है। अच्छी स्मृति बनाए रखने के लिए अधिगम की कौन–सी विधि उत्तम एवं उपयोगी होगी? इस विषय वस्तु को देखते हुए इसका चयन करना चाहिए।

2. धारणा में अनुकूल दशाएं–

उत्तम धारण शक्ति के लिए विषय वस्तु या सामग्री का स्वरूप, सीखने की मात्रा, सीखने या अधिगम की गति, अधिगम की विधियां, व्यक्ति का ध्यान, व्यक्ति कीअनुभूतियां, निद्रा, मानसिक तत्परता, मानसिक समीक्षा और व्यक्ति का व्यापक अनुभव बहुत सहयोगी है। अच्छी स्मृति इस बात पर भी निर्भर करती है कि व्यक्ति में किसी विषय वस्तु के अनुभवों को धारण करने की क्षमता कितनी अच्छी है। उत्तम धारण शक्ति वाले व्यक्ति की स्मृति क्षमता अच्छी होगी।

3 पुनः स्मरण क्षमता

पुनः स्मरण का शीघ्रता से होना उत्तम स्मृति का तीसरा लक्षण है। जब व्यक्ति किसी सीखी हुई विषय वस्तु को शीघ्र ही दुहरा देता है तो ऐसे व्यक्ति उत्तम स्मृति वाला कहा जाएगा।

4 प्रत्यभिज्ञा शीघ्र एवं स्पष्ट हों

स्पष्ट एवं शीघ्र पहचान भी उत्तम स्मृति के लक्षणों में से है। याद की गई किसी वस्तु के लिए पुनः स्मरण आवश्यक तो है ही साथ ही साथ शीघ्र एवं स्पष्ट पहचान भी होनी आवश्यक है। यह योग्यता जितनी अधिक होगी स्मृति क्षमता उतनी ही अधिक होगी।

14.8 स्मृति का प्रशिक्षण

अच्छी स्मृति वाले व्यक्ति अपनी क्रियाओं को एवं अपने कार्यों को अच्छे ढंग से कर सकते हैं। क्षीण स्मृति वाले व्यक्ति जीवन में कई जगह हानि उठाते हैं। अच्छी स्मृति वाले विद्यार्थी कक्षाओं एवं परीक्षाओं में अग्रणी रहते हैं जबकि क्षीण स्मृति वाले विद्यार्थी प्रायः असफल होते हैं। मनोवैज्ञानिकों ने इस बात के कई परीक्षण किये हैं कि अनुभव को स्मृति में अधिक समय तक और अधिक स्पष्ट रूप से रखा जा सकता है। स्मृति को उन्नत बनाने के लिए कई प्रकार की विधियों का प्रयोग किया जा सकता है। स्मृति भी एक मानसिक क्षमता है और अन्य मानसिक क्षमताओं की भांति इसका भी विकास संभव है। एबर्ट (Ebert) और म्यूमन (Meumann) ने स्मृति प्रशिक्षण के लिए कई प्रयोग किये और उन्होंने पाया कि व्यक्ति के कौशल में सुधार करने से स्मृति में उन्नति होती है। स्मृति का विकास करने के लिए या उसको उन्नत बनाने के लिए निम्न विधियों या साधनों का उपयोग किया जा सकता है–

1. स्मरण करने की इच्छा (Desire to memorise)

स्मृति क्षमता के विकास में व्यक्ति की इच्छा एक मुख्य कारक है। व्यक्ति में किसी विषय वस्तु की स्मृति रखने की इच्छा कहां तक है। व्यक्ति में स्मृति क्षमता बनाये रखने की इच्छा जितनी प्रबल होगी उतना ही अधिगम, कूटसंकेतन (Encoding), धारणा, प्रत्याह्वान एवं प्रत्यभिज्ञा अच्छी होगी। यदि इच्छा नहीं है या क्षीण इच्छा है तो सब कुछ विस्मृत हो जायेगा। अतः स्मृति को प्रशिक्षित करने का यह एक उपाय है कि व्यक्ति जो कुछ भी याद करे या विषय वस्तु का अनुभव करे तो उसे स्मृति में रखने की प्रबल इच्छा करे। विद्यार्थियों के लिए यह बात विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध हो सकती है। उनको अपनी विषय वस्तु को यह दृढ़ इच्छा रखते हुए कि मुझे इसको याद रखना है, स्मृति में डालना चाहिए।

2. रूचि (Intrest)

किसी विषय वस्तु का अधिगम करने में व्यक्ति की कितनी रूचि है यह बात भी स्मृति को प्रभावित करती है।

3. प्रतिमाएं (Images)

स्मृति के विकास के प्रशिक्षण में प्रतिमाओं का भी विशेष महत्त्व है क्योंकि प्रतिमाओं के कारण ही प्रत्यावाहन सरलता से संभव हो पाता है।

4. पूर्व अनुभवों का उपभोग (Use of Previous Experiences)

जिस विषय को हम स्मृति में रखना चाहें या याद रखना चाहें उनको अपने पूर्व अनुभवों से किसी न किसी प्रकार जोड़ लें। पूर्व अनुभवों के साथ नवीन सीखे हुए अनुभवों का संबंध जोड़ दिया जाता है तो ये अनुभव स्मृति में दीर्घकाल तक टिके रहते हैं।

5. साहचर्य विधि का उपभोग (Use of association method)

इस विधि में सीखी हुई विषय वस्तुओं का ज्ञान या प्राप्त सूचनाओं को किसी विशेष प्रतिकों, प्रतिमाओं या अन्य अनुभवों के साथ जोड़ दिया जाता है। इससे स्मरण के समय प्रत्यावाहन की प्रक्रिया में सरलता रहती है।

6. विषय वस्तु को समझना (Understanding the subject)

जिस किसी चीज को हमें याद रखना है उसकी प्रक्रिया को या अर्थ को पूरी तरह समझ लेना चाहिए। समझ कर स्मरण भण्डारण में भण्डारित की गई की सूचनाएं या विषय वस्तु के अनुभव लंबे समय तक टिके रहते हैं। यह एक दीर्घकालिक स्मृति (Long Term Memory) बन जाती है। विद्यार्थियों के लिए रटकर (त्वजजपदह) याद करने की विधि की अपेक्षा विषय वस्तु को समझकर याद करने की विधि ज्यादा लाभदायक रहती है। क्योंकि समझकर याद की गई विधि से स्मरण या स्मृति ठोस एवं लंबे समय तक बनी रहती है।

7. अंश विधि (Part- method)

किसी बड़े विषय को याद करने के लिए उस विषय को छोटे–छोटे अंशों या विषयों में बांट लेना चाहिए। इन छोटे–छोटे अंशों को याद कर बड़े विषय या सम्पूर्ण विषयों को याद किया जा सकता है। जैसे किसी विषय के पाठ को याद करना है तो उसे कई बिन्दुओं में विभक्त किया जा सकता है और इन बिन्दुओं या अंशों के आधार सम्पूर्ण पाठ को याद किया जा सकता है।

8. पश्चावरोधक को रोककर (By checking retroactive inhibition)

अधिगम में बाधक कारण पाश्चावरोधक भी है। अधिगम स्मृति का पहला चरण है अतः अच्छी स्मृति के लिए पश्चावरोधक के कारणों को रोकना चाहिए।

उपरोक्त साधनों के अतिरिक्त भी कुछ और भी साधनों को काम में लिया जा सकता है, जैसे लयबद्ध किसी विषयवस्तु को याद करना विशेषकर कविता आदि के स्मरण के लिए। किसी पाठ को या शब्दों को उच्च स्वर से पढ़ना। किसी विषयवस्तु की समय–समय पर मानसिक समीक्षा करना। इन उपायों से भी स्मरणशक्ति दृढ़ होती है।

14.9 मानसिक स्थिरता एवं स्मरण

स्मृति या स्मरण की प्रक्रिया को अच्छे ढंग से उपयोग में लाने के लिए मानसिक स्थिरता एवं तनावमुक्त होना बहुत ही आवश्यक है। इससे कूटसंकेतन एवं धारणा की प्रक्रिया सही होती है और स्मरण क्षमता बढ़ती है। मानसिक स्थिरता को बनाए रखने के

लिए ध्यानयोग की कुछ विधियां बड़ी लाभकारी होती हैं। आगे हम कुछ विधियों का संक्षेप में वर्णन कर रहे हैं।

14.9.1 स्मृति एवं ध्यान–योग

स्मरण क्षमता को बढ़ाने के लिए योग भी बड़ा उपयोगी साधन है। कई शोधकार्यों से यह सिद्ध हो गया है कि ध्यान–योग के द्वारा मानसिक चंचलता को शांत किया जा सकता है और मानसिक एकाग्रता द्वारा अच्छा अधिगम (Learning) किया जा सकता है। कई योग विधियां, आसन एवं योग क्रियाएं स्मृति क्षमता को बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुए हैं। शीर्ष आसन,खेचरी मुद्रा एवं ज्ञान मुद्रा स्मृति क्षमता को बढ़ाने में बहुत उपयोगी हैं।

स्मृति क्षमता के विकास में महर्षि महेश योगी द्वारा प्रदत्त भावातीत ध्यान बहुत ही महत्वपूर्ण एवं उपयोगी ध्यान की विधि है। कई शोधकार्यों से यह सिद्ध हुआ है कि भावातीत ध्यान के नियमित अभ्यास से स्मृति का विकास होता है।

14.9.2 प्राणायाम एवं स्मृति

प्राणायाम का नियमित अभ्यास स्मृति क्षमता विकास में बहुत उपयोगी है। प्राणायाम क्रिया से प्राणवायु मस्तिष्क तक वेग से पहुंचती है और मस्तिष्क के तंतुओं को सक्रिय बनाए रखती है। इनके अतिरिक्त प्राणायाम फैंफड़ों की कोशिकाओं को दृढ़ एवं लचिला बनाता है। प्राणायाम किसी अनुभवी आचार्य की देखरेख में ही करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

1. स्मरण क्रिया में मुख्य प्रक्रियाएं होती हैं–

   (क) तीन (ख) दो (ग) चार(घ) पांच

2. स्मृति को कितने वर्गों में रखा गया है–

   (क) तीन (ख) चार (ग) पांच (घ) छः

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. स्मृति क्या है?
2. अल्पकालिक स्मृति क्या है?
3. सांवदिक स्मृति क्या है?
4. स्मृति की कोई दो परिभाषाएं दीजिये।
5. प्रत्याह्वान का क्या अर्थ है?

14.10 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह समझ होगें हैं कि स्मृति क्या है इसका स्वरूप

क्या है? इनके अतिरिक्त आप स्मृति की परिभाषाओं को भी समझ गये होगें । स्मरण की प्रक्रियाएं, स्मृति प्रक्रिया को उत्तम बनाने के लिए कुछ अनुकूल दशाएं एवं स्मरण के तत्त्वों को भी इस इकाई में भली प्रकार से समझाया गया है जिनको आप समझ गये हैं। स्मृति का विकास करने के लिए उपयोग में आने वाली विधियों या साधनों आप पढ़ चुके हैं। इनके अतिरिक्त आप स्मृति का प्रशिक्षण, मानसिक स्थिरता एवं स्मरण आदि के बारें में भी इस इकाई के माध्यम द्वारा ज्ञान अर्जित कर चुके हैं। ध्यान, योग एवं प्राणायाम द्वारा स्मृति का विकास किस प्रकार सम्भव है इसका भी वैज्ञानिक आधार इस इकाई में विस्तार से समझाया गया है जिसे आप समझ गये हैं

14.11 संदर्भ ग्रन्थ सूचीः

Gaur B. P., Personality and Transcendental Meditation, *A Jainsons Publication (1994),* East of Kailash, New Delhi

शर्मा, एस.एन. आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान (1990-91), *हरप्रसाद भार्गव, 4/230 कचहरी घाट,* आगरा।

वर्मा प्रीति एवं श्रीवास्तव डी.एन. आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान (2001), *विनोद पुस्तक मन्दिर,* आगरा।

अरूण कुमार सिंह, संज्ञानात्मक मनोविज्ञान (2002), *मोतीलाल बनारसीदास* बंगलो रोड दिल्ली।

14.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. स्मृति की प्रक्रियाओं को समझाइये।
2. दीर्घकालिक स्मृति क्या है?
3. स्मृति क्षमता बढ़ाने के उपायों को समझाइये।
4. ध्यान एवं योग से स्मृति का विकास किस तरह सम्भव है? समझाइये।

इकाई – 15 मानसिक तनाव – लक्षण, कारण एवं योग समाधान

इकाई की संरचना

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 तनाव क्या है

15.4 परिभाषायें

15.5 तनाव के प्रकार

15.6 तनाव के कारण

15.7 लक्षण

15.8 योग समाधान

15.9 सारांश

15.10 शब्दावली

15.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

15.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

15.13 निबंधात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना–

प्रिय पाठकों, जैसा कि आप सभी जानते हैं कि वर्तमान यांत्रिक भौतिक जीवन शैली में तनाव प्रत्येक व्यक्ति की जिन्दगी में विष की तरह घुल चुका है। इस दुनिया में एक भी ऐसा व्यक्ति ढूँढना मुश्किल है जिसने अपनी जिन्दगी के किसी न किसी मोड़ पर तनाव का अनुभव ना किया है। आप समूचे विश्व में तनाव एक बहुत बड़ी मानसिक समस्या के रूप में उभरकर सामने आ रहा है। प्रायः जितनी प्रकार की भी शारीरिक एवं मानसिक बीमारियाँ है, उनके मूल कारण के रूप में तनाव ही माना जा रहा है। वैज्ञानिकों ने हृदय रोगों और कैंसर तक में तनाव की भूमिका को स्वीकार किया है। पाठकों, आप सोच रहे होंगे कि यह तनाव वस्तुतः क्या है? किस प्रकार से होता है तथा इसका प्रबंधन करने का क्या कोई उपाय हैं तो आइये, आपके इन्हीं प्रश्नों के समाधान के लिये चर्चा करते है। तनाव के स्वरूप एवं इसके समाधान पर।

15.2 उद्देश्य–

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत ईकाई के अध्ययन के उपरान्त आप–

1. तनाव के स्वरूप को स्पष्ट कर सकेंगे।
2. तनाव के कारणों का वर्णन कर सकेंगे।
3. तनाव के लक्षणों का विवेचन कर सकेंगे।
4. तनाव के यौगिक समाधान का विश्लेषण कर सकेंगे।

15.3 तनाव क्या है

पाठकों, तनाव के अर्थ को मनोवैज्ञानिकों ने भिन्न–भिन्न प्रकार से स्पष्ट किया है। वस्तुतः तनाव एक मानसिक रोग न होकर मानसिक रोगों का मूल कारण है।

तनाव को यदि हम कुछ सटीक शब्दों में स्पष्ट करना चाहें तो कह सकते हैं कि मनःस्थिति एवं परिस्थिति के बीच संतुलन का अभाव ही तनाव की आवस्था है। कहने का तात्पर्य यह है कि जब व्यक्ति के सामने कोई ऐसी समस्या या परिस्थिति आ जाती है। जब उसे लगे कि यह समस्या या परिस्थिति उसकी क्षमताओं के नियंत्रण से बाहर है अर्थात् उस परेशानी परिस्थिति से निपटने में उसकी सामर्थ्य कम पड़ रहीं है। स्वयं को निर्बल एवं असमर्थ पा रही है तो व्यक्ति तनावग्रस्त हो जाता है।

तो पाठकों, इस प्रकार हम कह सकते हैं कि व्यक्ति के शरीर एवं मन को समय–समय पर मिलने वाली चुनौतियाँ, जिनका सामना करने में वह स्वयं को असहाय एवं असमर्थ मानता है। उसमें तनाव को जन्म देता है।

15.4 परिभाषायें–

पाठकों, विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई तनाव की अनेक परिभाषायें निम्नानुसार हैं–

1. ''तनाव एक ऐसी बहुआयामी प्रक्रिया है जो हम लोग में वैसी घटनाओं के प्रति अनुक्रियाओं के रूप में उत्पन्न होती है, जो हमारे दैहिक एवं मनोवैज्ञानिक कार्यो को विघटित करता है या विघटित करने की धमकी देता है।''

(बेरोन : साइकोलॉजी, 1992, पृ.सं.443)

2. ''हम लोग तनाव को एक आन्तरिक अवस्था के रूप में परिभाषित करते हैं, जो शरीर की दैहिक माँगों (बीमारी की अवस्थायें, व्यायाम, अत्यधिक तापक्रम इत्यादि) या वैसे पर्यावरणी एवं सामाजिक परिस्थितियाँ जिसे सचमुच में हानिकारक, अनियंत्रण योग्य तथा निबटने के मौजूद साधनों को चुनौती देने वाला के रूप में मूल्यांकित किया जाता है। से उत्पन्न होता है।''

(मॉर्गन, किंग, विस्ज एवं स्कौपलन, इन्ट्रोडक्शन टू साइकोलॉजी, 1986, पृ.321)

3. ''तनाव से तात्पर्य शरीर द्वारा आवश्यकतानुसार किये गये अविशिष्ट अनुक्रिया से होता है।''

(हेन्स शैली : द स्ट्रेस ऑफ लाइफ, 1979 पृ. 40)

परिभाषाओं का विश्लेषण या तनाव की प्रमुख विशेषतायें–

पाठकों, यदि हम तनाव की विभिन्न परिभाषाओं का विश्लेषण करें तो इसकी निम्न प्रमुख विशेषतायें सामने आती हैं–

1. तनाव एक अनुक्रिया है।
2. तनाव उत्पन्न होने के अनेक कारण हो सकते हैं। अतः यह एक बहुआयामी प्रक्रिया है।
3. तनाव में परिस्थितियाँ व्यक्ति के नियंत्रण से बाहर होती है।
4. तनाव उत्पन्न होने पर व्यक्ति को शारीरिक एवं मानसिक दोनों प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

5. तनाव की स्थिति की कोई निश्चित समयाविधि नहीं है। यह थोड़े समय के लिये भी रह सकता है और लम्बे समय तक भी। यह इस बात पर निर्भर करता है कि तनाव किस कारण से उत्पन्न हुआ है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि तनाव एक ऐसी बहुआयामी प्रक्रिया है, जो तनाव उत्पन्न करने वाली घटना होती है, जिससे व्यक्ति के न केवल शारीरिक वरन् मानसिक कार्य भी विघटित हो जाते हैं।

15.5 तनाव के प्रकार

तनाव के मुख्यतः दो भेद किये जा सकते हैं –

(अ) सकारात्मक तनाव
(ब) नकारात्मक तनाव

(अ) सकारात्मक तनाव –

इस तनाव की स्थिति में व्यक्ति तनावजनक घटना से परेशासन एवं चिन्तित नहीं होता वरन् साधन के साथ उसका सामना करने के लिये उठ खड़ा होता है तथा उस परिस्थिति को एक चुनौती के रूप में लेता है, जिससे तनाव के क्षणों का भी वह सदुपयोग कर पाता है। उसकी सोच सकारात्मक बनी रहती है तथा वह अपेक्षाकृत अधिक सजग एवं जागरूक होकर अपने क्षमताओं के बलबूते उस घटना से निपटता है। इस प्रकार सकारात्मक तनाव की सिंिति में व्यक्ति कार्य करने के लिये सामान्य से अधिक सक्रिय हो जाता है।

(ब) नकारात्मक तनाव –

यह सकारात्मक तनाव के ठीक विपरीत है। इसमें व्यक्ति का दृष्टिकोण उसका नजरिया नकारात्मक हो जाता है। नकारात्मक सोने के कारण वह तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थिति से निपटने में स्वयं को असमर्थ और असहाय पाता है जिससे उसमें दुश्चिन्ता उत्पन्न होने की संभावना बढ़ जाती है।

15.6 तनाव के कारण –

व्यक्ति में किन–किन कारकों से तनाव उत्पन्न होता है, इस विषय पर मनोवैज्ञानिकों द्वारा अत्यधिक गहन अध्ययन किया गया। इस अध्ययन के आधार पर तनाव उत्पन्न करने वाले प्रमुख कारक निम्न हैं –

1. **जीवन की तनावपूर्ण घटनायें**
2. **अत्यधिक प्रतिस्पर्धा युक्त जीवन**
3. **सकारात्मक दृष्टकोण का अभाव**
4. **समय प्रबन्धन की कमी**

5. **अपनी क्षमताओं का ठीक–ठीक मूल्यांकन न कर पाना।**
6. **दूसरों पर निर्भर रहने की आदत।**
7. **स्वार्थ एवं अहंकार की भावना।**
8. **भगवान पर श्रद्धा एवं विश्वास न होना।**
9. **भाव संवेदनाओं की कमी।**
10. **आत्मसम्मान एवं आत्मविश्वास का अभाव।**

इन कारकों का विवेचन निम्नानुसार है –

1. जीवन की तनावपूर्ण घटनायें –

व्यक्ति की दिन – प्रतिदनि की उलझनें तथा जिन्दगी में दुःखद घटनाओं का घटित होना तनाव का एक प्रमुख कारण है।

2. अत्यधिक प्रतिस्पर्द्धा युक्त जीवन –

आधुनिक भौतिकवादी जीवन शैली ने व्यक्तियों में पैसा और नाम कमाने की होड़ को अत्यधिक बढ़ावा दिया है जिसके कारण उसमें दूसरों के साथ प्रतिस्पर्द्धा एवं ईर्ष्या की गलत भावना बढ़ती ही जा रही है। परिणामस्वरूप व्यक्ति अपने दुःख के कम दुःखी और दूसरों के दसुख से स्व्यं अधिक तनावग्रस्त रहने लगा है।

3. सकारात्मक दृष्टिकोण का अभाव –

आज का व्यक्ति आत्मबल एवं प्राणशक्ति की दृष्टि से अत्यधिक दुर्बल हो गया है, जिसके कारण जब उसके सामने कोई भी समस्या आती है तो वह बहुत जल्दी हैरान–परेशान हो जाता है और विवेकपूर्ण ढंग से न सोच पाने के कारण उसमें नकारात्मक विचार उत्पन्न होने लगते हैं।

परिणामस्वरूप वह कुछ प्रयास करने से पहले ही स्वयं को असमर्थ महसूस कर परिस्थितियों के सामने अपने हथियार डाल देता है।

4. समय प्रबन्धन का अभाव –

वर्तमान समय में तनाव को उत्पन्न करने वाला एक प्रमुख कारक समय की कीमत को न पहचानना है। व्यक्ति अपनी आलस्य की प्रबृद्धि के कारण समय रहते काम नहीं पूरा करता और जब परिस्थिति उसके नियंत्रण से बाहर हो जाती है तो वह तनावग्रस्त हो जाता है। अतः समय प्रबंधन का प्रभाव भी तनाव का एक प्रमुख कारण है।

5. अपनी क्षमताओं का ठीक–ठीक मूल्यांकन न कर पाना –

आज की भागदौड़ की जिन्दगी में प्रयः अधिकांश व्यक्तियों के पास स्वंय के लिये सुकून के दो पल भी नहीं है, जिसमें शांति से बैठकर वह स्वयं के बारे में गहराई से सोच सके। व्यक्ति को यह ही नहीं मालूम होता कि वह क्या–क्या कर सकता है और उसमें क्या–क्या कमियां हैं, जिससे कि वह स्वयं का सुधार कर सके। अतः आत्म–मूल्यांकन का अभाव भी तनाव का एक प्रमुख कारण है।

6. दूसरों पर निर्भर रहने की आदत –

जीवन में तनावयुक्त एवं खुश रहने का सबसे अच्छा उपाय है – आत्म निर्भर रहना एवं दूसरों से किसी भी प्रकार की अच्छा करने या होने की अपेक्षा न करना लेकिन यथार्थ जिन्दगी में ऐसा हो नहीं पाता। आज व्यक्तियों पर स्वयं पर कम और अपने काम के लिये दूसरों पर निर्भर होने की प्रबृद्धि बढ़ती जा रही है। अतः जब दूसरों से अपनी अपेक्षा के अनुरूप परिणाम प्राप्त नहीं होता है तो व्यक्ति तनावग्रस्त हो जाता है।

7. स्वार्थ एवं अहंकार की भावना –

वर्तमान समय में व्यक्तियों में बढ़ती हुयी स्वार्थ एवं अहंकार की भावना ने भी तनाव को बढ़ावा दिया है।

8. भगवान् पर श्रद्धा एवं विश्वास न होना –

आज व्यक्ति प्रत्येक कार्य एवं घटना के लिये कर्ता स्वयं को ही मानता है। अतः इसके कारण एक तो उसमें अहंकार एवं कर्त्तापन का भाव बढ़ता जा रहा है, दूसरी ओर वह उस सवर्वोच्च परमात्यसत्ता पर विश्वास ही नहीं करता है। अतः जैसे ही कोई भी विपरीत परिस्थिति उसके सामने आती है तो इसका दोषारोपण या तो दूसरों पर या स्वयं पर करता है और उसमें इतनी सहनशक्ति होती नहीं है कि वह उस घटना के दबाव को झेल पाये। परिणामस्वरूप तनाव उत्पन्न हो जाता है।

9. आत्म संवेदनाओं की कमी –

वर्तमान भौतिकवादी युग में व्यक्ति सुबह से लेकर रातभार तक पैसे और नाम की अन्धी दौड़ में एक मशीन की भांति काम कर रहा है। ये धन की अन्धी दौड़ पता नहीं उसे कहां लेकर जायेगी। परिणामस्वरूप व्यक्ति इतना स्वार्थी हो गया है कि स्वयं के हित के लिये वह किसी भी हद तक जाकर दूसरों की खुशियों का गला घोंट सकता है, क्योंकि इसमें इतनी संवेदना ही नहीं रह गयी है कि वह अपने या दूसरों के भांवों को समझकर उन संवेदनाओं का सम्मान कर सकें। परिणामतः स्वयं भी तनावग्रस्त रहता है और दूसरों के लिये भी तनाव का कारण बनता है।

10. आत्मसम्मान एवं आत्मविश्वास का अभाव –

जब व्यक्ति में स्वयं के प्रति अर्थात अपने अस्तित्व के प्रति सम्मान का भाव नहीं होता तथा विश्वास की कमी होती हे तो वह तनावग्रस्त रहात है।

तो प्रिय पाठकों, स्पष्ट है कि तनाव के अनेक कारण है।

15.7 लक्षण –

पाठकों जैसा कि आप जानते हैं कि तनाव के दौरान व्यक्ति में दैहिक एवं मानसिक दोनों ही प्रकार का विघटन होता है अर्थात् इसमें न केवल शरीर वरन् मन भी बुरी तरह प्रभावित

हो जाता है। अतः तनाव के लक्षणों का विवेचन निम्न दो बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है –

(क) शारीरिक लक्षण

(ख) मानसिक लक्षण

(क) शारीरिक लक्षण –

1. उच्च रक्तचाप
2. हृदय गति का बढ़ जाना
3. नाड़ी गति एवं श्वांस की गति का बढ़ना
4. कब्ज, अजीर्ण
5. सिर दर्द
6. सम्पूर्ण शरीर में तनाव
7. शारीरिक थकान
8. नींद न आना
9. भूख न लगना
10. वजन घटना
11. रोग प्रतिरोधक क्षमता में कमी इत्यादि।

(ख) मानसिक लक्षण –

1. मानसिक असंतुलन
2. बैचेनी एवं चिड़चिड़ापन
3. आत्मविश्वास एवं आत्म सम्मान का अभाव
4. नकारात्म सोच
5. भय
6. चिन्ता
7. स्वयं को निर्बल मानना।
8. दूसरों के साथ संतोषजनक सम्बन्ध न बनाये रख पानां।
9. समायोजन की कमी इत्यादि।

इस प्रकार स्पष्ट है कि तनाव को नकारात्मक ढंग से लेने पर यह शरीर एवं मन को बुरी तरह तोड़कर रख देता है तथा चिन्ता एवं अवसाद तथा अनेक प्रकार के गंभीर मनोकायिक रोगों को जन्म देता है।

15.8 योग समाधान –

प्रिय पाठकों, तनाव की बबढ़ती हुयी समस्या के कारण आज प्रत्येक व्यक्ति हैरान परेशान है तािा इसके समाधान की दिशा में बहुत प्रयासरत है। आधुनिक एलोपैथी चिकित्सा के पास तनाव को दूर करने के कोई स्थायी समााधान नहीं है। किन्तु यौगिक जीवन शैली के कुछ ऐसे सूत्र एवं विधियां हैं, जिनको यदि अपने जीवन में उतारने की कोशिश की जाये तो बहुत कुछ हद तक तनाव को नियंत्रित किया जा सकता है। कुछ प्रमुख यौगिक उपाय निम्नानुसार हैं –

1. स्वयं को परम सत्ता परमात्मा का अभिन्न अंग समझना –

तनाव को दूर करने का सबसे कारगर उपाय है स्वयं को दीन–हीन न समझकर भगवान का अभिन्न अंश समझना और इस सत्य पर विश्वास करना कि वह सर्वसमर्थ सत्ता हर पल हमारा ध्यान रख रहा है। हम अकेले नहीं, उनके सान्निध्य में हैं। उनकी नजर हर पल हम पर है। हमारे साथ जो कुछ हो रहा है, वह भगवान् के संरक्षण में हो रहा है और वे हमारे साथ बुरा नहीं होने देंगे।

2. समय की मर्यादा का पालन –

इसके साथ ही यदि हम समय की महत्ता को समझते हुए जिस समय पर जो कार्य करना है, प्राथमिकता के आधार पर तय करके, उसे समय पर पूरा करन की आदत डालें तो हमसे भी हम बहुत कुछ हत तक तनाव को नियंत्रित कर सकते हैं।

3. सकारात्मक दृष्टिकोण –

तनाव को दूर करने के लिये हम घटनाओं के सकारात्मक ढंग से लेने की आदत डालती चाहिये, क्योंकि कोई भी कार्य या घटना भगवान की इच्छा से ही होती है। किन्तु साथ ही हमें उचित समय पर अपने कर्तव्यों का निर्वाह भी करना चाहिए।

4. भविष्य की चिन्ता न करना –

अक्सर भविष्य की व्यर्थ की चिन्ता के कारण भी व्यक्ति तनावग्रस्त रहता है। अतः हमें भविष्य की चिन्ता को छोड़कर वर्तमान में जीने की आदत डालनी चाहिये।

5. प्रार्थना –

तनाव मुक्त रहने का एक अत्यन्त प्रभावी उपाय है सुख एवं दुख दोनों ही स्थितियों में तड़पकर उस परमात्मा को पुकारना।

6. षट्कर्म (क) जल नेति –

योग की शुद्धि क्रियाओं में तनावमुक्त रहने में जल नेति काफी प्रभावी है। इससे मस्तिष्क के न्यूरोन्स में सही ढंग से नेटवर्किंग होने लगती है तथा तमोगुण को बढ़ाने वाले विजातीय द्रव्य शरीर से बाहर निकलने लगते हैं।

(ख) त्राटक –

त्राटक करने से नकारात्मक चिन्तन दूर होकर मानसिक संतुलन की स्थिति प्राप्त होने लगती है।

(ग) कपालभांति –

इकसके नियमित ओीयास से मन में दबी हुई भावनायें एवं इच्छायें बाहर निकलती हैं, जिससे व्यक्ति स्वयं को तनावमुक्त महसूस करता है।

7. आसन –

आसन के नियमित अभ्यास से शारीरिक स्थिरता बढ़ती है। अतः शरीर की स्थिरता के कारण धीरे–धीरे मन भी स्थिर एवं शान्त होने लगता है।

8. प्राणायाम –

प्राणायाम प्राण को नियंत्रित करने की एक महत्वपूर्ण विद्या है। इससे एक ओर जहां प्राण स्थिर होने लगता है, वहीं दूसरी ओर ब्रह्माण्डीय ऊर्जा से सम्पर्क स्थापित होने के कारण उसमें प्राण की मात्रा बढ़ने लगती है।

परिणामस्वरूप नकारात्मक ऊर्जा का निष्कासन होता है तथा व्यक्ति स्वयं को प्राणवान एवं स्फूर्तिवान महसूस करता है।

9. धारणा का अभ्यास –

नियमित रूप से अपने आपको किसी एक आदर्श लक्ष्य में स्थिर करने के प्रयास से भी तनाव मुक्त रहा जा सकता है।

10. प्रातःकालीन भ्रमण –

प्रातःकाल वातावरण में सकारात्मक ऊर्जा अधिक रहती है। अतः तनावमुक्त रहने के लिये नियमित रूप से सूर्योदय से पूर्ण प्रातःकाल भ्रमण की आदत डालनी चाहिये।

11. आत्मबोध – तत्वबोध की साधना –

तनावमुक्त रहने के लिये व्यक्ति को अपनी जिन्दगी को एक दिन की मानकर प्रतिदिन प्रातः उठते ही आत्मबोध की साधना तथा शयन करते समय तत्वबोध की साधना करनी चाहिये।

अभ्यासार्थ प्रश्न – सत्य / असत्य

1. तनाव एक बहुआयामी प्रक्रिया हैं
2. तनाव एक अनुक्रिया है।
3. तनाव व्यक्ति के केवल शारीरिक कार्यो का विघटन करता है।
4. तनाव में व्यक्ति परिस्थिति को नियंत्रित कर पाने में असफल रहता है।

15.9 सारांश –

पाठकों, उपर्युक्त विवेचन से आप जान गये होंगे कि तनाव क्या है? और किस प्रकार से इसे नियंत्रित किया जा सकता है। पाठकों, एक निश्चित सीमा तक प्रत्येक व्यक्ति की जिन्दगी में तनाव आवश्यक है, जिसे सकारात्मक तनाव कहा जाता है। क्योंकि तनाव की स्थिति आने पर ही व्यक्ति सक्रिया एवं जागरूक बनता है। यह एक प्रकार की चेतावनी होती है, किन्तु जब यही तनाव व्यक्ति की सामर्थ्य एवं सहनशक्ति से बाहर हो जाता है तो व्यक्ति के लिये अत्यन्त घातक सिद्ध होता है तथा चिन्ता, अवसाद एवं अनेक मानसिक रोगों का कारण बनता है। अतः समय रहते तनाव का समुचित प्रबंधन कर लेना चाहिये और इसमें यौगिक जीवन शैली को अपनाना अत्यन्त सहायक सिद्ध हो सकता है।

15.10 शब्दावली –

आत्मबोध – तत्वबोध : इस साधना में व्यक्ति स्वयं की जिन्दगी को एक दिन भी मानता है। आत्मबोध की साधना सुबह उठने के साथ तथा तत्वबोध की साधना बिस्तर पर जाते समय सोने से पहले की जाती है। आत्मबोध में भगवान के प्रति नया जीवन देने के लिए धन्यवाद दिया जाता है और उनसे प्रार्थना की जाती है कि हम अपने दिन–भर के कार्यो को पूरी निष्ठा के साथ कर सकें। तत्वबोध की साधना में सोने से पहले अपने दिन–भर के कार्यो का मूल्यांकन किया जाता है तथा गलतियों के लिये भगवान् से क्षमा मांगी जाती है तथा वह भावना की जाती है कि अब हमारा जीवन समाप्त हो रहा है तथा हम मृत्यु की गोद में जा रहे हैं।

कपालभांति : मस्तिष्क प्रदेश के शोधन की क्रिया।

त्राटक : स्थिर दृष्टि से किसी लक्ष्य एकटक देखना।

15.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य 2. सत्य 3. असत्य 4. सत्य

15.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1. सिंह, अरूण कुमार (2006) असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, दिल्ली।
2. मिश्र, दीन प्रयाग, योग एवं मानसिक स्वास्थ्य।

15.13 निबंधात्मक प्रश्न –

प्रश्न 1. तनाव के अर्थ को स्पष्ट करते हुए इसके लक्षण एवं कारणों का विवेचन कीजिए।

प्रश्न 2. तनाव के यौगिक प्रबन्धन पर प्रकाश डालिये।

इकाई–16 चिन्ता एवं अवसाद का लक्षण, कारण एवं योग समाधान

इकाई की संरचना

16.1 प्रस्तावना

16.2 उद्देश्य

16.3 चिन्ता का अर्थ एवं परिभाषा

16.4 चिन्ता के लक्षण

16.5 अवसाद का अर्थ

16.7 चिन्ता एवं अवसाद के कारण

16.8 चिन्ता एवं अवसाद का यौगिक प्रबंधान

16.9 सारांश

16.10 शब्दावली

16.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

16.12 संन्दर्भ ग्रन्थ सूची

16.13 निबंधात्मक प्रश्न।

16.1 प्रस्तावना–

प्रिय पाठकों, इससे पूर्व की ईकाई में आपने तनाव के अर्थ, लक्षण, कारण एवं योग समाधान के बारे में व्यापक अध्ययन किया है। प्रस्तुत ईकाई में हमारे अध्ययन का विषय है–
चिन्ता एवं अवसाद के कारण, लक्षण एवं यौगिक प्रबंधन के बारे में अध्ययन करना।
पाठकों, आपकी जानकारी के लिये बता दें जब नकारात्मक तनाव की स्थिति लम्बे समय तक बनी रहती है तो यही तनाव आगे चलकर दुश्चिन्ता एवं अवसाद को जन्म देता है।
अब आप सोच रहे होंगे कि तनाव तथा चिन्ता एवं अवसाद में बचा अन्तर है?
इनके कारण एवं नियंत्रण के उपाय क्या है।
तो आइये चर्चा करते हैं हम चिन्ता एवं अवसाद के कारण, लक्षण एवं उपायों के बारे में।

16.2 उद्देश्य–

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत ईकाई का अध्ययन करने के बाद आप–

- चिन्ता एवं अवसाद के स्वरूप को स्पष्ट कर सकेंगे।
- चिन्ता एवं अवसाद के कारण एवं लक्षणों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- चिन्ता एवं अवसाद के यौगिक प्रबंधन का वर्णन कर सकेंगे।

16.3 चिन्ता का अर्थ एवं परिभाषा–

प्रिय पाठकों, आप सोच रहे होंगे कि वह चिन्ता वास्तव में है क्या? चिन्ता वस्तुतः एक दुःखद भावनात्मक स्थिति होती है। जिसके कारण व्यक्ति एक प्रकार के अनजाने भय से ग्रस्त रहता है, बेचैन एवं अप्रसन्न रहता है। चिन्ता वस्तुतः व्यक्ति को भविष्य में आने या होने वाली किसी भयावह समस्या के प्रति चेतावनी देने वाला संकेत होता है। हममें से प्रत्येक व्यक्ति अपनी दिन–प्रतिदिन की जिन्दगी में अलग–अलग ढंग से चिन्ता का अनुभव करता है। कुछ लोग छोटी सी समस्या को भी अत्यधिक तनावपूर्ण ढंग से लेते हैं और अत्यधिक चिन्ताग्रस्त हो जाते है। जबकि कुछ लोग जीवन की अत्यधिक कठिन परिस्थितियों को भी सहजता से लेते है और शान्त भाव से विवेकपूर्ण ढंग से समस्याओं का समाधान करते हैं।वस्तुतः चिन्ताग्रस्त होना किसी भी व्यक्ति के अपने दृष्टिकोण पर निर्भर करता है।

चिन्ता से न केवल हमारे दैनिक जीवन के क्रियाकलाप प्रभावित होते हैं, वरन् हमारे निष्पादन, बुद्धिमत्ता, सर्जनात्मकता इत्यादि भी नकारात्मक ढंग से प्रभावित होते है। यह कहा जा सकता है कि अत्यधिक चिन्ताग्रस्त होने के कारण व्यक्ति का व्यक्तित्व बुरी तरह प्रभावित हो पाता है तथा वह किसी भी कार्य को ठीक ढंग से करने में सक्षम नहीं हो पाता है।

परिभाषायें–

चिन्ता को अनेक मनोवैज्ञानिकों ने अपने–अपने ढंग से परिभाषित किया है। जिसमें से कुछ प्रमुख निम्न है–

1. ''चिन्ता एक ऐसी भावनात्मक एवं दुःखद अवस्था होती है, जो व्यक्ति के अहं को आलंबित खतरा से सतर्क करता है, ताकि व्यक्ति वातावरण के साथ अनुकूली ढंग से व्यवहार कर सके।''

(फ्रायड, 1924)

2. ''प्रसन्नता अनुभूति के प्रति संभावित खतरे के कारण उत्पन्न अति सजगता की स्थिति ही चिन्ता कहलाती है।''

(आरफॅफ, 1985)

3. ''चिन्ता एक ऐसी मनोदशा है, जिसकी पहचान चिन्हित नकारात्मक प्रभाव से, तनाव के शारीरिक लक्षणों लांभवित्य के प्रति भय से की जाती है।''

(अमेरिकन साइकेट्रिक एसोशियेशन 2005, एवं बारलोप, 1988)

4. ''चिन्ता का अवसाद से भी घनिष्ठ संबंध है।''

(बारलोव, 1998)

5. ''चिन्ता एवं अवसाद दोनों ही तनाव के क्रमिक सांवेगिक प्रभाव है। अति गंभीर तनाव कालान्तर में चिन्ता में परिवर्तित हो जाता है तथा दीर्घ स्थायी चिन्ता अवसाद का रूप ले लेती है।''

(आर.अग्रवाल, 2001)

चिन्ता के प्रकार–

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक **सिगमण्ड फ्रायड** ने चिन्ता के निम्न तीन प्रमुख प्रकार बताये हैं–

1. **वास्तविक चिन्ता**
2. **तंत्रिकातापी चिन्ता**
3. **नैतिक चिन्ता**

स्पीलबर्ग, 1985 ने चिन्ता के निम्न दो प्रकार बताये हैं–

1. **शीलगुण चिन्ता**
2. **परिस्थितिगत चिन्ता**

16.4 चिन्ता के लक्षण–

पाठकों, चिन्ता के लक्षणों का विवेचन निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है–

1. **दैहिक लक्षण**
2. **सांवेगिक लक्षण**
3. **संज्ञानात्मक लक्षण**
4. **व्यवहारात्मक लक्षण**

दैहिक लक्षण

- अत्यधिक शारीरिक थकान
- पूरे शरीर में माँसपेशीय तनाव
- अत्यधिक पसीना आना
- उच्च रक्तचाप
- ह्रदयगति एवं नाहीगति का बढ़ जाना
- पेट संबंधी समस्यायें
- सिर दर्द
- वजन कम होना
- हाथ–पैर का ठंडा हो जाना इत्यादि।

सांवेगिक लक्षण–

- बेचैन एवं तनावग्रस्त रहना।
- उदास एवं निराश
- हैरान–परेशान
- चिड़चिड़ापन

संज्ञानात्मक लक्षण–

- नकारात्मक सोच
- भविष्य के बारे में दुःखद कल्पनायें करना।

व्यावहारात्मक लक्षण–

- अन्तर्मुखी होना
- दूसरे लोगों से अपने आपको छुपाने का प्रयास करना।
- नकारात्मक सोच के कारण निर्णय लेने में कठिनाई।

इस प्रकार स्पष्ट है कि चिन्ता न केवल हमारे शरीर वरन् भावनाओं, विचार एवं व्यवहार सभी को अत्यधिक नकारात्मक ढंग से प्रभावित करती है।

16.5 अवसाद का अर्थ–

यह एक मनोदशा विकृति है। प्रिय पाठकों, जब किसी व्यक्ति में बहुत लम्बे सेमय तक चिन्ता की स्थिति बनी रहती है तो वह ''अवसाद'' या विषाद का रूप ले लती है। अवसाद की स्थिति में व्यक्ति का मन बहुत ही उदास रहता है तथा उसमें मुख्य रूप से निष्क्रियता अकेले रेने एवं आत्महत्या के प्रयास करने की प्रवृत्ति पायी जाती है। ऐसा अवसादग्रस्त व्यक्ति स्वयं को दीन–हीन, निर्बल मानकर जिन्दगी को बेकार समझने लगता है।

16.6 अवसाद के लक्षण–

पाठकों, अवसाद के लक्षणों को निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत स्पष्ट किया जा सकता है–

क. सांवेगिक लक्षण

ख. संज्ञानात्मक लक्षण

ग. अभिप्रेरणात्मक लक्षण

घ. व्यवहारपरक लक्षण

च. दैहिक लक्षण

इसका विस्तृत वर्णन निम्नानुसार हैं–

क. सांवेगिक लक्षण–

- उदासी
- निराशा
- दुःखी रहना
- लज्जालूपना
- दोषभाव
- बेकारी का भाव इत्यादि।

इनसे उदासी का भाव सबसे प्रधान है। ''विषादी रोगियों में से 92 प्रतिशत लोग ऐसे होते हैं, जिन्हें अपनी जिन्दगी में कोई मुख्य अभिरूचि नहीं रह जाती हे तथा 64 प्रतिशत ऐसे होते है, जिनमें दूसरों के प्रति भावशून्यता उत्पन्न हो जाती है।'' (क्लार्क, बेक एवं बेक, 1994)

ख. संज्ञानात्मक लक्षण–

अपने भविष्य के बारे में अत्यधिक नकारात्मक सोचना।

ग. अभिप्रेरणात्मक लक्षण–

- अपने दैनिक कार्यो में अभिरूचि का न होना।
- पहल करने की प्रवृत्ति की कमी।
- स्वेच्छा से कार्य करने की प्रवृत्ति का अभाव।

''विषाद इच्छाओं का पक्षाघात है।'' (एरोन बेक)

घ. **व्यवहारपरक लक्षण–**

- अत्यधिक अन्तर्मुखी स्वभाव एवं व्यवहार
- अकेले रहने की प्रवृत्ति
- लोगों से नहीं मिलना–जुलना।
- निष्क्रियता इत्यादि।

च. **दैहिक लक्षण–**

- सिरदर्द
- कब्ज एवं अपच
- छाती में दर्द
- अनिद्रा
- भोजन में अरूचि
- पूरे शरीर में दर्द एवं थकान इत्यादि।

अवसाद के प्रकार–

अवसाद को मनोवैज्ञानिकों ने निम्न दो श्रेणियों में विभक्त किया है–

क. प्रधान विषादी विकृति

ख. डाइस्थाइमिक विकृति

इनका विवेचन निम्नानुसार है–

प्रधान विषादी विकृति–

- इसमें व्यक्ति एक या एक से अधिक अवसादपूर्ण घटनाओं से पीड़ित होता है।
- इस श्रेणी के अवसाद में व्यक्ति में रोग के लक्षण कम से कम दो सप्ताह से अवश्य ही रहे हों।

डाइस्थाइमिक विकृति–

- इसमें विषाद की मनःस्थिति का स्वरूप दीर्घकालिक होता है।
- इसमें कम से कम एक या दो सालों से व्यक्ति अपने दिन–प्रतिदिन के कार्यो में रूचि खो देता है तथा जिन्दगी जीना उसे व्यर्थ लगने लगता है।
- ऐसे व्यक्ति प्रायः पूरे दिन अवसाद की मनःस्थिति में रहते है। ये प्रायः अत्यधिक नींद आने या कम नींद आने, निर्णय लेने में कठिनाई, एकाग्रता का अभाव तथा अत्यधिक थकान इन समस्याओं से पीड़ित रहते हैं।

16.7 चिन्ता एवं अवसाद के कारण–

चिन्ता के कारण–

पाठकों, मनोवैज्ञानिकों के अनुसार चिन्ता के प्रमुख कारण निम्न हैं–

1. **जैविक कारक**
2. **मनोवैज्ञानिक कारक**
3. **अधिगम से संबंधित कारक**
4. **संज्ञानात्मक – व्यवहरात्मक कारक**

इनका विवेचन निम्नानुसार हैं–

1. जैविक कारक–

कुछ विद्वानों का मत है कि चिन्ता आनुवांशिक कारणों से भी होती है अर्थात् व्यक्ति के भीतर कुछ ऐसे जीन्स होते हैं जो चिन्ता के लिये जिम्मेदार होते हैं।

पाठकों, यह ध्यान में रखने योग्य है कि कोई भी अकेला जीन्स चिन्ता का कारण नहीं होता वरन् ऐसे जीन्स एक से अधिक होता है।

इस मत के समर्थक विद्वानों में आइजेन्फ, ग्रे, लेडर, विंग इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं।

मनोवैज्ञानिक कारक–

इस विचारधारा, के अनुसार अहं एवं उपादं की इच्छाओं में अचेतन स्तर पर होने वाले संघर्ष के कारण चिन्ता उत्पन्न होती है।

3. अधिगम से संबंधित कारक–

अनेक विद्वानों का मत है कि वातावरण में भी ऐसे अनेक कारक होते है जिनसे व्यक्ति चिन्ताग्रस्त हो जाता है।

4. संज्ञानात्मक–व्यवहारात्मक कारक–

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार जब व्यक्ति के सामने ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जो उसके नियंत्रण से बाहर होती है तो वह चिन्ताग्रस्त हो जाता है। साथ ही जब व्यक्ति स्वयं को असहाय एवं निर्बल मानता है, तब भी वह चिन्तित होने लगता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि चिन्ता के अनेक कारण होते है।

अवसाद के कारण–

पाठकों, अवसाद के कारणों का विवेचन निम्नानुसार है–

- **जैविक कारक**
- **मनोगतिकी विचारधारा**
- **संज्ञानात्मक विचार धारा**

जैविक विचारधारा–

इस मत के अनुसार विषाद का कारण या तो जीन्स होते है या कोई शारीरिक समस्या अथवा आनुवांशिकता।

मनोगतिकी विचारधारा–

इस विचारधारा का जन्म फ्रायड एवं उनके शिष्य कार्ल अब्राहम से माना जाता है।

इस मत के अनुसार जब व्यक्ति का अपने किसी प्रियजन प्रिय वस्तु अथवा परिस्थिति से बिछोह होता है अर्थात् वे व्यक्ति वस्तु या परिस्थिति जब उससे दूर हो जाती है, तो वह अवसाद में चला जाता है।

संज्ञानात्मक विचारधारा–

इस मत के अनुसार अवसाद का प्रमुख कारण व्यक्ति की नकारात्मक सोच होती है। इसके कारण वह अतीत की घटनाओं के लिये पश्चाताप करता है, जिससे उसमें आत्मदोष की भावना उत्पन्न हो जाती है और भविष्य की बारे में निराशाजनक कल्पनायें करता है। परिणामस्वरूप अपने वर्तमान समय का समुचित उपयोग नहीं कर पाता है तथा दुःखी एवं निराश रहता है।

16.8 चिन्ता एवं अवसाद का यौगिक प्रबंधन–

पाठकों, चिन्ता एवं अवसाद के यौगिक समाधान के बारे में जानने से पहले यह जानना आवश्यक है कि यह चिकित्सा किस सिद्धान्त पर कार्य करती है।

योग चिकित्सा का सिद्धान्त–

वास्तव में यदि देखा जाये तो योग एक चिकित्सा न होकर एक जीवनशैली है। जिसके माध्यम से जीवन की विभिन्न आवश्यकताओं का प्रबंधन करने का प्रयास किया जाता है। योग का चाहे कोई भी अभ्यास हो, जैसे कि आसन, प्राणायाम, मंत्रजाप, इत्यादि। इन सभी का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति के चिन्तन, चरित्र एवं व्यवहार का परिष्कार करना होता है। जैसे–जैसे सतोगुण बढ़ता है, वैसे–वैसे चिप्त का परिष्कार भी होने लगता है।

अतः योगाभ्यास प्राण ऊर्जा के अवरोधों को हटाकर चित्त को निर्मल करते है। परिणामस्वरूप व्यक्ति नकारात्मक चिन्तन को छोड़कर सकारात्मकता की दिशा में अग्रसर होता है और उसकी सभी प्रकार की समस्यायें और रोग धीरे–धीरे दूर होने लगते हैं।

चिन्ता का यौगिक समाधान–

षट्कर्म– जलनेति, कपालभाँति, शीतक्रम और कुंजल

आसन– श्वास–प्रश्वास की सजगता के साथ संधि संचालन के अभ्यास

- ताड़ासन (5–10 बार)
- तिर्यक् ताड़ासन (5–10 बार)
- कति चक्रासन (5–10 बार)
- सूर्य नमस्कार (3–5 आवृत्ति)
- पद्मासन
- सिद्धासन
- स्वस्तिकासन
- गोमुखासन
- शशांकासन
- वज्रासन
- सर्वांगासन
- हलासन
- सिंहासन एवं हसासन
- शवासन (15–20 मिनट)

इत्यादि

नोट– प्रत्येक आसन के बाद कुछ क्षण के लिये विश्राम जरूर करना चाहिये।

प्राणायाम–

- नाड़ी शोधन प्राणायाम
- भ्रामरी प्राणायाम
- उज्जायी प्राणायाम
- चन्द्रभेदी प्राणायाम

नोट– शुरूआत में अपने समय और शक्ति के अनुसार कोई भी अभ्यास करना चाहिये। धीरे–धीरे अभ्यासों की आवृत्ति को बढ़ाना चाहिये। प्रारंभ में 3–5 आवृत्ति के साथ प्राणायाम का अभ्यास किया जा सकता है। अति ठंडी होने पर चन्द्रभेदी प्राणायाम का अभ्यास नहीं करना चाहिये।

शिथिलीकरण के अभ्यास

योग निद्रा

मंत्रजप – गायत्री मंत्र का जप

अन्य अभ्यास

- ऊँकार का नियमित उच्चारण
- स्वाध्याय
- प्रातःकालीन भ्रमण
- अत्यधिक मिर्च–मसाले की चीजों को खाने से बचना
- समय प्रबंधन का पालन
- नियमित भगवान् से सन्मार्ग एवं सत्कर्म करने के लिये प्रार्थना करना।

अवसाद का यौगिक समाधान–

षट्कर्म–

- जल नेति
- कपालभाँति
- वमन
- शीतक्रम
- व्युत्क्रम

नोट– प्रारंभ में कपालभाँति का अभ्यास बहुत ज्यादा देर तक न करें।

जल नेति, व्युत्क्रम एवं शीतकर्म का अभ्यास प्रतिदिन भी किया जा सकता है और वमन सप्ताह में 2–3 बार कर सकते हैं।

आसन –

- संचि संचालन के अभ्यास
- ताड़ासन
- तिर्यक ताड़ासन
- कटि चक्रासन
- सूर्य नमस्कार
- हलासन
- विपरीत करणी आसन
- सर्वांगासन

- शीर्षासन
- मार्धारिआसन
- सिंहासन हसासन
- शशांक–भुजंगासन
- काष्ठतक्षण आसन इत्यादि।

नोट–

- आसन करते समय हमेशा प्रारंभ में सरल से कठिन आसन की ओर जायें।
- प्रत्येक यौगिक अभ्यास श्वास–प्रश्वास की सजगता के साथ होना चाहिये।
- प्रत्येक अभ्यास अपनी शरीर की क्षमता के अनुसार कुशल योग निर्देशक के निरीक्षण में ही करना चाहिये।

प्राणायाम–

- नाड़ी शोधन प्राणायाम
- भस्त्रिका प्राणायाम
- भ्रामरी प्राणायाम
- सूर्यभेदी प्राणायाम

नोट– अत्यधिक गर्मी के दिनों में भस्त्रिका एवं सूर्यभेदी प्राणायाम का अधिक अभ्यास नहीं करना चाहिये।

मंत्रजप–

- महामृत्युंजय मंत्र का जप
- ऊँकार उच्चारण

अन्य अभ्यास–

- प्रातःकालीन भ्रमण
- शरीर एवं मन को किसी न किसी कार्य में व्यस्त रखना।
- हल्का सुपाच्य भोजन
- सकारात्मक विचारों की पुस्तकों को पढ़ना–सुनना इत्यादि।

नोट–

- अवसाद के रोगी को कोई भी ऐसा अभ्यास नहीं करवाना चाहिये जो अन्तर्मुखी बनाये। इन्हें अधिक से अधिक ऐसे अभ्यास करवाने चाहिये जिससे शरीर एवं मन गतिशील रहे।
- अवसाद के रोगियों को योगनिद्रा एवं ध्यान के अभ्यास नहीं कराने चाहिये।

पाठकों, इस प्रकार स्पष्ट है कि कुछ योगाभ्यासों को यदि नियमित रूप से किया जाये तो काफी हद तक चिन्ता एवं विषाद की समस्या को नियंत्रित किया जा सकता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न– सही/गलत

1. चिन्ता एवं दुःखद भावनात्मक स्थिति है। ( )
2. अवसाद में व्यक्ति का व्यवहार बहिर्मुखी होता है। ( )
3. अवसाद में व्यक्ति दूसरे लोगों से अत्यधिक बातचीत करता है। ( )
4. अवसाद से ग्रस्त व्यक्तियों में आत्महत्या की प्रवृत्ति पायी जाती है। ( )
5. चिन्ता के कारण दैहिक एवं मनोवैज्ञानिक दोनों ही होते हैं। ( )

16.9 सारांश–

प्रिय विद्यार्थियों, उपरोक्त विवेचन से आप जान गये होंगे कि किस प्रकार से चिन्ता एवं अवसाद की समस्या उत्पन्न होती है एवं चिन्ता तथा अवसाद के कितने प्रकार होते हैं। इनमें क्या संबंध है, और किस प्रकार से इनका प्रबंधन किया जा सकता है।

पाठकों, व्यक्ति की चाहे किसी भी प्रकार की समस्या क्यों न हो, उसका मूल कारण होता है, जिन्दगी की सही समझ न होना। यदि हम अपने जीवन को गहराई से समझने के साथ–साथ अनुभव करना भी सीख जायें तथा किसी भी कार्य को करने से पहले यदि विवेकपूर्ण ढंग से सोचें तो बहुत कुछ हद तक हम अपनी समस्याओं का समाधान कर सकते हैं। वास्तव में योग व्यक्ति के अन्दर उसी विवेक और सकारात्मकता को पैदा करने का नाम है।

16.10 शब्दावली–

अन्तर्मुखी– अपने आप में रहने की प्रवृत्ति।

बहिर्मुखी– बाहर की और प्रवृत्ति अर्थात् सामाजिक समारोहों, उत्सवों में अत्यधिक आना–जाना, बाहरी लोगों से अधिक मिलना जुलना, सम्पर्क एवं संबंध बनाने की प्रवृत्ति।

संज्ञानात्मक– विचार संस्थान से सम्बद्ध।

स्वाध्याय– सद्विचारों के प्रकार में स्वयं को गहराई से जानने एवं समझने का प्रयास।

16.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर–

1. सत्य
2. असत्य
3. असत्य
4. सत्य

16.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. सिंह, अरूण कुमार (2009) असामान्य मनोविज्ञान मोतीलाल बनारसीदास, बंग्नलो रोड दिल्ली।

16.13 निबंधात्मक प्रश्न–

प्र.1 चिन्ता क्या है? इसके कारण एवं लक्षणों पर प्रकाश डालिये।

प्र.2 चिन्ता एवं अवसाद प्रबंधन की यौगिक विधियों का विस्तृत वर्णन कीजिए।

इकाई– 17 व्यसन– प्रकृति, लक्षण कारक एवं मादक पदार्थो का कुप्रभाव

इकाई की संरचना

17.1 प्रस्तावना

17.2 उद्देश्य

17.3 व्यसन से क्या आशय है

17.4 व्यसन के कारण

17.5 लक्षण

17.6 मादक पदार्थो का दुष्प्रभाव

17.7 सारांश

17.8 शब्दावली

17.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

17.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

17.11 निबंधात्मक प्रश्न

17.1 प्रस्तावना –

प्रिय पाठकों, जैसा कि हम सब जानते हैं कि वर्तमान समय में व्यसन की समसस्या एक प्रमुख रोग के रूप में हमारे सामने आ रही है, और मुख्य रूप से किशोर एवं युवक इस रोग की चपेट में हैं। आज की यांत्रिक भौतिक जीवन शैली एवं भाव संवेदनाओं की शून्यता ने इस रोग को बढ़ावा दिया है। पारिवारिक स्नेह, आपसी सहयोग एवं आत्मीयता के अभाव के कारण लोग इन सब अभावों की पूर्ति कृत्रिम रूप से द्रव्यों एवं औषधों का लेकर कर रहे हैं। ये द्रव्य कुछ समय के लिये तो व्यक्ति को खुशी और आराम देते हैं, किन्तु अन्ततः इनके परिणाम शारीरिक, मानसिक हर दृष्टि से अत्यन्त घातक होते हैं।

पाठकों, आपके मन में यह जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हो रही होगी कि किस प्रकार से यह व्यसन का रोग हो जाता है? इसके लिये कौन–कौन से कारक उत्तरदायी हैं? इनका व्यक्ति के शरीर, मन इत्यादि पर क्या दुष्प्रभाव होता है?

आपके इन्हीं प्रश्नों के समाधान के लिये प्रस्तुत इकाई में व्यसन की विकृति के सम्बन्ध में विस्तार से चर्चा करेंगे।

17.2 उद्देश्य –

प्रिय विद्यार्थियों प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

1. व्यसन के स्वरूप को स्पष्ट कर सकेंगे।
2. व्यसन के प्रकारों का विश्लेषण कर सकेंगे।
3. व्यसन के कारणों का विवेचन कर सकेंगे।
4. व्यसन के कुप्रभावों को स्पष्ट कर सकेंगे।

17.3 व्यसन से क्या आशय है? –

प्रिय पाठकों, जैसा कि आप जानते हैं कि व्यसन एक द्रव्य सम्बन्धी विकृति है, जिसमें व्यक्ति अत्यधिक मात्रा में विभिन्न प्रकार के रसायन द्रव्यों का सेवन करता है और इन द्रव्यों पर इतनी अधिक निर्भरता बढ़ जाती है कि इनके दुष्प्रभावों से परिचत होते हुए भी वह इनको लेने के लिये विवश हो जाता है, क्योंकि न लेने पर उसके शरीर और मन को अनेक प्रकार की परेशानियों का सामना करना पड़ता है।

DSM -IV में द्रव्य सम्बन्धी रोगों को स्पष्ट करने के लिये निम्न दो प्रकार के शब्दों का विवेचन किया गया है –

1. द्रव्य दुरूपयोग
2. द्रव्य निर्भरता

1. द्रव्य दुरूपयोग –

औषध उपयोग की यह स्थिति यद्यपि ज्यादा गंभीर नहीं होती है। किन्तु फिर भी द्रव्यों के सेवन के कारण व्यक्ति के अपने पारिवारिक व्यावसायिक एवं अन्य दायित्वों को पूरा करने में अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

द्रव्य–दुरूपयोग की स्थिति में व्यक्ति अत्यधिक खतरनाक स्थितियों जैसे वाहन चलाना इत्यादि में भी उस द्रव्य का दुरूपयोग करता है, जिससे उसके जान जाने या दुर्घटना घटित होने की सम्भावना बनी रहती है।

2. द्रव्य निर्भरता –

पाठकों, यदि व्यक्ति लम्बे समय तक इन द्रव्यों का दुरूपयोग करता है तो उसमें द्रव्य निर्भरता की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है, जो उस व्यक्ति के लिये गंभीर और खतरनाक है।

द्रव्य निर्भरता को मनोवैज्ञानिकों ने दो प्रकार से स्पष्ट किया है –

क. मनोवैज्ञानिक निर्भरता

ख. दैहिक निर्भरता

क. मनोवैज्ञानिक निर्भरता –

मनोवैज्ञानिक निर्भरता में व्यक्ति के मन में हमेशा उस औषध या द्रव्य को किसी भी प्रकार से प्राप्त करने की योजना चलती रहती है तथा उसके सारे प्रयास एवं क्रियाकलाप उस दव्य को प्राप्त करने के लिये होते हैं। परिणामस्वरूप वह अपने कर्तव्यों का निर्वाह ठीक ढंग से नहीं कर पाता है। यह जानते हुए भी कि ये औषण उसके शरीर में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न करेंगे फिर भी वह उन पदार्थो को पाने के लिये ही प्रयत्न करता है और इसके कारण उसकी संगति भी उन लोगों के साथ हो जाती है जो इन सब कार्यो में सलंग्न रहते हैं।

ख. दैहिक निर्भरता –

औषधों के सेवन की मनोवैज्ञानिक निर्भरता दैहिक निर्भरता को जन्म देती है। दैहिक निर्भरता का अर्थ है कि अब उस व्यक्ति के शरीर को उन द्रव्यों पर ही निर्भर रहने की आदत बन जाना और औषध या द्रव्य ग्रहण न करने पर शरीर में बैचेनी, घबराहट उत्पन्न हो जाना और कई बार तो स्थिति इतनी गंभीर हो जाती है कि व्यक्ति की मृत्यु तक हो जाती है।

प्रिय पाठकों, इस प्रकार संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि जब व्यक्ति अत्यधिक लम्बे समय तक तथा अत्यधिक मात्रा में बार–बार औषधों का सेवन करता है तो उसमें सहनशीलता एवं प्रत्याहार संलक्षण विकसित हो जाते हैं जिसे व्यसन कहा जाता है।

आपके मन में प्रश्न उठ रहा होगा कि यह सहनशीलता और प्रत्याहार सलंक्षण क्या है? तो आइये, सबसे पहले चर्चा करते हैं सहनशीलता के बारे में –

सहनशीलता –

सहनशीलता से आशय एक दैहिक या शारीरिक प्रक्रिया से है, जिसमें व्यक्ति द्रव्य को लेने का इतना आदी हो चुका होता है कि इच्छित प्रभाव उत्पन्न करने के लिये उसे उस द्रव्य का अत्यधिक मात्रा में सेवन करना पड़ता है और यह मात्रा पहले की तुलना में कई गुना ज्यादा होती है।

प्रत्याहार संलक्षण –

प्रत्याहर संलक्षण की स्थिति में व्यक्ति जब व्यसनी औषध का उपयोग नहीं करता है तो उसके शरीर एवं मन में अनेक प्रकार की विकृतियां उत्पन्न होने लगती हैं। उसका मन अत्यधिक अशांत, बैचेन होने लगता है। किसी भी कार्य में मन नहीं लगता। व्यक्ति एक प्रकार से मानसिक रूप से असंतुलित हो जाता है तथा इसके साथ ही शरीर में भी दर्द, पीड़ा, कंपन, बैचेन उत्पन्न होने लगती हैं और कई बार तो मृत्यु तक हो जाती है।

व्यसन के प्रकार –

प्रिय विद्यार्थियों मनोवैज्ञानिकों ने व्यसन के निम्न॒पकार बतायें हैं –

1. मद्यपान सम्बन्धी विकृति
2. नाइकोटिन एवं सिगरेट धूम्रपान सम्बद्ध विकृति
3. उत्तेजक सम्बद्ध विकृति
4. स्वापक सम्बद्ध विकृति
5. भ्रमात्मक सम्बद्ध विकृति
6. केन्नाविस सम्बद्ध विकृति
7. शमक – निद्राजनक तथा प्रशांतक सम्बद्ध विकृति

17.4 व्यसन के कारण–

प्रिय विद्यार्थियों मनोवैज्ञानिकों ने व्यसन के कारणों का विवेचन निम्न विचारधाराओं के आधार पर किया है –

1. जननिक एवं जैविक विचारधारा
2. मनोगतिका विचारधारा
3. व्यवहारपरक विचारधारा
4. सामाजिक–सांस्कृतिक विचारधारा

इन विचारधाराओं का वर्णन निम्नानुसार है –

1. जननिक एवं जैविक विचारधारा –

पाठकों, इस मत के अनुसार व्यसन के मुख्य रूप से दो कारण माने गये हैं –

अ. वंशानुगतता

ब. जीन्स

अ. वंशानुगतता –

मनोवैज्ञानिकों ने अनेक प्रकार के प्रयोगात्मक अध्ययनों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि यदि किसी व्यक्ति के माता–पिता या उसके परिवार या पीढ़ी में किसी व्यक्ति को व्यन की आदत है या थी, तो उस व्यक्ति में भी व्यसन से ग्रसित होने की संभावना अपेक्षाकृत अधिक होती है।

ब. जीन्स –

जीन्स को भी व्यसन के प्रमुख कारणों में से एक माना गया है। मनोवैज्ञानिकों ने अपने प्रयोग के आधार पर अनेक ऐसे जीन्स खोज निकाले हैं, जो व्यसन को उत्पन्न करने के लिये जिम्मेदार हैं।

2. मनोगति की विचारधारा –

इस विचारधारा के अनुसार अगर बचपन में किसी बच्चे को समुचित देखभाल, माता–पिता तथा परिवार के अन्य सदस्यों का पर्याप्त प्यार एवं स्नेह न मिला हो या उसके शारीरिक, मानसिक या भावनात्मक पोषण में यदि किसी प्रकार की कमी रह जाती है अर्थात उसका बाल्यावस्था में समुचित विकास नहीं हुआ होता है तो उसमें उन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये दूसरों पर निर्भर रहने की प्रवृत्ति विकसित हो जाती है और दूसरों पर निर्भरता का यह रूप यदि औषध या द्रव्यों पर निर्भरता के रूप में होता है तो फिर वह ''व्यसन'' को जन्म देता है।

3. व्यवहारपरक विचारधारा –

इस मत के प्रमुख समर्थक विद्वान हैं – क्लाक, सेचिटी, स्टीली, जोसेफ्स इत्यादि।

इस मत के अनुसार व्यसनी द्रव्य व्यक्तियों में कुछ समय के लिये अत्यधिक प्रसन्नता, उत्साह, स्फूर्ति एवं आनन्द को उत्पन्न कर देते हैं जिससे व्यक्ति स्वयं को तनावमुक्त एवं हल्का तरोताजा महसूस करता है।

औषधों यह प्रभाव व्यक्ति को इन द्रव्यों को लेने के लिये प्रेरित करता है। इन द्रव्यों का प्रयोग अधिकतर तनावपूर्ण स्थिति में किया जाता है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति तनावमुक्त और खुश रहना चाहता है किन्तु औषध लेने वाला यह नहीं जानता कि कुछ पल के सुख

के लिये वह अपनी जिन्दगी को दांव पर लगा रहा है और ये व्यसनी द्रव्य अन्ततः उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व के लिये एक प्रकार का जहर है।

4. सामाजिक–सांस्कृतिक विचारधारा –

इस मत के अनुसार जिन परिवारों या समाज का महौल तनाव को पैदा करने वाला होता है, एक तो उनमें व्यसन की विकृति अधिक पायी जाती है और दूसरी ओर उन परिवारों में जिनमें ऐसे व्यसनी औषधों का सेवन करना मूल्यवान समझा जाता है तथा इस प्रवृत्ति को आदर के साथ देखा जाता है।

तो पाठकों स्पष्ट है कि व्यसन के जैविक, मनोगतिक, व्यावहारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक इत्यादि अनेक कारण हैं।

17.5 लक्षण

प्रिय पाठकों, व्यसन के प्रमुख लक्षणों का विवेचन निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है –

सहनशीलता –

व्यसन में व्यक्ति पहले की तुलना में अत्यधिक मात्रा में व्यसनी द्रव्य का सेवन करता है या पहले से ही यदि वह वह अत्यधिक द्रव्य लेता है, तो उसका प्रभाव पहले की तुलना में कम होने लगता है।

प्रत्याहार संलक्षण –

व्यसन में जब व्यक्ति लागतार खाये जाने वाले द्रव्य को लेना बन्द कर देता है तो उसे मानसिक रूप से बैचेनी, अशान्ति तथा शारीरिक रूप से अत्यधिक पीड़ा, तनाव, कंपन होने लगता है और कई बार तो व्यक्ति की मृत्यु भी होती है। यदि व्यसनी को वह द्रव्य विशेष नहीं मिल पाता है तो उसकी पूर्ति के लिये वह अन्य औषध का सेवन भी करने लग सकता है।

द्रव्य का अत्यधिक उपयोग –

व्यसन में व्यक्ति उस द्रव्य का अत्यधिक सेवन करता है या एक विशेष अवधि तक उसका उपयोग न करके लम्बे समय तक करता है।

शारीरिक एवं मानसिक समस्यायें उत्पन्न होने पर भी औषध सेवन जारी रखना –

ऐसे व्यसनी लोग द्रव्य के सेवन से विभिन्न प्रकार की समस्यायें उत्पन्न होने पर भी उसका सेवन करना जारी रखते हैं।

दायित्वों का निर्वाह न कर पाना –

व्यसन का एक प्रमुख लक्षण यह भी है क ऐसे व्यक्ति अपने परिवार के सदस्यों के साथ कम समय गुजारते हैं। अपने सामाजिक दायरे को भी सीमित कर लेते हैं। इनकी संगति उन लोगों के साथ ही रहती है जो व्यसन से ग्रस्त होते हैं और इनका अधिकांश समय इन्हीं के साथ व्यतीत होता है।

दैहिक खतरे से अनावृत्त रहना –

व्यसन व्यक्ति को इतना अधिक मदहोश कर देता है कि वह अपने शरीर के प्रति संभावित खतरे से भी असावधान रहने लगता है और मदहोशी की स्थिति में ही तेज रफ्तार के साथ वाहन चलाता है या कोई खतरनाक मशीन चलाता है।

17.6 मादक पदार्थो का दुष्प्रभाव –

प्रिय पाठकों, अब तक अध्ययन से इतना तो आप जान ही गये होंगे कि व्यसन व्यक्ति के समग्र स्वास्थ्य को बुरी तरह प्रभावित करता हैं यह आदत एक प्रकार से ऐसी है जिसमें व्यक्ति यह जानते समझते हुए भी कि इन द्रव्यों का सेवन उसके लिये हानिकारक है फिर भी इनके सेवन के लिये विवश हो जाता है और स्वयं ही अनेक प्रकार की समस्याओं का आमंत्रण देता है। एक व्यसनी का प्रायः किन–किन समस्याओं का सामना करना होता है उनका विवेचन निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है –

1. अपने दायित्वों के निर्वाह में असफल रहना –

चूंकि व्यसनी व्यक्ति ाक शरीर और मन पूरी तरह से उस व्यसनी औषध पर निर्भर हो चुका होता है जिसके कारण व्यक्ति अपने पारिवारिक, सामाजिक एवं उसके अपने निजी जीवन के जो कर्तव्य हैं उनकी ओर पूरी तरह ध्यान नहीं दे पाता है। अतः न तो वह सामाजिक दृष्टि से एक अच्छी छवि बना पाता है, न परिवार में और न ही अपनी व्यक्तिगत जिन्दगी में। हर तरफ से उसे निराशा और असफलता ही हाथ लगती है।

2. शारीरिक समस्यायें –

औषधों के सेवन से उस व्यक्ति में अनेक प्रकार की शारीरिक समस्यायें और रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

जैसे –

- कैंसर
- अल्सर
- हृदय रोग

- किडनी एवं फेफड़ों से सम्बन्धित रोग।
- पाचन संस्थान से सम्बन्धित रोग।
- तंत्रिका तंत्र से सम्बन्धित रोग इत्यादि।

3. मानसिक समस्यायें –

व्यसन का रोग न केवल शरीर वरन् मन को भी अनेक प्रकार से पीड़ित करता है। ऐसे व्यक्ति मानसिक तौर पर बैचेन, अंशात और एक प्रकार के अनजाने भय से भ्रमित होते हैं। इनमें आत्मसम्मान, आत्मविश्वास, साहस की कमी पायी जाती है तथा अपने कार्यो के लिये दूसरों पर निर्भर रहने की प्रवृत्ति अधिक होती है।

4. भावनात्मक असंतुष्टि –

व्यसनी द्रव्य कुछ समय के लिये तो व्यक्ति को अत्यधिक राहत या खुशी देते हैं, किन्तु जैसे ही इनका प्रभव समाप्त होता है, वैसे ही व्यक्ति भावनात्मक रूप से अत्यधिक कुण्ठा एवं घुटन महसूस करता है, जो उसे अत्यधिक पीड़ा देती है और किसी भी प्रकार से उसे संतुष्टि नहीं मिल पाती।

5. विवेक का नाश होना –

व्यसनी द्रव्यों का एक जो सर्वाधिक घातक प्रभाव पड़ता है, वह यह है कि मादक पदार्थ व्यक्ति की सही ढंग से सोचने–समझने की शक्ति को क्षीण कर देते हैं। व्यक्ति न तो विवेकपूर्ण विचार कर पाता है और न ही विवेकपूर्ण व्यवहार। परिणामस्वरूप गलत निर्णय लेता है, गलत कार्य करता है और फिर उन गलत कार्यो के दुष्परिणाम उसको भुगतने पड़ते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि व्यसन का रोग न केवल उस व्यक्ति विशेष को प्रभावित करता है। वरन् इससे वह समूचा परिवेश ही (परिवार, समाज) प्रभावित होता है, जिसमें वह रहता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न – सत्य/असत्य

1.सहनशीलता व्यसन का एक प्रमुख लक्षण है। ( )

2.व्यसन में दैहिक एवं मनोवैज्ञानिक निर्भरता पायी जाती है। ( )

3.व्यसनी द्रव्यों के सेवन से व्यक्ति स्थायी तौर पर खुशी प्राप्त करता है। ( )

4.उत्तेजक सम्बन्धी विकृति व्यसन का एक प्रमुख प्रकार है। ( )

5.अध्ययन सम्बन्धी विकृति में व्यक्ति शराब पीने के व्यसन से ग्रस्त होता है। ( )

17.7 सारांश –

प्रिय पाठकों उपर्युक्त विवेचन से आप समझ गये होंगे कि व्यसन क्या है इसके प्रमुख कारण, लक्षण एवं दुष्प्रभाव क्या–क्या हैं–पाठकों यदि हम बहुत गहराई से सोचें तो ज्ञात होता है कि मुख्य रूप से भावनात्मक असंतुष्टि व्यसन का सबसे प्रमुख कारण है। जब किसी व्यक्ति को भरपूर प्यार नहीं मिलता है, उसकी भावनायें तृप्त नहीं होती है तो वह उस भावनात्मक घुटन से मुक्ति पाने के लिये इन विभिन्न प्रकार के व्यसनी द्रव्यों को लेने लग जाता है। और धीरे–धीरे इन द्रव्यों पर निर्भरता इतनी अधिक बढ़ जाती है कि वह निर्भरता उसकी विवशता का रूप ले लेती है। इसके दुष्प्रभावों को जानते और अनुभव करते हुए भी उसे इनको लेना ही पड़ता है क्योंकि शरीर और मन इनका इतना आदि हो चुका होता है कि यदि उस समय वह द्रव्य इनको न दिया जाये तो अनेक प्रकार की शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक समस्यायें उत्पन्न हो जाती है, क्योंकि उस समय व्यक्ति आत्म–नियंत्रण खो देता है, उसे किसी भी कीमत पर वह औषध चाहिये।

इसलिये यदि वास्तव में हम इस समस्या का समाधान करना चाहते हैं तो हमें उचित समय पर इसके उपचार के लिये सावधानीपूर्वक प्रयास शुरू कर देने चाहिये। यदि यह पता चल जाये कि कोई व्यक्ति औषध का दुरूपयोग कर रहा है तो तुरन्त उसी समय उसकी चिकित्सा प्रारम्भ कर देनी चाहिये, ताकि वह दुरूपयोग की स्थिति औषध निर्भरता अर्थात व्यसन में परिणत न हो जाये।अतः समय रहते उचित समय पर उचित निर्णय द्वारा इस समस्या को काफी हद तक नियंत्रित किया जा सकता है।

17.8 शब्दावली

विकृति – रोग

मद्यपान – शराब पीने की लत

DSM - IV & Diagnostic satistical Manual, चतुर्थ संस्करण

इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के मनोरोगों के कारण, लक्षण प्रकार इत्यादि विस्तार से वर्णन हैं।

विवेकपूर्ण – सही–गलत, उचित–अनुचित की ठीक–ठीक समझ।

परिणत – परिवर्तित होना या बदलना।

निद्राजनक – नींद उत्पन्न करने वाले।

शमक – शान्त करने वाले।

17.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य 2. सत्य 3. असत्य 4. सत्य 5. सत्य

17.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह, अरूण कुमार (2009) असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।

17.11 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न.1 व्यसन से आप क्या समझते हैं? व्यसन के प्रमुख कारण एवं लक्षण बताइये?

प्रश्न.2 व्यसन के प्रमुख प्रकारों के नाम लिखते हुए व्यसन के दुष्प्रभावों का विवेचन कीजिए।

इकाई – 18 व्यसन मुक्ति के सिद्धान्त, योग द्वारा व्यसन मुक्ति

इकाई की संरचना

18.1 प्रस्तावना

18.2 उद्देश्य

18.3 व्यसन मुक्ति के सिद्धान्त

18.4 योग द्वारा व्यसन मुक्ति

18.5 सारांश

18.6 शब्दावली

18.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

18.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

18.9 निबंधात्मक प्रश्न

18.1 प्रस्तावना–

प्रिय पाठकों, जैसा कि इससे पूर्व की इकाई में आपने व्यसन क्या है? क्यों व्यक्ति को व्यसन हो जाता है अर्थात् इसके क्या कारण हैं तथा इस समस्या से हमारे शरीर, मन एवं भावनाओं पर क्या प्रभाव पड़ता है, इत्यादि को भली–भांति जान गये हैं। समस्या को तो हमने जान लिया अब बारी आती है इसके समाधान की। मन में एक प्रश्न उठता है कि क्या ऐसा किया जाये जिससे की इस व्यसन से लोगों का छुटकारा दिलाया जा सके। यह आज हमारे समाज के सामने एक बहुत समस्या के रूप में सामने आ रही है और इससे सर्वाधिक ग्रस्त हमारा युवा समाज है, जो किसी भी देश का भविष्य होता है। तो पाठकों, जब तक इस व्यसन की समस्या के नियंत्रण का कोई प्रभावी समाधान नहीं खोज लिया जाता है, तब तक न तो व्यक्ति, न परिवार, समाज, राष्ट्र एवं विश्व की उन्नति हो सकती है। जिज्ञासु विद्यार्थियों, प्रस्तुत इकाई में हमारे अध्ययन का विषय यही है – व्यसन के सिद्धान्त एवं योग समाधान। तो आइये चर्चा करते हैं व्यसन मुक्ति के सिद्धान्तों के बारे में

18.2 उद्देश्य

प्रिय पाठकों प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप –

- व्यसन मुक्ति के प्रमुख सिद्धान्तों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- व्यसन की समस्या को नियंत्रित करने में योग कहां तक सफल है, इसका विश्लेषण कर सकेंगे।

18.3 व्यसन मुक्ति के सिद्धान्त –

प्रिय विद्यार्थियों, व्यसन की समस्या को दूर करने के लिये मनोवैज्ञानिकों ने अनेक प्रकार की चिकित्सा पद्वतियों का प्रतिपादन किया है। मनोविज्ञान की भाषा में इस व्यसन को द्रव्य सम्बन्धी विकृति के नाम से जाना जाता है।

तो आइये जानें कि ये चिकित्सा पद्वतियां कौन–कौन सी हैं।

व्यसन मुक्ति के प्रमुख सिद्धान्त निम्न हैं –

क. सूझ चिकित्सा का सिद्धान्त

ख. व्यवहारपरक एवं संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा का सिद्धान्त

ग. जैविक चिकित्सा का सिद्धान्त

क. सूझ चिकित्सा का सिद्धान्त

इस चिकित्सा में चिकित्सक रोगी को उनकी समस्याओं के मूल कारणों से अवगत कराने की कोशिश करते हैं जिससे वे यह जान सकें कि उनमें व्यसन की प्रवृत्ति किस मानसिक या भावनात्मक कारण से हुयी है। ताकि वह उस कारण को समझकर एवं स्वीकार करके और व्यक्त करके अर्थात अपने अचेतन मन से बाहर निकालकर इस प्रवृत्ति से छुटकारा पा सके।

किन्तु व्यवहार में यह सिद्धान्त बहुत अधिक सफल परिणाम नहीं दे पाया है।

ख. व्यवहारपरक एवं संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा का सिद्धान्त

इसमें निम्न प्रमुख विधियां शामिल है –

- विरूचि अनुबंधन
- अन्तः संवेदीकरण
- वैकल्पिक प्रशिक्षण

- प्रसभाव्यता प्रशिक्षण

पाठकों, व्यवहारपरक एवं संज्ञानात्मक व्यवहारपक चिकित्सा के सिद्धान्त के अन्तर्गत कुछ प्रविधियों में जब रोगी औषध ले रहा होता है तो उस समय बिजली का आघात इत्यादि कुछ दुःख एवं दर्द होने वाला उद्दीपक उपस्थित किया जाता है, तो कुछ में उस दृव्य को लेते समय मन में दुःखी या डर उत्पन्न करने वाले किसी दृश्य की कल्पना करने के लिये कहा जाता है ताकि उसकी उस दृव्य या औषध में रूचि समाप्त हो जाये और उसके मन में उसको न लेने का भाव उत्पन्न हो।

ग. जैविक चिकित्सा का सिद्धान्त

इस पद्वति में व्यसनी का या तो क्रमबद्ध एवं चित्सिक के संरक्षण में उस दृव्य से उसको दूर रखने का प्रयास किया जाता है, जिसका उसको व्यसन है अथवा व्यवसन वाले दृव्य की मात्रा कम लेने का निर्देश दिया जाता है अथवा व्यसन वाले द्रव्य के विकल्प में दूसरा देस द्रव्य दिया जाता है जो उसकी अपेक्षा कम हानिकारक हो या अधिक अच्छा हो कि वह विकल्पी द्रव्य बिल्कुल भी हानिकारक न हो।

पाठकों, इस प्रकार मनोवैज्ञानिक ने व्यसन मुक्ति के लिये अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया।

18.4 योग द्वारा व्यसन मुक्ति –

प्रिय विद्यार्थियों जैसा कि आप जान चुके हैं कि व्यसन मुक्ति के लिये अनेक प्रकार की मनोवैज्ञानिक विधियां हैं, किन्तु इन विधियों की अपनी कुछ कमियां हैं, जिसके कारण इनके प्रभावी परिणाम सामने नहीं आ रहे हैं।

अतः अन्य रोगों की तरह ही इस व्यसन के रोग से मुक्ति के लिये भी लोग यौगिक जीवन शैली को अपनाने की ओर से अग्रसर से रहे हैं।

अब जानना यह है कि योग के ऐसे कौन से सूत्र या उपाय हैं जिनके माध्यम से इस समस्या को नियंत्रत किया जा सके।

तो आइये, चर्चा करते हैं योग द्वारा व्यवसन मुक्ति के उपायों के बारे में –

योग वस्तुतः जीवन प्रबन्धन की कला है, जिसके अनुसार व्यसन का कारण व्यक्ति की दमित भावनायें, भावनात्मक घुटन, मानसिक एवं शारीरिक असमर्थता इत्यादि होते हैं। अतः इस समस्या को दूर करने के लिये व्यक्ति को अपनी भावनाओं, विचारों एवं व्यवहार में कुछ सकारात्मक परिवर्तन करने का प्रयास करना पड़ेगा। अर्थात् जीवन शैली में महत्वपूर्ण परिवर्तन करने होंगे तभी इस समस्या से छुटकारा सम्भव है।

यौगिक जीवन शैली के निम्न सूत्र व्यसन को दूर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं–

1.सकारात्मक दृष्टिकोण –

व्यसन से मुक्ति पाने के लिये सबसे पहले तो व्यक्ति को अपने सोचने का ढंग बदलना होगा। उसे अपनी जिन्दगी में आने वाली समस्याओं को सकारात्मक ढंग से लेना चाहिये और हमेशा समय–परिस्थिति के अनुसार जो हमारा कर्तव्य होता है पूरी निष्ठा के साथ उसका पालन करना चाहिये।

2.अपनी भावनाओं एवं विचारों को दबाना नहीं अभिव्यक्त करना।

व्यसनी व्यक्ति को चाहिये कि वह अपनी भावनाओं, इच्छाओं एवं विचारों का दमन न करें। जो भावना, इच्छा एवं विचार नैतिकता की मर्यादा में हैं उसे व्यक्त करना चाहिये तािा जो अनैतिक एवं अमर्यादित है उन्हें दबाने के स्थान पर नैतिकता के दायरे में लाकर रूपान्तरित करना चाहिये जिससे कि हमारे मन में किसी प्रकार की ग्रन्थि न बनें। विचारों एवं भावनाओं को व्यक्त करने के अनेक उपाय अपनायें जा सकते हैं जैसे –

- डायरी लेखन
- संगीत
- कविता लिखना
- अपनी रूचि के कार्यो को करना।

3.स्वाध्याय –व्यसन की समस्या से निपटने के लिये बहुत आवश्यक है – अच्छे विचारों एवं अच्छे लोगों के सम्पर्क में रहना।

4.जिन्दगी की महत्ता को समझना –जिस दिन व्यक्ति को अपने मनुष्य जीवन का महत्व अनुभव होता है उस दिन वह स्वतः ही गलत आदतों से दूर होता जाता है। अतः व्यसनी व्यक्ति को समझाना चाहिये कि यह मनुष्य अत्यन्त कठिनाई से प्राप्त होता है और इसे यूं ही व्यसन में नष्ट नहीं करना चाहिये।

5.भगवान पर अटूट श्रद्धा –पाठकों, वास्तव में यदि देखा जाये तो हमारे जीवन का सर्वस्व हमारे भगवान हैं। अतः तड़पकर उनसे नित्यप्रति अपनी इस व्यसन की आदत को छुड़ाने के लिये प्रार्थना करनी चाहिये।

6.नियमित उपासना –जैसे हम अपने इस हाड़–मांस के शरीर को पुष्ट रखने के लिये नियमित भोजन करते हैं, उसी प्रकार हमें भावनात्मक तृप्ति एवं आत्मिक संतुष्टि के लिये अपने 24 घंटे में कुछ समय नियमित उपासना के लिये भी निकालना चाहिये।

ये पहल ऐसे होने चाहिये जिसमें हम अपनी पीड़ा के लिये तड़पकर भगवान् से प्रार्थना कर पायें और इसमें हम और हमारे भगवान् के अतिरिक्त और दूसरा कोई भी न हों। अर्थात् हमारे अन्दर उस परमसत्ता के प्रति सर्वस्व समर्पण का भाव आये।

7. आसन, प्राणायाम का अभ्यास –आसन–प्राणायाम के अभ्यास भी शारीरिक एवं मानसिक स्थिरता तथा संतुलन को बहाकर व्यक्ति में सकारात्मकता को विकसित करते हैं।

8.दिन में कोई एक अच्छा कार्य निष्काम भाव से करना –हमें प्रतिदिन पूरे दिन भर में कम से कम एक ऐसा कार्य करने की आदत डालनी चाहिये, जिसमें हमारा किसी भी प्रकार का स्वार्थ न हो। यदि किसी अन्य प्रकार से सहायता न कर पाने की स्थिति में हो तो सभी के सुख के लिये निःस्वार्थ भाव से प्रार्थना तो की ही जा सकती है।

9.अपने जीवन का बिल्कुल स्पष्ट उद्‍देश्य होना चाहिये –किसी भी प्रकार की बुरी आदत से छुटकारा पाने के लिये बहुत ही आवश्यक है कि हमारे जीवन का एक स्पष्ट सदुद्‍देश्य होना चाहिये और हमें हर क्षण वह सोचना और करना चाहिये, जो हमें अपने उद्‍देश्य की ओर लेकर जाये।

तो प्रिय पाठकों स्पष्ट है कि योग जीवन जीने की एक कला है और जब तक यह कला नहीं आयेगी तब तक सारे प्रयास समस्या का स्थायी समाधान नहीं दे सकते।

अभ्यासार्थ प्रश्न सत्य / असत्य

1. विरूचि अनुबंधन, व्यवहारपरक एवं संज्ञानात्मक व्यवहारपरक चिकित्सा का एक प्रकार है। (   )
2. योग एक जीवनशैली है (   )
3. जैविक चिकित्सा में व्यसनी को द्रव्य से दूर रहने अथवा हृदय की मात्रा कम लेने का निर्देश दिया जाता है। (   )

18.5 सारांश –

प्रिय विद्यार्थियों, उपरोक्त विवेचन से आप जान गये होंगे कि व्यसन मुक्ति के प्रमुख सिद्धान्त क्या हैं, उनकी सीमायें क्या हैं तथा योग इसमें अपनी क्या भूमिका निभा सकता है। वस्तुतः योग एक प्राकृतिक जीवन शैली है, जो अपने प्रकृति के अनुरूप जीवन जीने की प्रेरणा देती है। जब–जब व्यक्ति प्रकृति के इन नियमों का उल्लंघन करता है, तब–तब उसे विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। यदि इंसान मर्यादित या दूसरे शब्दों में कहें तो नैतिक जीवन जीने की आदत डाल लें तो वह व्यसन ही क्या अपनी अधिकतम समस्याओं का प्रबन्धन कर सकता है।

18.6 शब्दावली –

नैतिकता – मर्यादित जीवन जीना अर्थात् इन्द्रिय सुखों का एक सीमा तक ही उपभोग करना। उर्जा का अपव्यय नहीं संरक्षण करना।

निष्काम – परिणाम या फल की इच्छा से रहित होकर काम करना।

विरूचि – रूचि न होना।

18.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य

18.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह, अरूण कुमार (2009) असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, दिल्ली।
2. पण्ड्या प्रणव (2010) आध्यात्मिक चिकित्सा एक समग्र उपचार पद्वति, श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट, शांतिकुंज, हरिद्वार

18.9 निबंधात्मक प्रश्न –

प्रश्न 1. व्यसन मुक्ति के प्रमुख सिद्धान्तों का विवेचन कीजिए।

प्रश्न 2. व्यसन मुक्ति में यौगिक जीवन शैली की भूमिका को स्पष्ट कीजिए।